अथ
वैशाख मास माहात्म्य
(भाषा-टीका)
प्रकाशक गङ्गा प्रिंटिङ्ग प्रेस बुकडिपो, मथुरा।
मूल्य ४) रुपया

* अथ *

वैशाख मास माहात्म्य भाषा-टीका

टीकाकारः—पण्डित बद्रीप्रसाद शर्मा 'प्रेम'

प्रकाशकः—गङ्गा प्रिंन्टिङ्ग प्रेस, बुकडिपो मथुरा ।

प्रथमवार] :❀-:❀:-❀:- [मूल्य ४) रुपया

प्रकाशकः—
गङ्गा प्रिंन्टिङ्ग प्रेस, बुकडिपो
मथुरा।

मुद्रक—
बांकेलाल कानौंडिया,
प्रिन्टिग प्रेस, मथुरा।

अथ स्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत-

॥ अथ वैशाखमाहात्म्यं भाषाटीका प्रारभ्यते ॥

—❀—:❀❀:—❀—

मनुष्यों में श्रेष्ठ नर और नारायण को नमस्कार कर और देवी सरस्वती तथा व्यासजी को प्रणाम कर उनकी जय बोलता हूँ ॥१॥ सूतजी बोले परमेष्ठी ब्रह्मा के पुत्र नारदजी से राजा अम्बरीष ने पवित्र वैशाख मासका माहात्म्य पूछा ॥२॥

नारायणं नमस्कृत्यं नरंचैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जय मुदीरयेत् ॥१॥ सूत उवाच । भूयोऽप्यङ्गभुवं राजा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । पुण्यं माधवमाहात्म्यं नारदं पर्यपृच्छतः ॥२॥ अम्बरीष उवाच । सर्वेषामपि मासानां त्वत्तो माहात्म्यमञ्जसा । श्रुतं मया पुरा ब्रह्मन्यदा चोक्तं तदा त्वया ॥३॥ वैशाखः प्रवरो मासो मासेष्वेतेषु निश्चितम् । इति तस्माद्विस्तरेण माहात्म्यं माधवस्य च ॥४॥

राजा अम्बरीष बोले—हे ब्रह्मन् ! जो सम्पूर्ण महीनों के माहात्म्य वर्णन किये वह मैंने अच्छी तरह से सुने ॥३॥ सभी महीनों में वैशाख मास श्रेष्ठ है, अतः वैशाख का माहात्म्य विस्तार से कहिये, मुझे सुनने की इच्छा है ॥४॥ यह मास विष्णु भगवान

वै०

को प्यारा क्यों है और इसमें कौन-कौन धर्म कार्य उन्हें क्यों प्रिय है ॥५॥ क्या दान करना चाहिये ? उसका क्या फल होता है ? ये सब कार्य किस देवता को प्रसन्न करने के लिये करने चाहिये इस मास में करने योग्य काम क्या है, कौन से कार्य विष्णु भगवान् को प्रिय हैं ? इसमें क्या दान किसलिये किया जाता है, उसका फल और उद्देश्य क्या है ॥६॥ इस मास में किन वस्तुओं से भगवत् पूजन करना चाहिये, हे नारद ! यह सब मुझे विस्तार से सुनाइये, मैं श्रद्धा से

श्रोतुं कौतूहलं ब्रह्मन्कथं विष्णुप्रियो ह्यसौ । के च विष्णुप्रिया धर्मा मासे माधववल्लभे ॥५॥ तत्राप्यस्य तु कर्तव्याः के धर्मा विष्णुवल्लभाः । किं दानं किं फलं तस्य किमुद्दिश्याऽचरेदिमान् ॥६॥ कैर्द्रव्यैः पूजनीयोऽसो माधवो माधवागमे । एतन्नारद विस्तार्य मह्यं श्रद्धावते वद ॥ ७ ॥ श्रीनारद उवाच । मया पृष्टः पुरा ब्रह्मा मासधर्मान्पुरातनान् । व्याजहार पुरा प्रोक्तं यच्छ्रियै परमात्मना ॥८॥ ततो मासा विशिष्टोक्ताः कार्त्तिको माघ एव च । माधवस्तेषु वैशाख मासानामुत्तमं व्यधात् ॥९॥ मातेव सर्वजीवानां सदैवेष्टप्रदायकः । दानयज्ञव्रतस्नानैः सर्वपापविनाशनः ॥ १० ॥ धर्मयज्ञक्रिया-

मा०

२

सुनूंगा ॥७॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! सभी महीनों का माहात्म्य पहिले विष्णुजी ने लक्ष्मीजी से किया था, जो मुझसे ब्रह्माजी ने कहा है ॥८॥ सब महीनों में कार्त्तिक, माघ और वैशाख मास श्रेष्ठ हैं । इन तीनों में भी वैशाख मास सबसे श्रेष्ठ माना गया है ॥९॥ यह महीना माता के समान सब जीवों को अभीष्ट फल देने वाला है । इस महीने में दान, यज्ञ, इसके करने से सब पापों का नाश हो जाता है ॥१०॥ यह महीना धर्म, कर्म, यज्ञ और तप का सार है ॥११॥ इसकी देवता भी प्रशंसा करते हैं । यह मास विद्याओं में वेद विद्या के समान, मन्त्रों में प्रणव ॥१२॥ वृक्षों में गौओं में कामधेनु नागों में शेष पक्षियों में गरुड़ के समान ॥१३॥ देवों में विष्णु वर्णों में ब्राह्मण प्रिय वस्तुओं में प्राण

भा०

टी०

अ०

१

वै० मा० २

...से सब पापों का नाश हो जाता है ।।१०।। यह महीना धर्म कर्म, यज्ञ और तप का सार है ।।११।।

इसकी देवता भी प्रशंसा करते हैं । यह मास विद्याओं में वेद विद्या के समान, मन्त्रों में प्रणव ।।११।। वृक्षों में गौओं में कामधेनु नागों में शेष पक्षियों में गरुड़ के समान ।।१२।। देवों में विष्णु वर्णों में ब्राह्मण प्रिय वस्तुओं में प्राण और मित्रों में भार्या के समान है ।१३। नदियों में गङ्गा के समान, तेजस्वियों में सूर्य शस्त्रों में चक्र, धातुओं में सुवर्ण ।१४।

सारस्तपःसारःसुरार्चित । विद्यानां वेदविद्येव मन्त्राणां प्रणवो यथा ।।११।। भूरुहाणां सुरतरुर्धेनूनां कामधेनुवत् । शेषवत्सर्वनागानां पक्षिणां गरुडो यथा ।।१२।। देवानां तु यथा विष्णुर्वर्णानां ब्राह्मणो यथा । प्राणवत्प्रियवस्तूनां भार्येव सुहृदां यथा ।।१३।। आपगानां यथा गङ्गा तेजसां तु रविर्यथा । आयुधानां यथा चक्रं धातूनां काञ्चनं यथा ।।१४।। वैष्णवानां यथा रुद्रो रत्नानां कौस्तुभो यथा मासानां धर्महेतूनां वैशाखश्चोत्तमस्तथा ।। १५ ।। नानेन सदृशो लोके विष्णुप्रीतिविधायकः । वैशाखस्नाननिरतो मेषे प्रागर्यमोदयात् ।। १६ ।। लक्ष्मीसहायो भगवान्प्रीतिं तस्मिन्करोत्यलम् । जन्तूनां प्रीणनं यद्व दन्नेनैव हि जायते ।।१७।। तद्वद्वैशाखस्नानेन विष्णुः प्रीणात्यसंशयः । वैशाख-

वैष्णवों में शिवजी के समान, रत्नों में कौस्तुभ मणि तुल्य धर्म के लिये सब में उत्तममास है ।१५। इस मास के समान विष्णु भक्ति उत्पन्न करने वाला और कोई महीना नहीं है । मेष की संक्रान्ति वैशाख मास में, सूर्योदय से पहले जो मनुष्य स्नान करता है ।।१६।। उससे विष्णु भगवान् लक्ष्मीजी सहित अत्यन्त प्रसन्न होते हैं । जैसे अन्नसे सब प्राणी प्रसन्न होते हैं।।१७।।

मा० टी० अ० १

वैसे ही वैशाख स्नान से निस्सन्देह विष्णु भगवान प्रसन्न होते हैं, वैशाख-स्नान करने वाले मनुष्य और जो उनका अनुमोदन करता है ।१८। वह भी सब पापोंसे छूटकर विष्णुलोक जाता है । मेष राशि के सूर्य में (वैशाख मासमें) प्रातः-काल एक बार भी स्नान कर जो मनुष्य आह्निक करता है ।१९। वह महापापों से छूटकर विष्णुलोक पाता है । वैशाख मास में स्नान

स्नाननिरताञ्जनान्दृष्ट्वाऽनुमोदते ॥१८॥ तावतापि विमुक्तोऽघैर्विष्णुलोके महीयते । सकृत्स्नात्वा मेषसंस्थे सूर्य्ये प्रातः कृताह्निकः ॥१९॥ महापापैर्विमुक्तोऽसौ विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् । स्नानार्थं मासि वैशाखे पादमेकं चरेद्यदि ॥ २० ॥ सोऽश्वमेधायुतानां च फलंप्राप्नोत्यसंशयः । अथवा कूटचित्तस्तु कुर्यात्संकल्पमात्रकम् ॥२१॥ सोऽपिक्रतुशतं पुण्यं लभेदेव न संशयः । य गच्छेद्धनुरायामं स्नातुं मेषंगते रवौ ॥२२॥ सर्वबन्धविनिर्मुक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् । त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि ब्रह्माण्डान्तर्गतानिच ॥२३॥ तानि सर्वाणि राजेन्द्र सन्ति बाह्येऽल्पके जले ॥ तावल्लिखितपापानि गर्जन्ति यमशासने ।।२४।। यावन्न कुरुते जन्तुर्वैशाखे स्नानमम्भसि ॥ तीर्थादिदेवताः

करने के लिए जो मनुष्य एक पग भी चलता है।२०।उसे दस हज़ार अश्वमेध यज्ञ करनेका फल मिलता है, इसमें सन्देह नहीं । या एकाग्रचित्त हो जो ऐसा संकल्प भी करता है।२१।उसे भी निस्सन्देह सौ यज्ञोंका पुण्य मिलता है । वैशाख-स्नानके लिये धनुष बराबर भी जो मनुष्य चलता है।२२।वह संसार के बन्धनों से छूट बैकुण्ठ धाम को जाता है । ब्रह्माण्ड भर में (तीनों लोकों में) जितने तीर्थ हैं।२३।हे राजेन्द्र ! वे सब नगर बाहर के थोड़े से जलमें भी रहते हैं [illegible] वैशाख मास में स्नानके लिए किसी तीर्थ में न जा सके तो नगर के बाहर किसी जलाशय में स्नान करना चाहिए । यम की आज्ञा से शास्त्रों में लिखे पाप उसी समय तक गरजते हैं। २४।जब तक मनुष्य वैशाख-स्नान नहीं करता । हे राजन् ! विष्णु भगवानकी आज्ञासे वैशाख

लिए किसी तीर्थ में न जा सके तो नगर के बाहर किसी जलाशय में स्नान करना चाहिए। यम की आज्ञा से शास्त्रों में लिखे पाप उसी समय तक गरजते हैं।२४।जब तक मनुष्य वैशाख-स्नान नहीं करता। हे राजन्! विष्णु भगवान्की आज्ञासे वैशाख मासमें तीर्थादिके अधिष्ठाता देवता।२५। सूर्योदय से ६ घड़ी तक जलके बाहर मनुष्योंके हितके लिए ठहरते हैं।२६।हेराजेन्द्र!

सर्वा वैशाखे मासि भूमिप ॥२५॥ बहिर्जलं समाश्रित्य सदा सन्निहिता नृप। सूर्योदयं समारभ्य यावत्षड्घटिकावधि ॥२६॥ तिष्ठन्ति चाऽऽज्ञया विष्णोर्नराणां हितकाम्यया। तावन्नागच्छतां पुंसां शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥ स्वस्थानं यान्ति राजेन्द्र तस्मात् स्नानं समाचरेत् ॥२७॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे वैशाखमास-वैशाखस्नानमाहात्म्यवर्णनं नाम प्रथमोऽध्याय ॥ १ ॥

नारद उवाच ॥ न माधवसमो मासो न कृतेन युगं समम्। न च वेदसमं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गया

उस समय तक भी जो लोग स्नान के लिए नहीं आते वे उनको दारुण शाप दे अपने स्थान को चले जाते है। इसलिए वैशाख-स्नान अवश्य करना चाहिए ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये वैशाखस्नानमाहात्म्यवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

नारदजी बोले-हे राजन्! वैशाख के समान कोई महीना नहीं है, सत्ययुग के समान दूसरा युग नहीं हैं, वेद के समान

शास्त्र नहीं गङ्गाजी जैसा कोई तीर्थ नहीं ॥१॥ जल-दान के समान दूसरा दान नहीं और भार्या के समान दूसरा सुख नहीं, खेती जैसा कोई धन नहीं है और जीवन के समान कोई लाभ नहीं है ॥२॥ उपवास जैसा दूसरा तप नहीं, दान जैसा सुख और दया के समान दूसरा धर्म तथा नेत्रों के समान कोई ज्योति नहीं है ॥३॥ भोजन के समान कोई

वै० मा०

समम् ॥१॥ न जलेन समं दानं न सुखं भार्यया समम् । कृषेस्तु समं वित्तं न लाभो जिवितात्परः ॥२॥
न तपोऽनशनात्तुल्यं न दानात्परमं सुखम् । न धर्मस्तु दयातुल्यो न ज्योतिश्चक्षुषा समम् ॥३॥
न तृप्तिरशनात्तुल्या न वाणिज्यं कृषेः समम् । न धर्मेण समं मित्रं न सत्येन समं यशः ॥ ४ ॥
नारोग्यसममुत्थानं न त्राता केशवात्परः । न माधवसमं लोक पवित्रं कवयो विदुः ॥ ५ ॥ माधवः
परमो मासः शेषशायिप्रियः सदा । अव्रतेन क्षपेद्यस्तु मासं माधववल्लभम् ॥ ६ ॥ तिर्यग्यनिं
स यात्याशु सर्वधर्मवहिष्कृतः । अव्रतेन गतो येषां माधवो मर्त्यधर्मिणाम् ॥ ७ ॥ इष्टापूर्तं वृथा

तृप्ति, खेती के समान कोई व्यापार, धर्म के समान कोई हितकारी मित्र नहीं और सत्य के समान कोई यश नहीं है ॥४॥ आरोग्य समान कोई हर्ष, केशव के समान कोई रक्षक, माधव के तुल्य संसार में कोई पवित्र नहीं है ॥५॥ ऐसा परमोत्तम वैशाख मास शेषशायी भगवान् को सदा प्यारा है, भगवान् के प्यारे इस महीना को जो लोग बिना व्रत

[illegible] नियम पूर्वक माजनादि करते हैं ... [illegible]

भगवान् की सायुज्य मुक्तिको अवश्य प्राप्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं । संसार में अनेक प्रकारके दान और व्रत हैं परन्तु उनके

... वैशाखमास में नियम पूर्वक भोजनादि करते हैं वे विष्णु भगवान् की सायुज्य मुक्तिको अवश्य प्राप्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं। संसारमें अनेक प्रकारके दान और व्रत हैं परन्तु उनके करने से शरीर को अत्यन्त परिश्रम होता है ॥९॥ उनसे संसार में बारबार जन्म लेना पड़ता है परन्तु वैशाख मास में केवल स्नान कर लेने से ही प्राणी आवागमन से छूट जाता है ॥१०॥ सब दान करने से जो पुण्य होता है, सम्पूर्ण तीर्थों

तेषां धर्मो धर्मभृतां वरः। प्रवृत्तानां तु भक्ष्याणां माधवे नियमे कृते ॥८॥ अवश्यं विष्णुसायुज्यं प्राप्नोत्येव न संशयः। सन्तीह बहुवित्तानि व्रतानि विविधानि च ॥९॥ देहायासकराण्येव पुनर्जन्मप्रदानि च। वैशाखस्नानमात्रेण न पुनर्जायते भुवि ॥ १० ॥ सर्वदानेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम्। तत्फलं समवाप्नोति माधवे जलदानतः ॥११॥ जलदानासमर्थेन परस्यापि प्रबोधनम्। कर्तव्यं भूतिकामेन सर्वदानाधिकं हि तत् ॥१२॥ एकतः सर्वदानानि जलदानं हि चैकतः। तुलामारोपितं पूर्वं जलदानं विशिष्यते ॥ १३ ॥ मार्गेऽध्वगानां यो मर्त्यः प्रपादानं करोति हि। स

में स्नान करने से जो फल मिलता है वह सब वैशाख में केवल जलदान करने से ही मिल जाता है ॥११॥ जिसमें जलदान करने की सामर्थ्य न हो वे ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले दूसरों से कहकर जलदान करावे, यह कर्म भी सब दानों से अधिक है ॥१२॥ तराज़ू के पलड़े में सब प्रकार के दान और दूसरे जलदान रखकर तोले तो जलदान ही भारी निकलेगा ॥१३॥ जो यात्रियों के लिये प्याऊ लगाकर जलदान करता है वह अपने करोड़ों कुलका उद्धार कर विष्णुलोक

को जाता है ॥१४॥ हे राजन् ! प्याऊ लगानेसे देवता, पितर और ऋषि सब निस्सन्देह अत्यन्त प्रसन्न होते हैं ॥१५॥ जो प्याऊ लगा थके हुए यात्रियों को सन्तुष्ट करता है उससे ब्रह्मा, विष्णु और शिव सब देवता प्रसन्न होते हैं ॥१६॥ जो जल की इच्छा हो तो जल दान करे, छाया की इच्छा हो तो छत्री दे और हे राजन् ! जो विजन की इच्छा हो तो वैशाख में पंखा दान करे

कोटिकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ॥१४॥ देवानां च पितॄणां च ऋषीणां राजसत्तम । अत्यन्तप्रीतिदं सत्यं प्रपादानं न संशयः ॥ १५ ॥ प्रपादानेन संतुष्टा येनाध्वश्रमकर्शिताः । तोषितास्तेन देवाश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ १६ ॥ सलिलं सलिलाकांक्षी छायां छायामपीच्छताम् । व्यजनं व्यजनाकांक्षी वैशाखे मासि भूमिप ॥ १७ ॥ जलं छत्रं च व्यजन दानमेषां विशिष्यते । माधवे मासि संप्राप्ते ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥ १८ ॥ अदत्त्वोदककुम्भं च चातको जायते भुवि । यो दद्याच्छीतलं तोयं तृषार्ताय महात्मने ॥ १९ ॥ तावन्मात्रेण राजेन्द्र राजसूयायुतं लभेत् । धर्मश्रमार्तं विप्राय वीजयेद्व्यजनेन यः ॥ २० ॥ तावन्मात्रेण निष्पापो विहगाधिपतिर्भवेत् । अदत्त्वा व्यजन

॥१७॥ जितने दान बताये हैं उनमें जलदान, छत्रदान और और पंखादान सबमें उत्तम हैं इन्हीं का दान वैशाखमास में अवश्य करना चाहिये जो वैशाख के महिना में कुटुम्बी ब्राह्मण को जल से भरा घड़ा नहीं देता ॥१८॥ वह चातक की योनि पाता है। नरेश और पसीना से व्याकुल ब्राह्मण को पंखा से हवा करता है ॥२०॥ वह सब पापों से रहित हो गरुड़ के समान हो जाता है, जो मनुष्य वैशाख में ब्राह्मण को पंखा नहीं देता ॥२१॥ वह अनेक प्रकार के वात रोगों से पीड़ित हो नरक

... दूर करने और पसीना से व्याकुल ब्राह्मण को पङ्खा से हवा करते हैं ।।२०।। वह सब पापों से रहित हो गरुड़ के समान हो जाता है, जो मनुष्य वैशाख में ब्राह्मण को पंखा नहीं देता ।।२१।। वह अनेक प्रकार के वात रोगों से पीड़ित हो नरक भोगता है। जो थके हुए ब्राह्मण की वस्त्र से हवा करता है वह सब पापों से छूट विष्णु भगवान् की सायुज्य (मुक्ति) पाता है ।।२२।। जो शुद्ध मन से ताड़ का पंखा दान करते हैं वे सब पापों से छूट विष्णुलोक को जाते हैं ।।२३।। तुरन्त श्रम दूर

भूप वैशाखे तु द्विजातये ।। २१ ।। वातरोगशताकीर्णो नरकानेव विन्दति । यो वीजयेत्पटेनापि पथि श्रान्तं द्विजोत्तमम् । तावताऽथ विमुक्ताऽसौ विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।।२२।। यस्तालव्यजनं वापि दत्वा शुद्धेन चेतसा । विधूय सर्वपापानि ब्रह्मलोकं स गच्छति ।। २३ ।। सद्यःश्रमहरं पुण्यं न दद्याव्द्यजनं नरः । नारकीं यातनां भुक्त्वा कश्मलो जायते भुवि ।।२४।। आध्यात्मिकादिदुःखानां शान्तये मनुजेश्वर । छत्रं दद्यात्प्रयत्नेन वैशाखे मासि वा सकृत् ।। २५ ।। अच्छत्रदो नरो यस्तु वैशाखे माधवप्रिये । छायाहीनो महाक्रूरः पिशाचो भुवि जायते ।। २६ ।। यो दद्यात्पादुके दिव्ये

करने वाले पंखे का दान नहीं करने वाले अनेक प्रकार की नरक यातनाएँ भोगकर संसार में पापी होते हैं ।। २४ ।। हे राजेन्द्र ! आध्यात्मिक दुःख की शान्ति के निमित्त वैशाख मास में छत्री दान करना उचित है ।।२५।। जो मनुष्य विष्णु भगवान् के प्यारे इस वैशाख मास में छत्री दान नहीं करते उनको कहीं छाया नहीं मिलती और वे महा क्रूर पिशाच बन पृथ्वी पर घूमते हैं ।।२६।। वैशाख में जो खड़ाऊँ दान करते हैं वे यम दूतों का तिरस्कार कर विष्णुलोक को जाते हैं ।।२७।।

जो वैशाखमास में जूता दान करते हैं उन्हें नरक की यातना नहीं भोगनी पड़ती न उसे संसार के दुःख सताते हैं ।।२८।।
ब्राह्मण के याचना करने पर खड़ाऊँ दान करने वाला पृथ्वी पर करोड़ जन्म तक राजा होता है ।।२९।। जो मार्ग में
श्रम को दूर करने के लिए स्थान बनवाता है उनका फल वर्णन करने में ब्रह्मा भी असमर्थ है ।।३०।। दोपहर को जो कोई

माधवे माधवप्रिये । यमदूतौ निराकृत्य विष्णुलोकं स गच्छति ।।२७।। पादत्राण तु यो दद्याद्वैशाखे
माधवागमे । न तस्य नारको लोको न क्लेशा ऐहिकाश्च ये ।। २८ ।। पादुके याचमानाय यो
दद्याद्ब्राह्मणाय च । सा भूपालो भवेद्भूमौ कोटिजन्मन्यसंशयम् ।। २९ ।। अनाथमण्डपं मार्गे
श्रमहारि करोति यः । तस्य पुण्यफलं वक्तुं ब्रह्मणापि न शक्यते ।।३०।। मध्याह्ने ब्राह्मणं प्राप्तम-
तिथिं भोजयेद्यदि । न तस्य फलविश्रान्तिर्ब्रह्मणापि निरूपिता ।। ३१ ।। सद्यः स्वाप्यायनं
नृणामन्नदानं नराधिप । तस्मान्नान्नेन सदृशं दानं लोकेषु विद्यते ।।३२।। मार्गश्रान्ताय विप्राय
प्रश्रयं प्रददाति यः तस्य पुण्यफलं वक्तुं ब्रह्मणापि त शक्यते ।। ३३ ।। दारापत्यगृहादीनि

अतिथि या ब्राह्मण मिले उसको भोजन कराने का फल ब्रह्माजी भी वर्णन नहीं कर सकते हैं ।।३१।। हे राजन ! अन्नदान
मनुष्य को तत्काल तृप्ति करने वाला है संसार में अन्नदान के समान कोई दान नहीं है ।।३२।। जो मनुष्य मार्ग से

अलंकार, आभूषण कुछ भी अच्छे नहीं लगते हैं, पेट भरने पर ही सब अच्छे लगते हैं ।।३४।। इसलिये अन्नदान के समान

अलंकार, आभूषण कुछ भी अच्छे नहीं लगते हैं, पेट भरने पर ही सब अच्छे लगते हैं ॥३४॥ इसलिये अन्नदान के समान न कुछ हुआ न आगे होगा जो वैशाख में थके हुए ब्राह्मण को अन्न का दान नहीं देता ॥३५॥ वह पिशाच बनकर पृथ्वी पर अपना ही मास खाता फिरता है इसलिये ब्राह्मण को यथा शक्ति अन्न देना उचित है ॥३६॥ हे राजन् ! अन्न दाता माता

वासोऽलङ्कारभूषणम् । असह्यं नाश्नतः पुंस स ह्यभुक्तवतो ध्रुवम् ॥३४॥ तस्मादन्नसमं दान न भूतं न भविष्यति । वैशाखे येन चादत्त मार्गश्रान्ते च भूसुरे ॥३५॥ स पिशाचो भवेद्भूमौ स्वमांसान्येव खादति । यथाविभूत्या दातव्यं तस्मादन्नं द्विजातये ॥३६॥ अन्नदो मातृपित्रादीन् विस्मारयति भूमिप । तस्मादन्नं प्रशंसन्ति लोकास्त्रैलोक्यवर्तिनः ॥३७॥ मातरः पितरश्चापि केवलं जन्महेतवः । अन्नदं पितरं लोके वदन्ति च मनीषिणः ॥३८॥ अन्नदे अन्नदे सर्वतीर्थानि अन्नदे सर्वदेवता अन्नदे सर्वधर्माश्च तिष्ठन्त्यरिधराजय ।३९। इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाख माहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे दाननिरूपणं नाम द्वितीयोध्यायः ॥२॥ छ ॥ नारद उवाच ॥ यो मर्त्यो द्विजवर्याय पर्यङ्कं तु

पिता को भी भुला देता है दानी ही को अपना सर्वस्व समझने लगता है इससे त्रिलोकी में सब अन्न की ही प्रशंसा करते हैं ॥३७॥ माता पिता तो केवल जन्म देते हैं परन्तु पण्डित लोग संसार में अन्न के दानी को ही पिता कहते हैं ॥३८॥ हे राजन् ! अन्न दाता में सब धर्म निवास करते हैं ॥३९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे दान-

निरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥ नारदजी बोले जो मनुष्य श्रेष्ठ ब्राह्मण को पलंग दान करता है ब्राह्मण की उस पर सुख से सुलाकर ठंडी-ठंडी हवा को जाय ॥१॥ तो सम्पूर्ण धर्मों के साधन से उसका शरीर निरोग रहता है, इस दान से सब ताप शांत और दूर हो जाते हैं ॥२॥ वह मनुष्य योगियों से भी दुर्लभ पद पाता है। जो मनुष्य वैशाख में धूप से थके

ददाति हि। यत्र स्वस्थः सुखं शेते शीतानिलनिषेवितः ॥ १॥ धर्मसाधनभूतो हि देहो निरुजमासते। तं दत्वा सकलं तापं निरस्य गतकल्मषः ॥२॥ अखण्डपदवीं याति योगिनामपि दुर्लभाम् वैशाखे घर्मतप्तानां श्रान्तानां तु द्विजन्मनाम् ॥३॥ दत्त्वा श्रमोपहं दिव्यं पर्यङ्कं मनुजेश्वर। न जातु सीदते लोके जन्ममृत्युजरादिभिः ॥ ४ ॥ गृहीत्वा ब्राह्मणो यत्र शेते वा जीवमास्थितः। आसीने सकलं पापं ज्ञानतोऽज्ञानतः कृतम् ॥५॥ विलयं याति राजेन्द्र कर्पूर इव चाग्निना। शयने ब्रह्मनिर्वाणं स नरो याति निश्चितम् ॥६॥ यो दद्यात्कशिपुं मासे वैशाखे स्नानवल्लभे। सर्वभोगसमायुक्त-स्तस्मिन्नेव हि जन्मनि ॥ ७ ॥ सान्वयो वर्तते नूनं रोगादिभिरनाहतः। आयुष्यं परमारोग्य

हुए ब्राह्मणों को सुन्दर श्रमनाशक पलंग दान करता है, वह मनुष्य हे राजन् ! संसार के जन्म मरण और वृद्धावस्था के कष्ट नहीं भोगता ॥३-४॥ उस पलंग पर ब्राह्मण के शयन करने से जीवन भर के जाने-अनजाने किए हुए पाप नष्ट हो जाते हैं जैसे अग्नि के स्पर्श से कपूर जल जाता है वैसे ही देने वाला मनुष्य निश्चय ही ब्रह्मपद पाता है ॥६॥ जो मनुष्य वैशाख मास में शैय्यादान करे, वह इसी जन्म में सब सुखों को भोगता है ॥ ७ ॥ उसके कुल की वृद्धि होती है कोई रोग नहीं होता, उसे बड़ी आयु, निरोगता, यश और धैर्य मिलता है ॥ ८ ॥ उस धर्मात्मा के कुल में सौ पीढ़ी तक कोई

मनुष्य वैशाखमासमें शैय्यादान करे, वह ऐसा जन्ममें सब सुखों को भोगता है ॥ ७ ॥ उसके कुल की वृद्धि होती है कोई रोग नहीं होता, उसे बड़ी आयु, निरोगता, यश और धैर्य मिलता है ॥ ८ ॥ उस धर्मात्मा के कुलमें सौ पीढ़ी तक कोई अधर्मी नहीं होता है इस मासमें दानादि करने का अपार फल होता है वैशाख के धर्मोंको इस तरह करनेवाला धर्मात्मा पुरुष सब भोगों को भोगकर अपना शरीर त्यागता है ॥९॥ जो वेदपाठी ब्राह्मणको तकिया दान देता है उसके सभी पाप

यशो धैर्यं च विन्दति ॥८॥ नाधार्मिकः कुले तस्य जायते शतपौरुषम् । भुक्त्वा तु सकलान्भोगां-स्ततः पञ्चत्वमेष्यति ॥ ९ ॥ निर्धूताखिलपापस्तु ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति । श्रोत्रियाय द्विजेन्द्राय यो दद्यादुपबर्हणम् ॥१०॥ सुखं निद्रां विना येन न नृणां जायते क्वचित् । सर्वेषामाश्रयो भूत्वा भुवि साम्राज्यमश्नुते ॥ ११ ॥ पुनः सुखी पुनर्भोगी पुनर्धर्मपरायणः । आसप्तजन्म राजेन्द्र जायते सर्वदा जयी ॥१२॥ पश्चात्सप्तकुलैर्युक्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते । तार्णं कटं तु यो दद्यात्कटमन्यदथापि वा ॥ १३ ॥ तत्र शेते स्वयं विष्णुः पत्रस्थः परमेश्वरः । यथा जलगता चोर्णा न जलैर्भिद्यते

नष्ट होजाते हैं और अन्तमें ब्रह्मपद प्राप्त होता है ॥१०॥ बिना इसके दिये मनुष्य सुखपूर्वक नहीं सो पाता है। और इसके दान करने से सबका आश्रय बनकर पृथ्वीका राज्य भोगता है ॥११॥ हे राजन् ! वह मनुष्य सातजन्म तक सदा सुखी, भोगी, धर्मपरायण और विजयी होता है ॥१२॥ फिर अपने सातों कुल समेत मुक्त होजाता है जो मनुष्य चटाई अथवा और किसी प्रकार का आसन देता है ॥१३॥ जिसपर पत्रशायी विष्णुभगवान् स्वयं बिराजते हैं इससे जलमें पड़ी हुई ऊन नहीं

भीजती ॥१४॥ वैसे ही संसारी जीव संसार के बन्धन को नहीं प्राप्त होता है, चटाईका देनेवाला पुरुष आसन और शय्या पर आरूढ हो सब तरह सुखी रहता है ॥१५॥ जो शयन करनेके लिये चटाई और कंबल दान देता है वह मुक्त होजाता है इसमें संदेह नहीं है ॥१६॥ निद्रासे दुःख दूर होजाता है और निद्रासे परिश्रम दूर होजाता है वही निद्रा चटाईपर सुखपूर्वक

क्वचित् ॥ १४ ॥ तथा संसारगो जन्तुः संसारे नैवं बध्यते । आसने शयने शक्तः कटदः सर्वतः सुखी ॥ १५ ॥ प्रश्रये शयनार्थाय यो दद्यात्कटकम्बलम् । तावन्मात्रेण मुक्तः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥१६॥ निद्रया हीयते दुःखं निद्रया हीयते श्रमः । सा निद्रा कटसंस्थस्य सुखं संजायते ध्रुवम् ॥ १७ ॥ यो दद्यात्कंबलंराजन् वैशाखे माधवागमे । अपमृत्योर्मुक्तो काल मृत्यो जीवति वै शतम् ॥१८॥ दद्याद्वस्त्र सूक्ष्मतरं द्विजेंद्रे धर्मकर्शिते । पूर्णमायुः समाप्नोति परत्र च परां गतिम् ॥१९॥ अन्तस्तापहरं दिव्यं कर्पूरं तु द्विजातये । दत्त्वा मोक्षमवाप्नोति दुःखशान्तिं च विन्दति ॥२०॥ कुसुमानि च यो दद्यात् कुङ्कुमं च द्विजातये । सार्वभौमो भवेद्राजा सर्वलोकवशंकरः ॥२१॥

आती है ॥ १७ ॥ हे राजन ! जो वैशाखमें कंबल का दान करता है वह अकालमृत्यु से छूटकर सौवर्षतक जीवित रहता है ॥१८॥ धूप से व्याकुल ब्राह्मणको जो मनुष्य पतला वस्त्र देता है उसकी पूर्ण आयु होती है और परलोकमें परमगति

नाशहोती है ॥२०॥ जो ब्राह्मणको फूल और कुंकुम दान करे तो सार्वभौमराजा हो सब प्राणी उसकी आज्ञामें रहें ॥२१॥

और पुत्र तथा पौत्रों युक्त होकर सब भोगोंको भोग मोक्ष पाता है

नाश होती है ॥२०॥ जो श्रीखण्ड की फूल और कुंकुम दान करे तो सार्वभौमराजा हो सब प्राणी उसको आज्ञामें रहे ॥२१॥ और पुत्र तथा पौत्रों युक्त होकर सब भोगोंको भोग मोक्ष पाता है त्वचा और हड्डी के संताप को चन्दन तत्काल दूर कर देता है ॥२२॥ अतः जो चन्दन दान करता है वह तीनों तापोंसे दूर हो मोक्षको प्राप्त होता है जो जलमें भीगी हुई खस, चंपा या कुशा दान करता है ॥२३॥ हे राजन् ! वह प्राणी सब प्रकारके सुख भोगता है सब देवता उसकी सहायता करते हैं।

पुत्रपौत्रादिभोगांश्च भुक्त्वा मोक्षमवाप्नुयात् । त्वगस्थिगतसन्तापं सद्यो हरति चन्दनम् ॥ २२ ॥ तापत्रयविनिर्मुक्तस्तद्दत्वा मोक्षमाप्नुयात् । औशीरं चाम्पकं कौशं यो दद्याज्जलवासितम् ॥२३॥ सर्वभोगेषु राजेन्द्र स तु देवसहायवान् । पापहानिं दुःखहानिं प्राप्य निर्वृतिमाप्नुयात् ॥२४॥ गोरोचं मृगनाभिं च दद्याद्वैशाखधर्मवित् । तापत्रयविनिर्मुक्तः परं निर्वाणमृच्छति ॥ २५ ॥ ताम्बूलं च कर्पूरं यो दद्यान्मेषगे रवौ । सार्वभौमसुखं भुक्त्वा परं निर्वाणमृच्छति ॥२६॥ शतपत्रीं च यूथीं च मेषमासेऽददन्नरः । स सार्वभौमो भवति पश्चान्मोक्षं च विन्दति ॥२७॥ केतकीं मल्लिकां वापि

उसके सब पाप और दुःख दूर हो जाते हैं और अन्त में मोक्ष पाता है ॥२४॥ जो वैशाख में गोरोचन और कस्तूरी दानकरता है, वह तीनों तापसे छूटकर मोक्षपद पाता है ॥२५॥ जो मेषकी संक्रान्तिमें तांबूल और कपूर दान करता है वह पृथ्वीमें सारे सुख भोगकर निर्वाणपद प्राप्त करता है ॥२६॥ जो मनुष्य सेवती और जुही दान करता है वह सार्वभौमराजा होकर अन्तमें मोक्षपद पाता है ॥२७॥ जो वैशाख में केतकी और मल्लिका दान करता है वह माधव भगवान्‌की आज्ञासे मोक्षपद पाता

है ॥ २८ ॥ जो मनुष्य ब्राह्मणको सुपारी और अन्य सुगन्धित द्रव्योंका दान देता है और हे राजन् ! जो नारियल दान करता है उसके पुण्यके फल चित्त लगाकर सुनो ॥२९॥ वह सात जन्मतक ब्राह्मणके घर जन्म लेता है और धनवान् तथा वेदपाठी होता है फिर वह सातों कुलसमेत विष्णुलोक को जाता है ॥३०॥ हे राजन् ! जो प्राणी विश्राम मंडप बना ब्राह्मण

यो दद्यान्माधवागमे । स तु मोक्षमवाप्नोति मधुशासनशासनात् ॥२८॥ पूगीफलं तु यो दद्यात्सुगन्धं तु द्विजातये । नारिकेलफलं राजंस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२९॥ सप्तजन्म भवेद्विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः । पश्चात्सप्तकुलैर्युक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ३० ॥ विश्राममण्डपं यस्तु कृत्वा दद्याद्द्विजन्मने । तस्य पुण्यफलं वक्तुं नाहं शक्नोमि भूपते ॥३१॥ सुच्छायामण्डपं यस्तु सिकताकीर्णमञ्जसा । सप्रपं कारयेद्यस्तु स तु लोकाधिपो भवेत् ॥३२॥ मार्गोद्यानं तडागं वा कूपं मण्डपमेव च । यः करोति स धर्मात्मा तस्य पुत्रैस्तु किं फलम् ॥ ३३ ॥ कूपस्तडाग उद्यानं मण्डपश्च प्रपा तथा । सद्धर्मकरणं पुत्रः सन्तानं सप्तधोच्यते ॥ ३४ ॥ एतेष्वन्यतमाभावे नोर्ध्वं गच्छन्ति

को देता है उसके पुण्यके फल कहने की मेरी सामर्थ्य नहीं हैं ॥३१॥ जो मनुष्य छायमंडप बनवाकर भीतर बालू बिछा उसमें प्याऊ लगा देता है वह स्वर्गलोक का स्वामी होता है ॥ ३२ ॥ जो मनुष्य मार्ग में बाग, तड़ाग, कूआँ, झोंपड़ी तथा सद्धर्मका करना यही उसका पुत्र है । सन्तान सात प्रकार की हैं ॥३४॥ इन सातों में से जो एक भी नहीं करता, वह

तथा सद्धर्मका करना यही उसका पुत्र है। सन्तान सात प्रकार की हैं ॥३४॥ इन सातों में से जो एक भी नहीं करता, वह मनुष्य स्वर्गको नहीं जाता, उत्तम शास्त्रों का सुनना, तीर्थयात्रा सतसंग ॥३५॥ जलदान, अन्नदान पीपल का पेड़ लगाना और पुत्र होना, ये सात प्रकार की सन्तान वेदवेत्ताओं ने कही हैं ॥३६॥ अन्य सैकड़ों धर्म करने पर भी मनुष्यों को सन्तान

मानवाः सच्छास्त्रश्रवणं तीर्थयात्रासज्जनसङ्गतिः ॥ ३५ ॥ जलदानं चान्नदानमश्वत्थारोपणं तथा ।
पुत्रश्चेति च सन्तानं सप्त वेदविदो विदुः ॥ ३६ ॥ नासन्ततिर्लभेल्लोकान् कृत्वा धर्मशतान्यपि ।
तस्मात् सन्तानमन्विच्छेत्सन्तानेष्वेककर्ता व्रजेत् ॥ ३७ ॥ पशूनां पक्षिणां चैव मृगाणां चैव भूरुहाम् ।
नोर्ध्वलोकं सुखं याति मनुष्याणां तु का कथा ॥ ३८ ॥ पूगीफलसमायुक्तं नागवल्लीदलैर्युतम् ।
कर्पूरागरुसंयुक्तं ददंस्ताम्बूलमुत्तमम् ॥३९॥ शारीरैः सकलैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः । तांबूलदो
यशो धैर्यं श्रियं चाप्नोति निश्चितम् ॥ ४० ॥ रोगी दत्त्वा विरोगः स्यादरोगी मोक्षमाप्नुयात् ।

नहीं मिलती इसलिये सन्तान की इच्छा करने वालों को इनमें से एक कर्म अवश्य करना चाहिये ॥ ३७ ॥ पशु, पक्षी, मृग और वृक्षों को भी स्वर्ग सुख नहीं मिलता फिर मनुष्यों का तो कहना ही क्या ? ॥३८॥ जो मनुष्य सुपारी, नागवल्ली, कपूर और अगर सहित पान दान करता है ॥३९॥ वह निश्चय ही शारीरिक पापों से मुक्त हो जाता है तथा यश, धैर्य और लक्ष्मी प्राप्त करता है ॥४०॥ रोगी रोग से छूट जाता है और निरोगी मोक्ष को पाता है। जो वैशाख में तापनाशक छाछ का

दान करता है ॥४१॥ वह विद्यावान् और धनवान् होता है इसमें सन्देह नहीं है। क्योंकि गर्मी की ऋतु में तक्र के समान कोई दान नहीं ॥४२॥ इसलिए मार्ग के कारण थके हुए ब्राह्मण को छाछ का दान करे, जो मनुष्य नीबू का रस और नमक डालकर अरुचिनाशक छाछ का दान करता है वह मोक्ष पाता है, जो गर्मी से व्याकुल ब्राह्मण को दही की लस्सी

वैशाखे मास यो दद्यात्तक्रं तापविनाशनम् ॥४१॥ विद्यावान् धनवान् भूमौ जायते नात्र संशयः। न तक्रसदृशं दानं धर्मकालेषु विद्यते ॥ ४२ ॥ तस्मात्तक्रं प्रदातव्यमध्वश्रान्तद्विजातये। जम्बीर-सुरसोपेतं लसल्लवणमिश्रितम् ॥४३॥ यस्तक्रमरुचिघ्नं तु दत्त्वा मोक्षमवाप्नुयात्। यो दद्याद्दधिमण्डं तु वैशाखे धर्मशान्तये ॥४४॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं नाहं शक्नोमि भूमिप। यो दद्यात्तण्डुला-न्दिव्यान्मुधुसूदनवल्लभे ॥ ४५ ॥ स लभेत्पूर्णमायुष्यं सर्वयज्ञफलं लभेत्। यो घृतं तेजसो रूप गव्यं दद्याद्द्विजातये ॥४६॥ सोऽश्वमेधफलं प्राप्य मोदते विष्णुमन्दिरे। उर्वारुडसंमिश्रं वैशाखे मेषगे रवौ ॥४७॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः श्वेतद्वीपे वसेद्ध्रुवम्। यश्चेक्षुदण्ड सायाह्ने दिवतापोप-

पिलाता है ॥४३॥४४॥ हे राजन्! उसके पुण्य का फल कहने की मुझमें सामर्थ्य नहीं है, जो वैशाख महीने में अच्छे चावल दान करता है ॥४५॥ उसकी बड़ी आयु होती है और वह सब यज्ञों के फल पाता है, जो तेजरूप गौ का घी दान देता है ॥४६॥ वह अश्वमेध का फल प्राप्त कर विष्णु भगवान के मन्दिर में आनन्द पाता है जो मेष संक्राति में ककड़ी और गुड़ दान करता है ॥४७॥ वह सब पापों से छूट श्वेत द्वीप को जाता है, जो मनुष्य दिन के ताप की शान्ति के लिये

वह सब पापोंसे छूटकर विष्णु की सायुज्यता पाता है, जो सायंकाल के समय ब्राह्मण को फल और पत्ते का दान करे उसके

वह सब पापोंसे छूटकर विष्णु की सायुज्यता पाता है, जो सायंकाल के समय ब्राह्मण को फल और पने का दान करे उसके पितरों को निश्चय सुधापान मिलता है ॥४६–५०॥ जो वैशाख महीना में पक्के आम के फल और पने का दान करता

शान्तये ।४८। ब्राह्मणाय च यो दद्यात्तस्य पुण्यमनन्तकम् । वैशाखे पानकं दत्त्वा सायाह्ने श्रमशान्तये ॥४६॥ सर्वपापविमुक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् । सफलं पानकं मेषमासे सायं द्विजातये ॥५०॥ दद्यात्तेन पितॄणां तु सुधापानं न संशयः । वैशाखे पानकं चूतसुपक्कफलसंयुतम् ॥ ५१ ॥ तस्य सर्वाणि पापानि विनाशं यान्ति निश्चितम् । यो दद्याच्चैत्रदर्शे तु कुम्भ पूर्णं तु पानकैः ॥ ५२ ॥ गयाश्राद्धशतं तेन कृतमेव न संशयः । कस्तूरीकर्पूरोपेतं मल्लिकोशीरसंयुतम् ॥ ५३ ॥ कलशं पानकपूर्णं चैत्रदर्शे तु मानवः । दद्यात् पितॄन् समुद्दिश्य स षण्णवतिदो भवेत् ॥ ५४ ॥

इति श्रीस्कंद० वैशाखमा० नारदांबरीषसंवादे पानादिदानिरूपणं नामतृतीयोऽध्याय ॥३॥

है ॥५१॥ उसके सब पाप निश्चय ही दूर हो जाते हैं । चैत्र महीना की अमावस्या को पेय से भरे घड़े का दान करने से ॥५२॥ सौ गया श्राद्ध कर लिया इसमें सन्देह नहीं । चैत्र की अमावस्या को कस्तूरी, कपूर, मल्लिका, खस आदि ॥५३॥ वस्तुओंसे युक्त जलकुम्भका दान जो पित्रीश्वरोंके लिये करता है उसको छियानवें श्राद्ध करने का पुण्य निसन्देह होता है ॥५४॥

इति श्री स्कन्द पुराणे वैशाख माहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे दाननिरूपणं नाम तृतीयोऽध्याय ॥३॥

अथ अध्याय ॥ ४ ॥ नारदजी बोले, वैशाख मास में तेल मलना, दिन में सोना कांसे के बर्तन में भोजन, खाट पर सोना, घर में स्नान निषिद्ध भोजन ॥१॥ दोबारा भोजन और रात्रि काल में भोजन वर्जित हैं। वैशाख के महीना में नियम पूर्वक कमल के पत्तों पर भोजन करने से ॥२॥ सब पापों से निवृत होकर विष्णुलोक मिलता है। वैशाख की दुपहरी में थके हुए ब्राह्मणों की ॥३॥ चरण सेवा करने से सब व्रतों से उत्तम व्रत कर लिया समझो। जो दुपहर के समय मार्ग चलने

॥छ॥ नारद उवाच ॥ तैलाभ्यङ्ग दिवा स्वापं तथा वै कांस्यभोजनम्। खट्वानिद्रां गृहे स्नानं निषिद्धस्य च भक्षणम् ॥ १ ॥ वैशाखे वर्जयेदष्टौ द्विभुक्तं नक्तभोजनम्। पद्मपत्रे तु यो भुङ्क्ते वैशाखे व्रतसंस्थितः ॥२॥ स तु पापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति। वैशाखे मासि मध्याह्ने श्रान्तानां तु द्विजन्मनाम् ॥ ३ ॥ पादावनेजनं कुर्यात्तद्व्रतं सुव्रतोत्तमम्। अध्वश्रान्तं द्विजं यस्तु मध्याह्ने स्वगृहागतम् ॥ ४ ॥ उपवेश्यासने रम्ये कृत्वा पादावनेजनम्। धृत्वा शिरसि ताश्चापो विध्वस्ताखिलबन्धनः ॥ ५ ॥ गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति निश्चितम्। अस्नायी वाप्यपात्राशी वैशाखं तु नयेद्यदि ॥ ६ ॥ रासभीं योनिमासाद्य पश्चादश्वतरी भवेत्। दृढाङ्गो रोगहीनश्च तथा

से अपने घर आये हुए ब्राह्मणों को ॥४॥ सुन्दर आसन देकर उसके चरणों को दबाता है और चरणोदक को अपने मस्तक पर छिड़कता है उसके सब बन्धन कट जाते हैं ॥५॥ उसको गङ्गादि सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान करने के बराबर फल

चांडाल योनि प्राप्ति होती है। वैशाख महीने में मेषकी संक्रांति के दिन ॥८॥ बाहर किसी तीर्थपर भी स्नान नहीं करता उसको कुत्तेकी योनि सौ जन्म तक प्राप्ति होती है। वैशाख मासमें बिना स्ना किये अथवा बिना दान दियें व्यतीत करने

वैं० मा० २१

स्वास्थोऽपि मानवः ॥ ७ ॥ वैशाखे तु गृहे स्नात्वा चाण्डालीं योनिमाप्नुयात् । वैशाखे मासि राजेन्द्र मेषसंस्थे दिवाकरे ॥८॥ न करोति बहिः स्नानं श्वानयोनिशतं व्रजेत । अस्नात्वा चाप्यदत्त्वा च वैशाखे येन नीयते ॥ ९ ॥ स पिशाचो भवेन्नूनमवैशाखादधो व्रजेत् । यो न दद्याज्जलं चान्नं वैशाखे लोभमानसः ॥१०॥ पापहानि दुःखहानिं नैवाप्नोति न संशयः । नदीस्नानं तु यः कुर्या-द्वैशाखे विष्णुतत्परः ॥११॥ जन्मत्रयार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः । समुद्रगानदीस्नानं कुर्या-त्प्रातर्भगोदये ॥१२॥ सप्तजन्मार्जितैः पापैस्तत्क्षणादेव मुच्यते । कुर्यादुषसि यः स्नान सप्तगङ्गासु मानवः ॥१३॥ कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः । जाह्नवी वृद्धगङ्गा च कालिन्दी च

मा० टी० अ० ४

से ॥९॥ पिशाच योनि प्राप्तकर नरकों को चला जाता है। वैशाख मासमें अन्नदान व जलदान न करने से ॥१०॥ पाप और दुख कभी दूर नहीं होते हैं इसमें संशय नही है। वैशाख मासमें नदी में स्नान करके विष्णु भगवान् में मन लगाने से ॥११॥ तीनों जन्मों के संचित पाप नष्ट होजाते हैं इनमें संशय नहीं। प्रातःकाल सूर्योदय होनेपर सागर से मिलने वाली

नदियों में स्नान करने से ॥१२॥ सात जन्म के भी पाप शीघ्र नष्ट होजाते हैं, मनुष्यों के उषःकाल में सप्तगङ्गा में स्नान करने से ॥१३॥ कोटिजन्म पर्यंत के पाप तुरंत नष्ट होजाते हैं इसमें संशय नहीं। जाह्नवी, वृद्धगङ्गा, कालिन्द्री, सरस्वती ॥१४॥ कावेरी नर्मदा और वेणी यह सात गङ्गा कही जाती हैं। वैशाख मासमें देवखात अर्थात् अप्राकृत जलाशयों में स्नान

सरस्वती ॥१४॥ कावेरी नर्मदा वेणी सप्त गङ्गाः प्रकीर्तिताः। देवखातेषु यः कुर्यात्प्रातर्वैशाख-मञ्जनम् ॥१५॥ जन्मारभ्य कृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः। वैशाखे मासि संप्राप्ते यो वापीष्व-वगाहनम् ॥१६॥ प्रातः कुर्यान्महाराज महापातकनाशनम्। अपि गोष्पदमात्रेषु बहिःस्थेषु जलेषु च ॥१७॥ तिष्ठन्ति सरितः सर्वा गङ्गाद्या इति निश्चयः। इति जानन् समाप्नोति सर्वतीर्थाधिकं फलम् ॥१८॥ क्षीरं रसाधिकं क्षीराद्धिकं दधि भूमिप। दध्नोधिकं घृतं यद्वदूर्जो मासोधिकस्तथा ॥१९॥ कार्तिकादधिको माघो माघाद्वैशाख उत्तमः। तस्मिन्मासे कृतो धर्मो वर्धते वटबीजवत्

करने से ॥१५॥ जन्मसे लेकर उस समय तक के पापों से छूट जाता है इसमें संशय नहीं ॥१६॥ वैशाख महीने में बावड़ी में स्नान करने से घर से अलग गौके चरण रखने की जगह के समान जल भरा हो उसमें स्नान करने से हे राजन्! बड़े-बड़े

दूध से दही अधिक और दही से घृत अधिक उत्तम है ॥१९॥ ऐसे ही महीनों में कार्तिक से माघ मास अधिक है माघ से वैशाख मास अधिक है।

दूध से दही अधिक और दही से घृत अधिक उत्तम है ।।२९।। ऐसे ही महीनों में कार्तिक से माघ मास अधिक है माघ से वैशाख मास अधिक है । इसमें धर्म करना बड़ के बीज की तरह बढ़ता है ।।३०।। धन सम्पन्न अथवा अत्यन्त दरिद्री अथवा पराधीन को भी जो वस्तु मिल जाय वह ब्राह्मण को देनी उचित है ।।२१।। कन्द, मूल, फल, शाक, नमक, गुड़,

वै० मा०

।।२०।। आढ्यो वाऽतिदरिद्रो वा परतंत्रोऽथवा नरः । यद्वस्तु लभते तेन तद्दातव्यं द्विजातये ।।२१।। कन्दं मूलं फलं शाकं लवणं गुडमेव च । कोलं पत्रं जलं तक्रमानन्त्यायोपकल्पते । नादत्तं लभते क्वापि ब्रह्माद्यैस्त्रिदशैरपि ।।२२।। दानेन हीनस्तु भवेदकिंचनो निष्किंचनत्वाच्च करोति पापम् । पापादवश्यं नरकं प्रयाति दातव्यमस्मात्सुखमिच्छता सदा ।। ३२ ।। यथा गृहं सर्वगुणोपपन्नं परिच्छदैर्हीनमशोभनं तथा । मासेषु धर्मः सकलेष्वनुष्ठितो वैशाखहीनस्तु वृथैव याति ।।२४।। यथैव कन्या सकलैश्च लक्षणैर्युक्तापि जीवत्पतिलक्षणा हि । क्रियापि साङ्गा सकलापि राजन्

मा० टी०

बेर, पत्र, जल और छाछ जो वस्तु दान की जायगी अपरिवर्धित होती जायगी बिना दिये ब्रह्मादि देवताओं को भी नहीं मिलेगा ।।२२।। दान नहीं करने से दरिद्रता आ जाती है दरिद्री होने से पाप किया जाता है । पाप करने से नरक मिलता है इसलिसे सुख की इच्छा करने वाले को अवश्य दान करना चाहिये ।। २३ ।। कोई बड़ा मकान अच्छा सुन्दर और सब सामग्रियों से शोभायमान हो उस पर छत न हो तो शोभा नहीं पाता है ऐसे ही जो मनुष्य और महीनों में सब प्रकार

के धर्म करता है और वैशाख में कुछ नहीं करता है उसका किया सब वृथा ही है ॥२४॥ जैसे सुलक्षिणी स्त्री पति के विद्यमान होने से ही लक्षणवती होती है इसी तरह सभी धर्म सांगोपाङ्ग वैशाख में न करने से वृथा ही होते हैं ॥ २५ ॥ जैसे दया न होने पर सब गुण वृथा हैं ऐसे ही वैशाख में धर्म किये बिना सम्पूर्ण क्रिया हैं। जैसे उत्तम शाक भी बिना नमक के स्वादिष्ट नहीं लगता है वैसे ही जो ॥२६॥पुण्य वैशाख में नहीं किये जाते हैं वे अच्छी रीति से सेवनीय नहीं हैं।

वैशाखहीना तु वृथैव तां विदुः ॥२५॥ दयाविहीनास्तु यथा गुणा वृथा वैशाखधर्मेण बिना तथा क्रिया । शाकं तु यद्वल्लवणेन हीनं न रोचते सर्वगुणोपपन्नम् ॥२६॥ वैशाखहीनं तु तथैव पुण्यं न साधुसेव्यं न फलाप्तिहेतुः । यद्वद्विभूषा सुकृता न शोभते वस्त्रेण हीना ललना सुरूपा ॥२७॥ क्रियाकलापः सुकृतोऽपि पुंभिर्न भासते तन्मधुमासहीनम् ॥२८॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन येन केनापि जन्तुना । धर्मो वैशाखमासे तु कर्तव्य इति निश्चयः ॥२९॥ मधुसूदनमुद्दिश्य मेषसंस्थे दिवाकरे । प्रातः स्नात्वार्चयेद्विष्णुमन्यथा नरकं व्रजेत् ॥ ३० ॥ वैशाखः सकलो मासो मधुसूदनदैवतः ।

न उनका कुछ फल मिलता है जैसे कोई रूपवती स्त्री शृङ्गार होने पर भी नंगी अच्छी नहीं लगती है ॥२७॥ वैसे ही जो मनुष्य अनेक प्रकार का धर्म करता है परन्तु वैशाख में न करने से वे शोभा नहीं पाते हैं ॥ २८ ॥ इसलिये जैसे हो

... नरक मिलता है इसी वैशाख मास तुरन्त फलदाता
है मधुसूदन भगवान इसके देवता हैं इसमें तीर्थयात्रा जप, यज्ञ, दान और होम ...

... नरक मिलता है ॥३०॥ वैशाख मास तुरन्त फलदाता है मधुसूदन भगवान् इसके देवता हैं इसमे तीर्थयात्रा जप, यज्ञ, दान और होम आदि का फल भी अधिक होता है ॥३१॥ नीचे लिखे मन्त्र से मधुसूदन भगवान की प्रार्थना करे। हे मधुसूदन! देवदेव! हे माधव! मैं वैशाख में मेष की संक्राति

तीर्थयात्रातपोयज्ञदानहोमफलाधिकः ॥ ३१ ॥ प्रार्थनामंत्रः—मधुसूदन देवेश वैशाखे मेषगे रवौ। प्रातः स्नान करिष्यामि निर्विघ्नं कुरु माधव ॥३२॥ अर्घ्यमन्त्र वैशाखे मेषगे भानौ प्रातः स्नान-परायणः। अर्घ्यं तेऽहं प्रदास्यामि गृहाण मधुसूदन ॥ ३३ ॥ गङ्गाद्याः सरितः सर्वास्तीर्थानि च ह्रदाश्च ये। प्रगृह्णन्तु मया दत्तमर्घ्यं सम्यक् प्रसीदतः ॥ ३४ ॥ ऋषभः पापिनां शास्ता त्वंयमः समदर्शनः। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं यथोक्तफलदो भव ॥ ३५ ॥ इत्यर्घ्यांश्च समर्प्याथ पश्चात् स्नानं समाचरेत्। वाससी परिधायाथ कृत्वा कर्माणि सर्वशः ॥३६॥ मधुसूदनमभ्यर्च्य प्रसूनैर्माधवोद्भवैः।

भर प्रातःकाल स्नान करने की कामना करता हूँ आप इसे निर्विघ्न पूर्ण कर दीजिये ॥३२॥ फिर अर्घ्य दे। अर्घ्यमन्त्र का अर्थ—हे मधुसूदन! वैशाख में मेष की संक्रान्ति में मैं स्नान कर आपको अर्घ्य देता हूँ इसे भलीभांति ग्रहण कीजिये ॥३३॥ गङ्गादि सब नदी, तीर्थ, सब जलाशय, मेरे दिये हुये अर्घ्य को प्रसन्नता से ग्रहण करो और मुझ पर प्रसन्न हो ॥३४॥ आप पापियों पर शासक योग्य समदर्शी, सबके स्वामी हैं इस लिये मेरे दिये अर्घ्य को ग्रहण कर यथोचित फल दीजिये ॥३५॥

इस प्रकार अर्घ्य दे स्नान करे और फिर वस्त्र पहनकर आह्निक कर्मों को करे ॥३६॥ वैशाख में होनेवाले फूलों से मधुसूदन भगवान् का पूजन करके विष्णुभगवान् की वैशाखमास सम्बन्धी दिव्य कथा सुने ॥३७॥ वह कोटि जन्म के संचित पापों से छूटकर मोक्ष पाता है, उसको पृथ्वी, स्वर्ग और पाताल कहीं भी दुख नहीं होता ॥३८॥ वह कभी गर्भमें नहीं आता

श्रुत्वा विष्णुकथां दिव्यामेतन्मासप्रशंसिनीम् ॥३७॥ कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुक्तो मोक्षमवाप्नुयात् । न जातु खिद्यते भूमौ न स्वर्गे न रसातले ॥३८॥ न गर्भे जायते क्वापि न भूयः स्तनपो भवेत् । वैशाखे कांस्यभोजी यस्तथा चाश्रुतसत्कथः ॥३९॥ न स्नातो नापि दाता च नरकानेव गच्छति । ब्रह्महत्यासहस्रस्य पाप शाम्येत्कथंचन ॥ ४० ॥ वैशाखे येन न स्नातं तत्पापं नैव गच्छति । स्वाधीनेन च कायेन ह्यप्सु स्वातंत्र्यवर्तिषु ॥ ४१ ॥ स्वाधीनजीह्वयोच्चार्यं हरिरित्यक्षरद्वयम् । न कुर्याद्यदि वैशाखे प्रातः स्नानं नराधमः ॥४२॥ जीवन्नेव च पञ्चत्वमागतो नात्र संशयः । येन

है और न कभी माता का दूध पीता है, जो वैशाख में कांसेके पात्रमें भोजन करता है और उत्तम २ कथा नहीं सुनता ॥३९॥ न स्नान करता है न दान । वह नरक में ही जाता है, हजार ब्राह्मणों की हत्याका पाप किसी तरह दूर हो जाता है ॥४०॥ परन्तु जो वैशाख में स्नान नहीं करता उसका पाप कभी दूर नहीं होता, जो मनुष्य खुले शरीर से जलमें स्नान करता

नहीं करता है ॥ ४२ ॥ तो उसे जीवित हुआ ही मरा समझो इसमें कोई सन्देह नहीं है, जिसने किसी प्रकार

नहीं करता है ॥ ४२ ॥ तो उसे जीवित हुआ ही मरा समझो इसमें कोई सन्देह नहीं है, जिसने किसी प्रकार भी वैशाख में मधुसूदन भगवान् का पूजन नहीं किया ॥४३॥ वह मूढ़बुद्धि सूकर की योनि पाता है, जो तुलसीदल से वैशाख में मधुसूदन भगवान् का पूजन करता है ॥ ४४ ॥ वह सार्वभौम राजा हो कोटि जन्म तक अनेक सुख भोगता है, फिर

केनाप्युपायेन माधवे मधुसूदनम् ॥ ४३ ॥ नार्चयेद्यदि मूढात्मा सौकरीं योनिमाप्नुयात् । योऽर्चये-त्तुलसीपत्रैर्वैशाखे मधुसूदनम् ॥४४॥ नृपो भूत्वा सार्वभौमः कोटिजन्मसु भोगवान् । पश्चात्कोटि-कुलैर्युक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीष संवादे वैशाखधर्मप्रशंसनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ छ ॥

नारद उवाच ॥ वैशाखः सर्वधर्मेभ्यस्तपोधर्मेभ्य एव च । कथं स सर्वमासेभ्यो दानेभ्योत्यधिको भवेत् ॥१॥ तद्वक्ष्यामि महाप्राज्ञ शृणु चैकमना भव । कल्पान्ते देवराड्विष्णुः शेषशायी महाप्रभुः

अपने करोड़ कुलोंको लेकर विष्णुकी सायुज्य मुक्ति पाता है ॥४५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे वैशाखधर्मप्रशंसनं चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ नारदजी कहने लगे हे राजन् ! वैशाख मास सब धर्मों सब प्रकार के तपों, सब महीनों से और सब दानों से अधिक क्यों है ॥१॥ हे महाप्राज्ञ ! अब में तेरे सामने कहता हूँ तू ध्यान से सुन, जब सब योगों का अन्त होता है तब सब देवताओं के राजा शेषशायी विष्णुभगवान् ॥२॥ सम्पूर्ण लोक जीवों को अपने उदर में

समेट समुद्र में शयन करते हैं और योगमायाके प्रतापसे अनेक एकता को प्राप्त होते हैं ॥३॥ एवं एक निमेष व्यतीत होनेपर वेद प्रार्थना करके भगवान् को जगाते हैं तब भगवान् ने अपने उदरमें स्थित जीवोंकी रक्षा की ॥४॥ और उन्हें अपने २ कर्मोंका फल देने के लिये सृष्टिके रचने का मनमें विचार किया, तब विष्णु भगवान्की नाभिसे त्रिलोकी का आधार रूप

॥ २ ॥ कुक्षिस्थलोकसङ्घोऽयं स शेते प्रलयार्णवे । अनेको ह्येकतां प्राप्य मूर्तिभिर्योगमायया ॥३॥ निमेषस्यावसाने तु श्रुतिभिर्बोधितस्ततः । कुक्षिस्थजीवसङ्घानां रक्षां चक्रे दयानिधिः ॥ ४ ॥ तत्तत्कर्मफलप्राप्त्यै सृज्यान् स्रष्टुं मनो दधे । तस्य नाभेरभूत्पद्मं सौवर्णं भुवनाश्रयम् ॥५॥ ब्रह्माणं जनयामास वैराजं पुरुषाह्वयम् । तस्मिन् ससर्ज भगवान् भुवनानि चतुर्दश ॥ ६ ॥ भिन्नकर्माशय-प्राणिसङ्घांश्च त्रिविधान बहून् । त्रिगुणान् प्रकृतिं लोके मर्यादाश्चाधिपांस्तथा ॥ ७ ॥ वर्णाश्रम-विभागांश्च धर्मक्लृप्तिंच सोऽकरोत् । वेदैश्चतुर्भिस्तंत्रैश्च सहितान् स्मृतिभिस्तथा ॥ ८ ॥ पुराणै-

सुवर्णमय कमल उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥ उसी कमलमें से विराट् पुरुषरूपी ब्रह्मा उत्पन्न हुआ, फिर भगवान् ने उस विराट् पुरुषमें चौदह भुवन उत्पन्न किये ॥६॥ जिनके भिन्न २ कर्म और आश्रय हैं अनेकों समूह रचे, फिर सत, रज, तम तीन गुण, प्रकृति, मर्य्यादा और भुवनों के स्वामी रचे ॥७॥ तत्पश्चात् वर्णाश्रम के विभाग कर धर्मकी कल्पना करते हुये चारों वेद तंत्र, स्मृति पुराण ... श्रद्धा करने लगी ॥१०॥ प्रजा अपने-अपने आश्रमोचित धर्मोंमें लगी हुई है या नहीं यह देखने के लिये साक्षात् ...

...श्रद्धा करने लगा ॥१०॥ प्रजा अपने-अपने आश्रमोचित धर्मोंमें लगी हुई है या नहीं यह देखने के लिये साक्षात् अविनाशी सर्वान्तर्यामी भगवान् डर दिखाने और परीक्षाके निमित्त आये ॥११॥ प्रजा सम्पूर्ण धर्मोंको किस समय करे, ऐसी भगवान् चिन्ता करने लगे ॥ १२ ॥ मैंने वर्षाकाल

रितिहासैश्च स्वाज्ञारूपैर्महेश्वरः । ऋषीन् प्रवर्तकांश्चक्रे धर्मगुप्त्यै महाप्रभुः ॥ ९ ॥ तैः प्रवर्तित-धर्मास्तु वर्णाश्रमविभागजाः । प्रजाः श्रद्दधिरे सर्वाः स्वोचितान् विष्णुतोषदान् ॥१०॥ तांस्तु प्रवर्तमानास्तु स्वाश्रमान् द्रष्टुमीश्वरः । हृदिस्थोऽप्यव्ययः साक्षाद्बिभीषार्थं परीक्षया ॥११॥ अनूनान् कुशलान् यत्र धर्मान् कुर्वन्ति वै प्रजाः । स कालः को भवेद्विद्वानिति तं चिन्तयन् प्रभुः ॥१२॥ वर्षाकालो मया सृष्टः सीदन्त्यस्ता इमाः प्रजाः । तत्र नूनं न कुर्वन्ति धर्मान्पङ्काद्युपद्रुताः ॥१३॥ तान् दृष्ट्वा कोप एव स्यात्तेषु तुष्टिर्न मे भवेत् । मयेक्षिता न सीदन्तु तस्मात्तानवलोकये ॥१४॥ शरद्यपि तथा पूर्तिः कर्षणान्नैव जायते । केचित्पक्वफलासक्ताः केचिद् वृष्टिभिरर्दिताः ॥१५॥

निर्माण किया, इसमें सब प्रजा कीचड़ आदिमें फँस दुखी होरही है जिससे सब धर्मोंको नहीं कर सकती ॥ १३ ॥ यह देख क्रोध उत्पन्न होता है, मन प्रसन्न नहीं । मेरे देखते कोई दुःख नहीं पाए अतएव उन्हें देखूं ॥ १४ ॥ शरदकाल में सब खेती में लग रहे हैं इससे पूर्ण रीति से धर्म नहीं कर सकते हैं कोई पके फल की अपेक्षा कर रहे हैं कोई वर्षासे पीड़ित

हैं ॥१५॥ कोई शीत से दुःखी हैं अतएव धर्म नहीं करते । इन्हें देख मुझे रोष उत्पन्न होता है, इनकी उलटी मति देख-कर मुझे सन्तोष नहीं ॥१६॥ हेमन्त ऋतु में सरदी के मारे कोई प्रातःकाल नहीं उठता, सूर्योदय से पहले न उठते देख मुझे क्रोध उत्पन्न होता है ॥१७॥ शिशिर ऋतुमें भी प्रातःकाल के समय शीत से पीड़ित रहते हैं तथा फसल पकजाने

केचिच्छीतार्दिता राजस्तान् दृष्ट्वा रोष एव मे । वैगुण्यं पश्यमानस्य न मे तोषोऽभिजायते ॥१६॥
उत्थापन तु नेष्यन्ति प्रातर्हेमन्त आगते । कोपो मेऽनुत्थितान् दृष्ट्वा प्रातः सूर्योदये सति ॥१७॥
शिशिरेऽपि तथैवार्ताः प्रातःकाल इमाः प्रजाः । तथा पक्वफलादान सक्ता ह्यानिशमञ्जमा ॥१८॥
पुनः शीतार्दिताः प्रातः स्नानार्थमिति चिन्तिताः तेषां तु कर्मलोपः स्यान्नैव पूर्तिः कथञ्चन ॥१९॥
प्रेक्षायाः समयो नायमिति चिन्ताकुलो विभुः । वसन्तसमयं मेने सर्वापत्तिनिवारकम् ॥२०॥ स्नाने
दाने तथा यागे क्रियायां भोग एव च । नानाधर्मविधाने च ह्यनुकूलो ह्ययमृतुः ॥२१॥ अप्रयासेन

की प्रतीक्षा करते हैं ॥१८॥ फिर जो मनुष्य जाड़े के मारे प्रातःकाल स्नान करने के लिये केवल सोचा ही करते हैं उनका शुभ कर्म लुप्त होता जाता है जो कभी पूरा नहीं होता ॥१९॥ यह समय प्रेक्षणका नहीं है ऐसा विचार कर भगवान् ने वसन्त ऋतुको सम्पूर्ण पातकों को निवारण करने वाली माना है ॥२०॥ यह ऋतु स्नान, दान, यज्ञ, क्रिया भोग और सब

हैं जैसे-तैसे लोगों को धन से सुख तो मिलता ही है ॥ २२ ॥ जो विष्णु भगवान् के भरोसे रहने वाले लोगों के धर्म का

हैं जैसे-तैसे लोगों को धन से सुख तो मिलता ही है ॥ २२ ॥ जो विष्णु भगवान् के भरोसे रहने वाले लोगों के धर्म का साधनही द्रव्य है, वसन्तऋतुमें सम्पूर्ण द्रव्य लोगों को सुखदायक होते हैं ॥२३॥ दानयोग्य, धर्मयोग्य और सब कुछ भोगने योग्य निर्धन, लूले, लंगड़े, व्याकुल और माहात्माओं को ॥२४॥ सम्पूर्ण द्रव्य और जलादि सुलभ हैं इसमें संशय नहीं है, मेरे

लभ्यानि द्रव्याण्यसुभृतां ध्रुवम् । येन केन च द्रव्येण तुष्टिस्तनुभृतां भवेत् ॥ २२ ॥ विष्णोराधारभूतानां तद्द्रव्य धर्मसाधनम् । वसन्ते सकलं द्रव्य प्राणिनां तु सुखावहम् ॥२३॥ दानयोग्यं धर्मयोग्यं भोगयोग्यं तु सर्वशः । निर्धनानां तु पङ्ग्वादिविकलानां महात्मनाम् ॥ २४ ॥ द्रव्याणि च सुलभ्यानि जलादीनि न संशयः । द्रव्यै रेतैः स्वात्महितं धर्मं कुर्वन्ति मत्प्रियाः ।२५। पत्रैःपुष्पैः फलैरन्यैः शाकैश्चापि प्रियोक्तिभिः । स्रक्ताम्बूलैश्चन्दनाद्यैः पादप्रक्षालनादिभिः ॥२६॥ प्रश्रयाद्यैरहं तेषां वरदोऽहमितीरयन् । सञ्चित्य भगवान्विष्णुः प्रतस्थते रमया सह ॥२७॥ वनानि सर्वतः पश्यन् विकसित्कुसुमानि च । हृष्टपुष्टजनाकीर्णं मत्तालिद्विजसेवितम् ॥२८॥ आश्रमाणां महार्हाणां वनग्राम

प्रियजन इन द्रव्यों से अपना हित साधन करते हैं ॥२५॥ पत्र, पुष्प, फल, शाकादि, प्रिय वचन, माला, तांबूल, चन्दन पगधोना ॥२६॥ तथा नम्रता से साधन करते हैं। मैं उनको वर देता हूँ ऐसा कहते हुए विष्णुभगवान् लक्ष्मी सहित ॥२७॥ चारों ओर वन देखते चले जिनमें अनेक प्रकार के फूल खिल रहे हैं, जिनमें हृष्ट पुष्ट प्राणी रहते हैं और मतवाले भ्रमर और

पक्षी विचर रहे हैं ॥२८॥ ग्रामवासियों के बहुमूल्य आश्रमों के आंगन, उद्यान स्थल लक्ष्मीको दिखाने लगे ॥२९॥ उनकी देवता मुनीश्वर, सिद्ध, चारण, गंधर्व, किन्नर, नाग, राक्षस सब स्तुति करते हैं ॥३०॥ वर्णाश्रमवासियों के घरोंमें जाकर मीनकी संक्रांतिसे कर्ककी संक्रांति तक लक्ष्मी और सब देवताओं और मुनियों सहित भगवान् ॥३१॥ रह करके लोगों के कर्मों का

निवासिनाम् । प्राङ्गणादीनि रम्याणि ह्युद्यानानि स्थलानि च ॥२९॥ रमायै दर्शयन्विष्णुः सहदेवैर्मु-नीश्वरैः । सिद्धचारणगन्धर्वकिन्नरोरगराक्षसैः ॥ ३० ॥ स्तूयमानोऽभ्यगाद्गेहान्वर्णाश्रमनिवासिनाम् । मीनादिकर्कटान्तं वै स तिष्ठन् रमया सुरैः ॥ ३१ ॥ सार्द्धं प्रतीक्ष्य पुरुषान् कृताकृतसपर्यया । तत्र धर्मवतां पुंसां ददातीष्टान् मनोरथान् ॥३२॥ मत्तान्न सहते पुंसो हरत्यायुर्धनादिकम् । यदि कुर्वन्ति वैशाखे सपर्यां परमात्मनः ॥ ३३ ॥ तत्रापि चलमूर्तीनां साधूनां यत्र वै विभुः । मासेष्व-न्येषु यज्जातं कर्मलोपं सहिष्यति ॥ ३४ ॥ यथा देशागतं भूपं दृष्ट्वा जानपदाः प्रजाः । यदि तं

निरीक्षण करते हैं । धर्माचरणवाले पुरुषों की मनोकामना पूरी कर देते हैं ॥३२॥ और मदोन्मत्त की आयु और धनादि को हरते हैं, जो वैशाखमें भगवान् की पूजा करते हैं तथा उनके चलमूर्ति रूप साधुमहात्माओं की सेवा करते हैं तथा अन्य महीनों में नहीं करते, उनके अपराध को भगवान् क्षमा कर देते हैं ॥३३॥३४॥ जैसे अपने देशमें आये हुए राजा को देख उस देशके

जिनकी पूजा सेवा ठीक नहीं उन्हें दण्ड देता है ऐसे ही विष्णुभगवान् वैशाख मासमें ॥३७॥ जो अच्छी रीतिसे पूजा करते हैं उन्हें मनवांछित फल देते हैं और जो नहीं करते हैं उनके धनादि को हर लेते हैं ॥३८॥ धर्मके रक्षक देव-देव सारंगधर

चोपतिष्ठन्ति प्रश्रयाद्यैर्महार्हणैः ॥३५॥ तदाकारादिकं न्यूनं पूर्णं जानाति पार्थिवः। पुनरप्यधिकं चेष्टं तुष्टो दास्यति निश्चितम् ॥३६॥ तदा त्वकृतपूजानां दण्डं तेषां करोति च। तथा विष्णुः स्वकीयानां वैशाखे माधवागमे ॥३७॥ सपर्यां कुर्वतां पुंसां ददातीष्टान् मनोरथान्। अकुर्वतां तथा पुंसां धनादीनि हरत्यलम् ॥ ३८ ॥ धर्मगोप्तुर्महाविष्णोर्देव देवस्य शार्ङ्गिणः। परीक्षाकाल एवाष तस्मान्मासोत्तमो ह्ययम् ॥३९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे वैशाख श्रेष्ठत्वनिरूपणंनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

नारद उवाच ॥ वैशाखेऽध्वगतप्तानां तृषार्त्तानां महीपते। जलदानमकुर्वाणस्तिर्यग्योनिम-

विष्णुभगवान् इस मासमें प्राणी की परीक्षा करते हैं इसलिये यह महीना सबसे उत्तम है ॥३९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाख माहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे वैशाखश्रेष्ठत्वनिरूपणं नाम पंचमोऽध्यायः ॥५॥

नारदजी बोले—हे राजन्! वैशाख महिने में मार्ग चलने से व्याकुल और प्यासे मनुष्यों को जो जल दान नहीं करते वह

पक्षीकी योनि पाते हैं ॥१॥ उदाहरण के लिये हम ब्राह्मण और घरकी छिपकली का प्राचीन इतिहास कहते हैं यह परम अद्भुत सम्वाद है ॥२॥ प्राचीन कालमें इक्ष्वाकु के वंशमें हेमांग नामक एक राजा हुआ, वह बड़ा ब्राह्मणों का भक्त अनन्दिक, जितशत्रु और जितेन्द्रिय था ॥३॥ पृथ्वी में जितने वालू के कण, समुद्र में जितने जलके विन्दु हैं आकाश में

वाप्नुयात् ॥१॥ अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । विप्रस्य गृहगौधायाः संवाद परमाद्भुतम् ॥२॥ पुरा चेक्ष्वाकुवंशेऽभूद्धेमाङ्ग इति भूमिपः । ब्रह्मण्यश्च वदान्यश्च जितामित्रो जितेन्द्रियः ॥ ३ ॥ यावन्त्यो भूमिकणिका यावन्तो जलबिन्दवः । यावन्त्युडूनि गगने तावतीरदात्स गाः ॥४॥ येनेष्टं यज्ञदर्भैश्च भूमिर्बर्हिष्मती शुभा । गोभूतिलहिरण्याद्यैस्तोषिता बहवो द्विजाः ॥५॥ तेनादत्तानि दानानि न विद्यन्त इति श्रुतम् । तेनादत्तजलं चैकं सुखलभ्यधिया नृप ॥६॥ बोधितो ब्रह्मपुत्रेण वसिष्ठेन महात्मना । अमौल्य सर्वतो लभ्यं तद्दाता किं फलं लभेत् ॥ ७ ॥ दुर्बुध्या हेतुवादैश्च न

जितने तारागण हैं उतनी ही गौ उस राजाने दान कीं ॥४॥ उसने बहुत से यज्ञ किये उन यज्ञों की कुशाओं से पृथ्वी पर कुशाही कुशा दिखाई देने लगीं तथा गौ, भूमि, तिल और स्वर्ण दानसे बहुत से ब्राह्मणों को प्रसन्न किया ॥५॥ कोई ऐसा दान नहीं जो उसने नहीं किया हो, परन्तु हे राजन ! सुखकी इच्छा करने वाले उस राजा ने एक जलदान नहीं किया ॥६॥

वै० मा० २४

मा० टी० अ०

मूल्य ही मिलता है इस दान करने वाले को क्या फल मिलेगा' ऐसी अनेक बातें कहीं और ब्राह्मण को जल दान नहीं किया

मूल्य ही मिलता है इस दान करने वाले को क्या फल मिलेगा' ऐसी अनेक बातें कहीं और ब्राह्मण को जल दान नहीं किया
और कहने लगा कि अलभ्य वस्तु दान करने से पुण्य मिलता है और यही ठीक भी है ॥७॥८॥ तथा वह राजा लूले, लंगड़े,
दरिद्री और जीविकाहीन ब्राह्मणों की सेवा करता था, किन्तु वेदपाठी,तत्त्वज्ञानी और ब्रह्मवादियों की पूजा नहीं करता था ॥९॥

जलं दत्तवान्द्विजे । अलभ्यदाने पुण्यं स्यादितिवाक्ये सुयुक्ति मत् ॥८॥ स आनर्च द्विजान् व्यङ्गान्
दरिद्रान्वृत्तिकर्शितान् । नार्चयच्छ्रोत्रियान् विप्रांस्तत्त्वज्ञान् ब्रह्मवादिनः ॥९॥ प्रख्यातात् पूजयिष्यन्ति सर्वे
लोका महार्हणाः । अनाथानामविद्यानां व्यङ्गानां च द्विजन्मनाम् ॥१०॥ दरिद्राणां गतिः का वा
तस्मात्ते मे दयास्पदाः । इति दुर्धरिपात्रेषु दत्तवान् किमपि स्वयम् ॥ ११ ॥ तेन दोषेण महता
चातकत्वं त्रिजन्मसु । एकजन्मनि गृध्रत्वा श्वानभवत् सप्तजन्मसु ॥ १२ ॥ पश्चान्नृपगृहे जातो
भूपोऽयं गृहगोधिका । श्रुतकीर्त्याख्यभूपस्य मिथिलाधिपतेर्नृप ॥१३॥ गृहद्वारप्रतोल्यां च पर्वते

वह राजा कहा करता था कि विख्यात ब्राह्मणों की पूजा सेवा तो सब ही करते हैं, परन्तु अनाथ, बिना पढ़े लिखे, लूले,
लंगड़े, ब्राह्मण ॥१०॥ और दरिद्रियों की बड़ी दुर्गति है अतएव ऐसे ही लोग मेरी दया के पात्र हैं इस प्रकार वह दुर्बुद्धि
कुपात्रों को दान देता रहा ॥११॥ इस महादोष के कारण तीन जन्म तक उसे चातक की योनि मिली फिर एक जन्म गिद्ध
बना और सात जन्म तक कुत्ते की योनिमें रहा ॥१२॥ फिर हे राजन्! यह एक राजाके घर छिपकलों की योनिमें जाकर

रहा, उसका नाम श्रुतकीर्ती था और मिथिलापुरी का राजा था ॥१३॥ छिपकली घरके दरवाजे की चौखट के ऊपर कीड़ों को भक्षण करती हुई सत्तासी वर्ष तक वहीं रही ॥१४॥ एक दिन दैवयोग से मुनिवर श्रुतदेव नामक ऋषि दोपहर के समय मार्ग से थके मिथिलापति के आये ॥१५॥ ऋषि को देख राजा अत्यन्त प्रसन्न हो सहसा उठकर बड़े आदर सत्कार से

कीटकाशना । सप्ताशीतिषु वर्षेषु स्थितं तेन दुरात्मना ॥ १४ ॥ विदेहाधिपतेर्गेहे कदाचिदृषि-सत्तमः । श्रुतदेव इति ख्यातः श्रान्तो मध्याह्न आगतः ॥१५॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय जातहर्षो नराधिपः । मधुपर्कादिभिः पूज्य तस्य पादावनेजनीः ॥१६॥ आपो मूर्ध्न्यवहत् क्षिप्रं तदोत्क्षिप्तैश्च बिन्दुभिः । दैवोपदिष्टकालेन प्रोक्षिता गृहगोधिका ॥१७॥ सद्योजातस्मृतिरभूत्स्मृतकर्मातिदुःखिता । त्राहित्राहीति चुक्रोश ब्राह्मणं गृहमागतम् ॥१८॥ तिर्यग्जन्तुरवं श्रुत्वा ब्राह्मणो विस्मितोऽवदत् । कुतः क्रोशसि गोधे त्वं दशेयं केन कर्मणा ॥१९॥ त्वं देवः पुरुषः कश्चिन्नृपो वाथ द्विजोऽथवा ।

मधुपर्कादि से पूजन कर चरण धोने लगा ॥१६॥ और चरणोदक को अपने मस्तकपर छिड़का, दैवयोग से एक बूँद जल उस छपकली पर गिर पड़ा ॥१७॥ जलकी बूँद पड़ते ही उसे ज्ञान होगया और नाना योनियों में दुःखोंसे दुःखित हो ब्राह्मण देवता से हाय हाय कर कहने लगी कि हे ब्रह्मन् ! मेरी रक्षा करो २ ॥१८॥ एक छिपकलीका ऐसा शब्द सुनकर ब्राह्मणों को

देवता है कि पुरुष है या कोई राजा है अथवा ब्राह्मण, हे महाभाग ! तू कौन है, कह तो सही, मैं आज ही तेरा उद्धार

देवता है कि पुरुष है या कोई राजा है अथवा ब्राह्मण, हे महाभाग ! तू कौन है, कह तो सही, मैं आज ही तेरा उद्धार करूंगा ॥२०॥ ऋषि की ऐसी बात सुन वह राजा महामतिमान् श्रुतदेवजी से कहने लगा कि हे ब्रह्मन् ! मेरा जन्म इच्वाकुकुल में हुआ था और मैं वेद शास्त्रों का पूर्ण ज्ञाता था ॥२१॥ पृथ्वी में जितने रज के कण हैं, जितने जल के बिन्दु हैं,

कस्त्वं ब्रूहि महाभाग त्वामद्याहं समुद्धरे ॥ २० ॥ इत्युक्तः स नृपः प्राह श्रुतदेवं महामतिम् ।
अहमिक्ष्वाकुकुलजो वेदशास्त्रविशारदः ॥ २१ ॥ यावन्त्यो भूमिकणिका यावन्तस्तोयबिन्दवः ।
यावन्त्यूडूनि गगने तावतारददं स्म गाः ॥ २२ ॥ सर्वे यज्ञा मया चेष्टाः पूर्तान्याचरितानि मे ।
दानान्यपि च दत्तानि धर्माद्राज्यं स्वनुष्ठितम् ॥२३॥ तथापि दुर्गतिर्जाता मम चोर्ध्वगतिं विना ।
त्रिवारं चातकत्वं मे गृध्रत्वं चैकजन्मनि ॥ २४ ॥ सप्तजन्मसु श्वानत्वं प्राप्तं पूर्वं मयाद्विज ।
सिञ्चतानेन भूपेन त्वत्तः पादावनेजनीः ॥२५॥ बिन्दवो दूरमुत्क्षिप्तास्तैः क्षिप्तोऽहं कथचन । तेन

जितने आकाश में तारागण हैं, उतनी ही गौ मैंने दान कीं ॥२२॥ मैंने सभी यज्ञ किये, वापी कूप और तलाब बनवाये, अनेकों दान दिये और धर्मपूर्वक राज्य भी किया ॥२३॥ तो भी मेरी ऐसी दुर्गति हुई और मुझे स्वर्ग न मिला, तीन जन्म तक मुझे चातक योनि मिली और एक जन्म में गिद्ध हुआ, फिर सात जन्म तक कुत्ते की योनि पाई। अभी यह राजा आपके चरणोदक को छिड़क रहा था तब एक बूँद उछल कर मेरे ऊपर आपड़ीं उसी के पड़ने से मुझे पूर्व जन्म का स्मरण हो

आया और मेरे सब पाप दूर होगये हैं ॥२४—२६॥ हे द्विजवर! अट्ठाईस जन्म तक मुझे छिपकली की योनि भोगनी पड़ैगी, तरह तरह की दैवी सृष्टि दिखाई देती है अतः अब मैं इन जन्मों से डरता हूँ ॥२७॥ हे द्विज! मेरी यह दशा कैसे हुई है यह विस्तार से कहिये यह सुनकर द्विज ने ज्ञान चक्षुद्वारा सब वृत्तान्त जानलिया और कहने लगे ॥२८॥ हे राजन्। मैं तेरी

जन्मस्मृतिरभूत्सर्वपाप्मा हतश्च मे ॥२६॥ गोधाजन्मानि भाव्यानि ह्यष्टाविंशति मे द्विज। दृश्यन्ते दैवसृष्टानि बिभ्येऽतो जन्मभिर्भृशम् ॥ २७ ॥ न कारणं प्रपश्यामि तन्मे विस्तरतो वद। इत्युक्तः स द्विजः प्राह ज्ञात्वा विज्ञानचक्षुषा ॥२८॥ शृणु भूप प्रवक्ष्यामि तव दुर्योनिकारणम्। न जलं तु त्वया दत्तं वैशाखे माधवप्रिये ॥२६॥ तज्जलं सुलभं मत्वा ह्यमूल्यमिति निश्चितम्। नाध्वगानां द्विजातीनां धर्मकालेऽप्यजानता ॥३०॥ तथा पात्रं समुत्सृज्य ह्यपात्रे प्रतिदत्तवान्। ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥ ३१ ॥ बहुधा वर्णितस्यापि सौगन्ध्यादियुतस्य च। कण्टकान्वित-

इस बुरी योनि का कारण कहता हूँ चित्त लगाकर सुन। तूने माधव भगवान् के प्यारे वैशाख मास में जल दान नहीं किया ॥२६॥ तूने जलको सुलभ समझ कर यह निश्चय कर लिया कि यह सेंत का है, अतः मार्ग में चलने वाले और धूपसे पीड़ित ब्राह्मणों को जल दान नहीं किया ॥३०॥ साथही पात्रों को छोड़ कुपात्रों को दान दिया, जलती हुई अग्नि को छोड़ क्या

सब वृक्षों में पीपल की ही पूजा होती है, तुलसी को छोड़कर कटेरी की पूजा ...
अनाथ की आवश्यकता नहीं है, लूले लंगड़े केवल दया के पात्र हैं पूज्य नहीं ॥३४॥ तपस्वी, ज्ञान, वेदादिशास्त्रों के ज्ञाता ये विष्णु भगवान् के स्वरूप हैं अतएव वे सदा पूज्य हैं ॥३५॥ इसमें भी ज्ञानी ब्राह्मण सदैव ही विष्णु भगवान् को अत्यन्त

वृक्षस्य न कुर्वन्ति समर्चनम् ॥ ३२ ॥ विशिष्टानां पादपानामश्वत्थः सेव्यतां मतः । तुलसी तु समुत्सृज्य बृहती पूज्यते न किम् ॥ ३३ ॥ अनाथत्वं पूज्यतायां न प्रियो जगतामियात्। षड्ग्वाद्या येऽप्यनाथा हि दयापात्रं हि केवलम् ॥ ३४ ॥ तपोनिष्ठाः ज्ञाननिष्ठाः श्रुतिशास्त्रविशारदाः । विष्णुरूपाः सदा पूज्या नेतरे तु कदाचन ॥३५॥ तत्रापि ज्ञानिनोऽत्यर्थं विप्रा विष्णोः सदैव हि। ज्ञानिनामपि भूपाल विष्णुरेव सदा प्रियः ॥३६ ॥ तस्माज्ज्ञानी सदा पूज्यः पूज्यात्पूज्यतरः स्मृतः। अवज्ञा साधुवृत्तानामिहामुत्र च दुःखदा ॥ ३७ ॥ सेवा वै महतां पुंसां पुमर्थानां हि कारणम् । कोट्योऽप्यन्धजातीनां न पश्यन्ति यथायथम् ॥३८॥ एवं मन्दाशयनां तु सङ्गतिर्नार्थदा भवेत् ।

प्यारे हैं ॥३६॥ इसी कारण से ज्ञानी ही सदा पूज्य हैं, पूज्योंमें भी अधिक पूज्यतम हैं । जो साधु महात्माओं की अवज्ञा इस लोक और परलोक दोनों में दुःखदाई है ॥३७॥ महत्पुरुषों की सेवा ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का कारण है ऐसे ही करोड़ों अन्धे कर्त्तव्या कर्त्तव्य को नहीं देखते ॥३८॥ ऐसे मंद आशय के लोगों की संगति से कुछ फल नहीं मिलता है, वैसे

ही जलमय तीर्थ और मिट्टी अथवा पत्थर के बने देवताओं से भी तत्काल कुछ लाभ नहीं होता है ॥३९॥ ये तो बहुत काल में पवित्र करते हैं किन्तु साधु महात्मा दर्शन से ही पवित्र कर देते हैं, साधु सेवा से कोई भी सुशिक्षित पुरुष दुःखी नहीं होता ॥४०॥ जैसे अमृत पान करने से जन्म, मरण, वृद्धावस्था आदि दुःख नहीं देते । तूने जलदान नहीं किया, न साधुओं

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ॥ ३९ ॥ ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः । न साधुसेवनात् क्वापि सीदन्तेऽतः सुशिक्षितः ॥४०॥ जन्ममृत्युजराद्यैर्वा सुधयाप्यायिता यथा । न जलं तु त्वया दत्तं साधवो वा न सेविताः ॥४१॥ तेन ते दुर्गतिश्चेयं प्राप्ता चेक्ष्वाकुनन्दन । वैशाखे मत्कृतं पुण्यं तुभ्यं दास्यामि शान्तये ॥ ४२ ॥ भूतं भव्यं भवेद्येन कर्मजातं विजेष्यसि । इत्युक्त्वाप उदस्पृश्य ददौ पुण्यमनुत्तमम् ॥ ४३ ॥ यदा दत्तं ब्राह्मणेन स्नानं चैकदिने कृतम् । तेन ध्वस्ताखिलाधस्तु त्यक्त्वा तां गृहगोधिकाम् ॥ ४४ ॥ दिव्य विमानमारुह्य दिव्यस्रग्वस्त्रभूषणः ।

की सेवा ही की ॥४१॥ हे इक्ष्वाकु नन्दन ! इसी से तेरी यह दुर्गति हुई है, वैशाख में जो मैंने पुण्य किया है वह तेरी शान्ति के लिये तुझे दूँगा ॥४२॥ इसके प्रताप से भूत भविष्य और वर्त्तमान कर्मों के संस्कार दूर होजायंगे । ऐसा कह जल स्पर्शकर सर्वोत्तम पुण्य का फल दे दिया ॥४३॥ इस तरह जब उस ब्राह्मण ने वैशाख में एक दिनके स्नान का फल उसे दे दिया तब
पण पहिने मिथिलापुरीके महलमें सब प्राणियों के देखते देखते ॥४५॥ हाथजोड़ परिक्रमा दे नमस्कार कर आज्ञा ले स्वर्गको

पथ पहिने मिथिलापुरीके महलमें सब प्राणियों के देखते देखते ॥४५॥ हाथजोड़ परिक्रमा दे नमस्कार कर आज्ञा ले स्वर्गको चला गया। देवता लोग उसकी स्तुति करने लगे ॥४६॥ वहां दश हजार वर्षतक अनेक भोगों को भोगकर वही राजा इक्ष्वाकु के वंश में महा प्रभावशाली काकुत्स्थ नामसे पैदा हुआ ॥४७॥ और सप्त द्वीपवती पृथ्वी का पालन करता हुआ बड़ा ब्रह्मण्य,

पश्यतामेव भूतानां मैथिलस्य गृहान्तरे ॥४५॥ बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा परिक्रम्य प्रणम्य च। अनुज्ञातो ययौ राजा स्तूयमानोऽमरैर्दिवम् ॥ ४६ ॥ तत्र भुक्त्वा महाभोगान् वर्षायुतमतन्द्रितः । स एव चेक्ष्वाकुकुले काकुत्स्थोऽभून्महाप्रभुः ॥ ४७ ॥ सप्तद्वीपपतीपालो ब्रह्मण्यः साधुसंमतः। देवेन्द्रस्य सखा विष्णोरंश एव महाप्रभुः ॥४८॥ बोधितस्तु वसिष्ठेन वैशाखोक्तान्मनोरमान् । अनुष्ठायाखिलान् धर्मास्तेन ध्वस्ताखिलाशुभः ॥ ४९ ॥ दिव्यं ज्ञानं समासाद्य विष्णोः सायुज्यमाप्तवान् । वैशाखः शुभदस्तस्मात् पुम्भिः सर्वैरनुष्ठितः ॥ ५० ॥ आयुर्यशः पुष्टिदोऽयं महापापौघनाशनः ।

साधु सेवी, इन्द्रका सखा और विष्णु का अंश हुआ ॥४८॥ तब बशिष्ठजी ने वैशाख मासमें सब कर्त्तव्य धर्म सुनाये, जिनके करने से उसके सब दुःख दूर होगये ॥४९॥ और दिव्य ज्ञान को पाकर विष्णु की सायुज्य मुक्ति को प्राप्त हुआ, इस लिये यह वैशाख सम्पूर्ण शुभ फलोंका दाता है, इसमें जो मनुष्य यथोक्त धर्म करता है ॥५०॥ उसकी आयु और यश बढ़ता है, पाप दूर होजाते हैं पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति होती है, और विष्णुभगवान् प्रसन्न होते हैं ॥५१॥ अतएव ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य,

शूद्र ये चारों वर्ण ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और संन्यासी चारों आश्रम वाले मनुष्यों को वैशाख मासके बताये हुए कर्म करना चाहिये ॥५२॥ इति श्रीस्कं० वैशा० नारदां० गृहगोधिकाख्यानं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

श्रीनारदजी बोले कि—मिथिलापुरी का धर्मात्मा राजा इस अद्भुत चरित्र को देख आश्चर्य से हाथ जोड़ सुखपूर्वक बैठे

पुमर्थानां निदानं च विष्णुः प्रीणात्यनेन तु ॥ ५१ ॥ चातुर्वर्ण्यनरैः सर्वैश्चतुराश्रमवर्तिभिः । अनुष्ठेयो महाधर्मो वैशाखे माधवागमे ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्द० गृहगोधिकाख्यानंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ छ ॥

नारद उवाच ॥ राजा तदद्भुतं दृष्ट्वा मैथिलो धर्मवित्तमः । कृताञ्जलिः सुखासीनं विस्मितो वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ मैथिल उवाच ॥ दृष्टमेतन्महाश्चर्यं साधूनां चरितं तथा । येन धर्मेण मुक्तोऽभूद्राजा चेक्ष्वाकुनन्दनः ॥ २ ॥ तं धर्मं विस्तरेणैव श्रोतुं कौतूहलं हि मे । मह्यं श्रद्धावते विद्वान् कृपया विस्तराद्वद ॥ ३ ॥ इति राज्ञा सुसंपृष्टः श्रुतदेवो महामनाः । साधु साध्विति संभाष्य

हुए ब्राह्मण से कहने लगा ॥१॥ मिथिलेश बोला—हे महात्मन् ! मैंने यह बड़ी अद्भुत बात तथा महात्माओं का बड़ा आश्चर्य मय चरित्र भी देखा जिनके धर्म के प्रताप से इक्ष्वाकुवंशीय राजा की मोक्ष होगई ॥२॥ इस धर्म को विस्तार से सुनने की मुझे
प्रश्न को सुनकर महात्मा श्रुतदेव "धन्य हैं" कहकर राजा की प्रशंसा करने लगे ॥४॥ श्रुतदेव बोले कि—हे राजेन्द्र!

प्रश्न को सुनकर महात्मा श्रुतदेव "धन्य है" कहकर राजा की प्रशंसा करने लगे ॥४॥ श्रुतदेव बोले कि—हे राजोत्तम! तेरी बुद्धि बड़ी अच्छी है जिसके कारण वासुदेव भगवान के प्रिय धर्म पूछने के लिये तेरी इच्छा हुई ॥५॥ बहुत जन्म के संचित कर्मों के बिना किसी प्राणी की बुद्धि वासुदेव भगवान् की कथावार्ता में नहीं लगती है ॥६॥ युवावस्था में इतना बड़ा राज्य

व्याजहार नृपोत्तमम् ॥ ४ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ सम्यग्व्यवसिता बुद्धिस्तव राजर्षिसत्तम । वासुदेव-प्रियान् धर्माञ्छ्रोतु यस्मान्मतिस्तव ॥ ५ ॥ बहुजन्मार्जितं पुण्यं विना कस्यापि देहिनः । वासुदेव कथालापे मतिर्नैवोपजायते ॥६॥ यूने राजाधिराजाय जातेयं मतिरीदृशी । शुद्धं भागवतं मन्ये तेन त्वां साधुसत्तमम् ॥७॥ तस्मात्तुभ्यं ब्रुवे सौम्य धर्मान् भागवताञ्छुभान् । याञ्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥८॥ यथा शौचं यथा स्नानं यथा संध्या च तर्पणम् । अग्निहोत्रं यथा श्राद्धं तथा वैशाखसत्क्रिया ॥९॥ वैशाखे माधवे धर्मानकृत्वा नोर्ध्वगो भवेत् । न वैशाखसमो धर्मो धर्म-

पाकर तेरी ऐसी मति है इससे मैं तुझे साधुओं में श्रेष्ठ शुद्ध भागवत् मानता हूँ ॥७॥ अतएव हे सौम्य! शुभ भागवतधर्मों का वर्णन मैं तेरे आगे करता हूँ इनको जान लेने से प्राणी संसार के जन्मादि बन्धनों से छूट जाता है ॥८॥ जैसे शौच, स्नान, संध्या, तर्पण, अग्निहोम और श्राद्धादि कर्म हैं वैसेही वैशाख सम्बन्धी भी कर्म हैं ॥९॥ वैशाख में जो वैशाख के धर्मों को नहीं करता, वह स्वर्ग को नहीं जाता है धर्मोंमें वैशाख के धर्मोंके समान कोई धर्म नहींहै ॥१०॥ बहुत से धर्म जैसे बिना

राजा की प्रजा उपद्रवों से नष्ट होजाती हैं वैसेही नष्ट हो जाते हैं यह निश्चय है ॥११॥ वैशाख में जो धर्म बताये हैं वे सब सुलभ हैं जलका घड़ा देना, प्याऊ लगाना, मार्ग में छाया करना ॥१२॥ जूता, खड़ाऊँ, छत्री और पङ्खा दान करना, तिल और शहद मिलाकर दान करना, श्रमको दूर करने वाले गोरस का दान करना ॥१३॥ बावड़ी, कूआँ, तालाब, धर्मशाला बन-

जातेषु विद्यते ॥१०॥ सन्त्येव बहवो धर्माः प्रजाश्चराजका इव । उपद्रवैश्च लुप्यन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥११॥ सुलभाः सकला धर्माः कर्तुं वैसाखचोदिताः । उदकुंभः प्रपादान पथिच्छाया-दिनिर्मितिः ॥१२॥ उपानत्पादुकादानं छत्रव्यजनयोस्तथा । तिलयुक्तमधोर्दानं गोरसानां श्रमापहम् ॥१३॥ वापीकूपतडागादिकरणं पथिकाश्रयम् । नारिकेलेक्षुकर्पूरकस्तूरीदानमेव च ॥१४॥ गन्धानु-लेपन शय्या खट्वादानं तथैव च । तथा चूतफलं रम्यमुर्वारुकरसायनम् ॥१५॥ दानं दमनपुष्पाणां तथा सायं गुडोदकम् । चित्राण्यन्नानि पुर्णायां दध्यन्न प्रत्यहं तथा ॥१६॥ ताम्बूलस्य सदा दानं चैत्रदर्शे करीरकम् । रवौवनुदिते पूर्वं प्रातः स्नानं दिने दिने ॥ १७ ॥ मधुसूदन पूजा च कथायाः

वाना नारीयल ईख, कपूर, कस्तूरी दान करना ॥१४॥ चन्दनादि सुगंधित द्रव्य लगाना, शइया खाट देना तथा आमके फल और रसीली ककड़ी आदि दान करना ॥१५॥ दौना के फूलों का दान करना, सांयकाल के समय गुड़का शर्वत पिलाना, ... कों करोल दान करना । सूर्योदय से पहिले प्रतिदिन स्नान करना ॥१७॥ मधुसूदन भगवान् की पूजा करना, तथा सुगन्ध,

शरीर पर तैलादि मर्दन न करना, पत्ते पर भोजन करना ॥१८॥ ... मार्ग से थके हुवों को पंखे से हवा करना,

को करील दान करना। सूर्योदय से पहिले प्रतिदिन स्नान करना ॥१७॥ मधुसूदन भगवान् की पूजा करना, तथा सुनना, शरीर पर तैलादि मर्दन न करना, पत्ते पर भोजन करना ॥१८॥ बीच बीचमें मार्ग से थके हुओं को पंखे से हवा करना, भगवान् का सुगंधित कोमल पुष्पों से प्रति दिन पूजन करना ॥१९॥ प्रति दिन फल, दही, अन्न, नैवेद्य, धूप, दीप करना,

श्रवणं तथा । अभ्यङ्गवर्जनं चैव तथा वै पत्रभोजनम् ॥१८॥ मध्येमध्ये श्रमार्तानां वीजनं व्यजनेन च । सुगन्धैः कोमलैः पुष्पैः प्रत्यहं पूजनं हरेः ॥ १९ ॥ फलं दध्यन्ननैवेद्यं धूपदीपौ दिनेदिने । गोग्रासं वृषपत्नीनां द्विपैर्जौदावनेजनम् ॥२०॥ गुडनागरदानं च धात्रीपिष्टप्रदापनम् । पथिकानां प्रश्रयं च दानं तण्डुलशाकयोः । एते धर्माः प्रशस्ता हि वैशाखे माधवप्रिये ॥ २१ ॥ तथा च विष्णोः कुसुमार्पणं हरेः पूजा च कालोचितपल्लवाद्यैः । दध्यन्ननैवेद्यनिवेदनं च समस्तपापौघ-विनाशहेतु ॥२२॥ नारी पुष्पैर्माधवं नार्चयेद्या द्विजाख्यात मन्दिरे वा गृहे वा । पुत्रं सौख्यं क्वापि

भोग लगाना, गौओंको कोमल घास देना, ब्राह्मणों के चरण धोना ॥२०॥ गुड़ सोंठ और आंवलों का दान, यात्रियों की सेवा, तंदुल और शाकका दान करना, ये सब धर्म वैशाख मासमें उत्तम बताये हैं ॥२१॥ विष्णु भगवान्के निमित्त फूल अर्पण करना, समय के अनुसार पत्रादिसे पूजा करना, दही अन्न और नैवेद्य निवेदन करना, सब पापों के समूह को नाश करते हैं ॥२२॥ जो स्त्री ब्राह्मण के बताये हुए माधवभगवान् का पूजन घर या मन्दिर में फूलों से नहीं करती उसे पुत्र और सुख नहीं

मिलते और उसकी आयु तथा पति भी नष्ट होजायगा ॥२३॥ इस महीने में धर्मसेतु विष्णुभगवान् लक्ष्मी, मुनिगण और देवताओं को संग ले प्रजा की परीक्षाके लिये घर २ जातेहैं जो मूढ़ इस समय इनका पूजन पुष्पादिसे नहीं करता ॥२४॥ वह रौरव नरकमें पड़ता है फिर पांच वार राक्षस की योनि पाता है। इस महीने में भूखे प्राणियों की प्राण रक्षा के निमित्त

नाप्नोति हन्ति चायुर्भर्तुः स्वात्मनो वा महात्मन् ॥२३॥ रमासहाये माधवे मासि विष्णोः परीक्षार्थं धर्मसेतोः प्रजानाम्। गृहं याते मुनिभिर्दैवतैश्च काले पुष्पैर्नार्चयेद्यस्तु मूढ़ ॥ २४ ॥ स मूढात्मा रौरवं प्राप्य पश्चाद्यायाद्योनिं राक्षसीं पञ्चवारम्। जलं चान्नं सर्वदा देयमस्मिन् क्षुधार्तानां प्राणिनां प्राणहेतुः ॥२५॥ तिर्यग्जन्तुर्जायते वार्यदानादन्नादानाज्जायते वै पिशाचः। अन्नादाने चानुभूतां कथां ते मया वक्ष्ये चाद्भुतां भूमिपाल ॥२६॥ रेवातीरे मत्पिताभूत्पिशाचः स्वमांसाशी क्षुत्तृषाश्रान्तगात्रः छायाहीने शाल्मलीवृक्षमूले ह्यन्नाभावान्नष्टचैतन्य एषः ॥ २७ ॥ क्षुधा तृषा कर्मणा

जल और अन्न का दान अवश्य करे ॥२५॥ जल दान न करने से पशु की योनि मिलती है और अन्न का दान न करने से पिशाच बनता है, हे राजन्! अन्नदान न करने की एक अद्भुत कथा मैं तेरे सामने कहता हूँ यह मेरी अनुभव की हुई है ॥२६॥ रेवानदी के किनारे मेरे पिता पिशाच होगये थे वह अपना मांस खाते थे, उनका शरीर भूख और प्यास के मारे शिथिल होगया उनको क्षुधा और तृषा बढ़गई तथा ... ... बीचमें मासें खड़ा होगया थाँ।

उनकी क्षुधा और तृषा बढ़गई तथा कंठनाली का छिद्र बहुत ही सूक्ष्म होगया क्योंकि कंठके बीचमें मांस खड़ा होगया था। जिससे ऐसी पीड़ा होती थी, जिससे प्राण जानेका भय था ॥२८॥ कुआँ बावड़ी और तालाबके शीतल जलको देख वह उसे विष समझता था, मैं गङ्गायात्रा के निमित्त जारहा था, मैं तब दैवयोग से रेवानदी के किनारे पर पहुँचा वहां यह अद्भुत दृश्य

यस्य बह्वी सूक्ष्म छिद्रं कण्ठनालस्य चासीत्। मांसं चान्तः कण्ठमध्ये निषण्णं कुर्यात्पीडां प्राण-पर्यन्तमेव ॥२८॥ चलं दृष्ट्वा कालकूटप्रकल्पं कूपं शत वापिकासारसंस्थम्। तस्यास्तीरे चागतं दैवयोगाद्गङ्गायात्राकारणान्मार्गमध्ये ॥ २९ ॥ दृष्टद्भुतं शाल्मलीवृक्षमूले तृष्णा तृष्णा भक्षयन्तं स्वमांसम्। क्रोशन्तं च बहुधा शोच्यमानं क्षुधा तृषा व्यथितं कर्मभिः स्वैः॥ ३० ॥ स मां हन्तुं प्राद्रवत्पापकर्मा मत्तेजसा निहतो दुद्रुवे च। तं चाब्रुवं कृपया क्लिन्नचित्तोमाभैष्ट त्वं ह्यभयं मे हि दत्तम् ॥३१॥ कस्त्वं तात ब्रूहि सद्योऽत्र हेतुं कृच्छ्रादस्मान्मोचये मां विषीद। इत्युक्तो मां

देखा ॥२९॥ कि शाल्मली के वृक्षकी जड़ में एक पिशाच बैठा हुआ अपना मांस खारहा है वह बुरी तरह से प्यासा २ चिल्लाता था, अपने कर्मों के कारण भूखा प्यासा शोच में पड़ा हुआ था ॥३०॥ वह पापी मुझे मारने दौड़ा परन्तु मेरे तेजके मारे निहत होगया, मेरे हृदय में दया उत्पन्न हुई तब मैंने उससे कहा डर मत ॥३१॥ तू कौन है, जल्दी कह, मैं तुझे इस कष्ट से अभी छुड़ा दूंगा दुखी मत हो, मैंने जब ऐसे कहा तब वह मुझे अपना पुत्र न जानकर कहने लगा कि पहले आनत

देश में भूवराव्य एक नगर था ।।३२।। मेरा नाम मैत्र था और संकृति गोत्र में उत्पन्न हुआ था, तप, विद्या, दान और यज्ञादि में मेरी बड़ी निष्ठा थी, मैंने सम्पूर्ण विद्या पढ़ी और पढ़ाई मैंने सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान किया ।।३३।। हे अङ्ग ! मैंने भिक्षा के लोभके कारण वैशाख में अन्न दान नहीं किया, इससे मेरे विचार में यही आता है कि इसी हेतु मुझे पिशाच की

प्राह पुत्रं त्वजानन् पुरानर्ते भूखराख्ये पुरे च ।। ३२ ।। नाम्ना मैत्रः संस्कृतेर्गोत्रजोऽहं तपोविद्यादानयज्ञादिनिष्ठः । मयाधीताध्यापिताः सर्वविद्याः कृतो मय सर्वतीर्थावगाहः ।। ३३ ।। दत्तं नान्नं मासि वैशाखसंज्ञे लोभाद्भिक्षामात्रमप्यङ्ग काले । शोचे चाहं प्राप्य पिशाचयोनिं नान्यो हेतुः सत्यमेवोक्तमङ्ग ।। ३४ ।। पुत्रोऽधुना वर्तते मन्दगृहे च भूरिख्यातिः श्रुतदेवाभिधानः । वाच्या तस्मै मद्दशा चात्मजाय वैशाखान्नादानतोऽभूत्पिशाचः ।।३५।। दृष्टस्तीरेते पिता नर्मदाया नोर्ध्वं गतो वर्तते वृक्षमूले । खादन्मांसं स्वीयमेवानुखिद्यत्पितुमुक्त्यै मासि वैशाखमङ्गे ।।३६।। प्रातः स्नात्वा

योनि मिली है और कोई कारण नहीं ।।३४।। अब मेरे घर पर श्रुतदेवनाम का मेरा पुत्र है जो बड़ा ख्यातिवान् है, उससे मेरी दशा कह देना कि तेरा पिता अन्नदान न करने से पिशाच होगया है ।।३५।। नर्मदा नदी के तीरपर वृक्षकी जड़में बैठा है स्वर्ग नहीं गया है, बड़ा दुःखी हैं और अपना मांस भक्षण करता है अतः पिता की पिशाचयोनि छुड़ाने के लिये वैशाख में

जिससे मैं विष्णुपदको प्राप्त होजाऊं ॥३७॥ यह सब कथा मैंने तुम्हारे सामने कही है जो तुम मुझपर दया करोगे तो तुम्हारा
कल्याण होगा, अपने पिताकी ऐसी बात सुनकर ॥३८॥ मैं दुःख के मारे उनके पांवों पर बहुत देर तक लकड़ी की भांति पड़ा
रहा और बराबर अपनी निंदाकर नेत्रोंमें आंसू भर कहने लगा हे पिता! तुम्हारा पुत्र मैं ही हूं दैवयोग से यहां आगया

पूजयित्वा च विष्णुं निर्व्याजान्मां तर्पयित्वा जलैश्च । देयं चान्नं द्विजवर्ये गुणाढ्यं मुक्तोयो वै
याति विष्णोः पदं च ॥३७॥ इत्थं चोक्तं त्वत्पुरस्ताद्वदेति दया चैषा मत्कृते नात्र शंका । भद्रं
भूयात्सर्वतो मङ्गलं ते श्रुत्वा चाहं भाषितं मे पितुश्च ॥ ३८ ॥ दुःखात्कायं दण्डवत्पातयित्वा
भूशार्तोऽह पादयोर्भूरिकालम् । निन्दन्निन्दन् भूयहं वाष्पनेत्रः पुत्रोऽहं ते तात दैवागतोऽहम् ॥३९॥
कर्मभ्रष्टो भूसुराणां विनिन्द्यो नाभूद्यस्मात्क्लेशमोक्षः पितॄणाम् । आख्याहि त्वं कर्मणा केन मुक्तो
भविता वै तत् करोमि द्विजेन्मु ॥ ४० ॥ ततः प्राह प्रीतसर्वान्तरात्मा यात्रां कृत्वा शीघ्रमागत्य
गेहम् । प्राप्ते मासे मेषसंस्थे च भानौ निवेद्यान्नं विष्णवे त्वं गुणाढ्यम् ॥४१॥ दानं देहि द्विजवर्गे

हूँ ॥३९॥ ब्राह्मणों में कर्मसे श्रेष्ठ कोई नहीं हुआ जिससे पित्रीश्वरोंकी मोक्ष न हुई हो तुम अब यह बताओ कि किस कर्मसे
तुम्हारी मुक्ति होगी मैं वही करूंगा ॥४०॥ तब प्रसन्न हो वह कहने लगे कि यात्रा करके शीघ्र घर जा मेषकी संक्रांति में
विष्णुभगवान के निमित्त अन्न अर्पण करके ॥४१॥ किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को अन्नदान देना। जिससे सकुटुम्ब मेरी मुक्ति हो

जायेगी । पिताकी आज्ञाके अनुसार मैंने तीर्थयात्रा करके घर आ वैशाख के महीने में अन्नदान किया ॥४२॥ तब मेरे पिता मुक्त हो विमान पर चढ़ मुझे आशीर्वाद देकर विष्णुलोक को गये जहाँसे फिर कर नहीं आते हैं ॥४३॥ इसलिये अन्नदान सब शास्त्रोंमें बड़ा धर्म कहा है । हे राजन् ! यह सब धर्मोंका सारभूत है जो मैंने कहदिया तेरी इच्छा अब और किस बातको

महात्मंस्तस्मान्मोक्षो भविता सान्वयस्य । पित्रादिष्टः कृतयात्रः स्वगेहं प्राप्याकरं माधवे चान्नदानम् । ॥४२॥ तस्मान्मुक्तो मत्पिता मां समेत्य यानारूढो ह्यभिनन्द्याशिषा च । गतो लोकं श्रीपते-र्दुर्विभाव्यं यस्मिन् गता न निवर्तन्ति भूयः ॥४३॥ तस्माद्दानं सर्वशास्त्रेषु चोक्तं तुभ्यं प्रोक्तं धर्म-सारं सधर्म्यम् । किमन्यत्ते श्रोतुमिच्छा वदस्व श्रुत्वा सर्वं ते वदामीति सत्यम् ॥४४॥ इतिश्री-स्कन्दपुराणे वैशा० नारदाम्बरीषसंवादे पिशाचमोक्षप्राप्तिर्नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

मैथिल उवाच ॥ ब्रह्मन्निक्ष्वाकुतनयो जलादानाच्च चातकः । त्रिवारमभवत्पश्चान्मद्गृहे

सुननेकी है वह पूछ, मैं तुझसे सत्य कहूँगा ॥४४॥ इति श्रीस्कन्द पुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे पिशाचमोक्षप्राप्तिर्नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

तदनन्तर मैथिलने कहा—हे ब्रह्मन् ! जलदान न करने से इक्ष्वाकु वंशी राजाका तीन जन्मतक चातक होना और फिर मेरे

यह बात मुझे बहुत अनुचित प्रतीत होती है, उसने सन्तमहात्मों को कष्ट नहीं दिया तथा कृपण भी नहीं था ॥३॥ परन्तु उसने सेवा नहीं की इसीसे निश्चय यह है कि उसे फल न मिलना चाहिये । अनेक अर्थ करना औरोंको कष्ट देना है ॥४॥

गोधिका तथा ॥१॥ कर्मानुगुणमेतद्धि युक्तं तस्याकृतात्मनः । संतामसेवनात्तस्य गृध्रत्वं सारमेयता ॥२॥ सप्तवारमिति प्रोक्तं यन्मे भाति च नोचितम् । सन्तो न दूषितास्तेन न तथा कृपणो अपि ॥३॥ तस्मादसेविनस्तस्य फलाभावो भवेद्ध्रुवम् । नानार्थकरणाभावादिदं हि परपीडनम् ॥ ४ ॥ अनिमित्तमिदं कस्मात्कुयोनित्वमवाप्तवान् । तदेनं संशयं छिन्धि शिष्यस्यात्मप्रियस्य च ॥ ५ ॥ इति राज्ञा सुसंपृष्टः श्रुतदेवो महायशाः । साधुसाध्विति संभाष्य वचो व्याहर्तुमादधे ॥ ६ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यत्पृष्टं तु त्वयाऽनघ । शिवायै च शिवेनोक्तं कैलास-शिखरेऽमले ॥ ७ ॥ सृष्ट्वेमान् सकलाँल्लोकान् पश्चात्तेषामवस्थितिम् । आमुष्मिकीमैहिकीं च

उसे बिना कारण ही कुयोनि क्यों मिलती ? हे विप्रवर ! मैं आपका प्यारा शिष्य हूँ आप मेरे इस संशय को दूर कीजिये ॥५॥ राजाके प्रश्नको सुन महायशस्वी श्रुतदेव "धन्य धन्य" कहकर कहने लगे ॥६॥ हे राजन् ! हे पाप रहित ! जो तुमने पूछा है मैं उसका समाधान कहता हूं यही कैलास के शिखर पर शिवजीने पार्वती से कही थी ॥७॥ सब लोकोंकी रचनाकर

वै० मा० ५१ मा० टी० अ० ८

उनकी आमुष्मिक और ऐहिक दो प्रकार की स्थिति बनाई ॥८॥ हेतुकी स्थिति के निमित्त प्रत्येकके तीन तीन भेद मानेहैं, यथा जल सेवा, अन्न सेवा और औषधि सेवा ॥९॥ हे महाभाग ! ये तीनों ऐहिक (इस लोककी) स्थितिके हेतुहैं ऐसे ही श्रुतियों में पारलौकिक स्थिति के भी तीन हेतुहैं ॥१०॥ साधुसेवा, विष्णुसेवा और धर्मसेवा ये तीनों परलोक की स्थित के

द्विविधां पर्यकल्पयत् ॥ ८ ॥ हेतुत्रयं च प्रत्येकं हेतुस्थित्यै महाप्रभुः । जलसेवा चान्नसेवा सेवा चैवौषधस्य च ॥ ९ ॥ यत्र एते महाभाग ह्यैहिकस्थितिहेतवः । एवमामुष्मिके राजंस्त्रय एवेरिताः श्रुतौ ॥ १० ॥ साधुसेवा विष्णुसेवा सेवा धर्मपथस्य च । पुरा संपादिताह्येते परलोकस्य हेतवः ॥११॥ गृहसंपादितं यद्वत् पाथेयं पद्धतौ यथा । ऐहिका हेतवो राजन् सद्यः सम्पादिताथदाः॥१२॥ किञ्च चेष्टमपि साधूनां मनसो यदि दुःसहम् । कुतश्चित्कारणाद्राजन् तच्चानर्थाय कल्पते ॥१३॥ अप्रियं किञ्च वक्तव्यं दुःखहेतुरिति स्फुटम् । अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥१४॥ पापघ्नं

हेतुहैं ॥११॥ जैसे घरमें इकट्ठा हुआ मार्गका व्यय मार्गमें काम देताहै वैसे ही ऐहिक हेतुओंका करना तत्काल धन संपति देताहै ॥१२॥ किंतु साधु महात्माओं के दुःसह मनोरथ भी सिद्ध हो जातेहैं परन्तु वेही कभी २ अनर्थका कारण होजाते हैं ॥१३॥ अप्रिय बातें कहना भी दुःखका हेतु होजाता हैं यहां एक पुराना इतिहास वर्णन करतेहैं ॥१४॥ यह पाप नाशक

वै० मा० ५२ भा० टी० अ० ८

कैलाश पर गये उन्हें देखकर उन्हींकी भलाई सोच महादेवजीने उठकर आदर नहीं किया ।१५-१६। शिवजीने सोचा मैं सम्पूर्ण देवताओं का गुरु, वेद द्वारा जानने योग्य सनातन हूं ये चन्द्रमा और इन्द्रादि सब देवता यज्ञ भाग लेने वाले सेवक हैं।१७। स्वामी सेवकके आनेपर नहीं उठता ऐसे पति स्त्रीके लिये गुरु शिष्यके लिये नहीं उठता है यही शास्त्र वेत्ताओंका मत है ।१८। गुरुत्व में

महदाश्चर्यं शृण्वतां रोमहर्षणम् । यज्ञदीक्षामुपगतः पुरा दक्षः प्रजापतिः ॥१५॥ आह्वानार्थं भूतपतेरगमद्रजताचलम् । तं दृष्ट्वा नोत्थितः शंभुस्तथैव हितकाम्यया ॥१६॥ सर्वामरगुरुश्चाहं छन्दोगम्यः सनातनः भृत्या ह्येते बलिहराश्चन्द्रेन्द्राद्याः सुरेश्वराः ॥ १७ ॥ स्वामी भृत्याय नोत्तिष्ठेत्स्वभार्यां पतिस्तथा । गुरुः शिष्याय नोत्तिष्ठेदिति शास्त्रविदां मतम् ॥१८॥ न संबन्धो गुरुत्वे च कारणं त्विति वै श्रुतिः । बलं ज्ञानं तपः शान्तिर्यत्र चैवाधिकं भवेत् ॥१९॥ स गुरुश्चेतरेषां च न नीना ईयुश्च प्रेष्यताम् । उत्तिष्ठन्ति च स्वाम्याद्या भृत्यादीन्यदि चाग्रहात् ॥२०॥ आयुर्वित्तं यशस्तेषां सद्यो नश्यति सन्ततिः । तस्मादहं तु नोत्तिष्ठे प्रियोऽयंश्वशुरो मम ॥२१॥

सम्बन्ध कारण नहीं होता यही श्रुतिका वाक्य है, जिसमें बल, दान, तप और शान्ति अधिक होती है वह औरों का गुरु है और नीच ही भृत्य (सेवक) होते हैं जो स्वामी स्वयं भृत्यादि के लिये उठते हैं ॥१९-२०॥ उनका आयु, धन और यश तत्काल नष्ट हो जाते हैं, इसलिये मुझे उठना उचित नहीं है यह मेरा प्यारा श्वसुर है ॥२१॥ ऐसा विचार कर दक्ष प्रजापति की

भलाई सोच महादेवजी आसन से उठे। जब प्रजापति ने देखा कि महादेव ने उठकर मेरा आदर नहीं किया तो उसे बड़ा क्रोध आया ॥२२॥ और अनेक प्रकार से महादेवजी के आगे ही निन्दा करने लगा कि आश्चर्य २ इस अकृतात्मा दरिद्री को बड़ा अहंकार है॥२३॥ इसका धन केवल एक बूढ़ा बैल, जिस पर केवल चर्म ही शेष रह गया है कपालकी हड्डी

इति तस्य हितान्वेषी नोच्चचालासनाद्विभुः। नोत्थितं तु मृडं दृष्ट्वा कुपितोऽभूत्प्रजापतिः ॥२२॥ अनिन्दद्बहुधा तस्मै पुरतो गिरिजापतेः। अहो दर्पमहो दर्पं दरिद्रस्याकृतात्मनः ॥२३॥ यस्य वित्तं बहुवयो वृषश्चर्मावशोषितः। अतः एव कपालास्थिधरः पाखण्डगोचरः ॥२४॥ वृथाहंकारिणो देवः कुतो दास्यति मङ्गलम्। लोके कृत्ये न कर्माणि शुचीनीति विदो विदुः ॥२५॥ धत्ते दरिद्रः शीतार्तः पवित्रं च गजाजिनम्। वेश्म श्मशानं यस्य स्याद्भुजङ्गः किल भूषणम् ॥२६॥ न धीरतापि च ज्ञानं वृकात् तस्मात्पलायितः। भूतप्रेतपिशाचादिदुर्जनैः संगतोऽनिशम् ॥२७॥ न कुलं श्रूयते

धारण करते हैं और अत्यन्त पाखण्डी है ॥२४॥ ऐसे वृथा अहंकारी का भगवान कैसे कल्याण करेंगे। यह कोई शुभ कर्म नहीं करता और महा अपवित्र है इसे भी विद्वान् मनुष्य अच्छी तरह जानते हैं ॥२५॥ दरिद्र के मारे शीत से व्याकुल पवित्र हाथी के चर्म को ओढ़ते हैं श्मशान में घर है और सर्पों के आभूषण धारण कर रक्खे हैं ॥२६॥ न इसके धीरज है कुछ पता नहीं और न साधु महात्मा इसकी प्रसंसा करते हैं दुरात्मा नारद ने पहिले व्यर्थ बड़ाई की ॥२८॥ उसी के बताने

कुछ पता नहीं और न साधु महात्मा इसकी प्रसंसा करते हैं दुरात्मा नारद ने पहिले व्यर्थ बड़ाई की ॥२८॥ उसी के बताने से मैंने अपनी कन्या सती का विवाह इसके संग कर दिया, यह भी अलग धर्म वाली हो गई इसी को अपने घर में सुख पूर्वक वास करावें ऐसा भी नहीं ॥२९॥ मैं इसे कभी नहीं सह सकता, मेरी पुत्री से भी मुझे कुछ प्रयोजन नहीं, जैसे कुम्हार

क्वापि नाशौ वै साधुसंमतः । वृथा विश्रम्भितः पूर्वं नारदेन दुरात्मना ॥२८॥ येनाहं बोधितः प्रादां कन्यां चैतां सतीं मम । पृथग्धर्मगता चैषा सुखं वसतु मद्गृहे ॥२९॥ नास्माभिः श्लाघनीयोऽसौ मत्सुतापि कथंचन । यथा कुलालकलशश्चाण्डालस्य वशंगतः ॥३०॥ इति दक्षो विमूढात्मा ह्युमां नाहूय तं मृडम् । बहुधा तं विनिर्भर्त्स्य तूष्णीमेव गृहं ययौ ॥३१॥ यज्ञवाटं ततो गत्वा ऋत्विग्भिर्मुनिभिः सह । ईजे यज्ञविधानेन निन्दन्नेव महाप्रभुम् ॥३२॥ ब्रह्मविष्णू विहायैव सर्वे देवाः समागताः । सिद्धचारणगन्धर्वा यक्षराक्षसकिंनराः ॥ ३३ ॥ तदा देवी सती पुण्या

का घड़ा चण्डाल के हाथ में पहुँच जाने से किसी काम का नहीं रहता है ॥३०॥ ऐसे विमूढ़ात्मा दक्ष ने सती और शङ्कर को निमन्त्रण नहीं दिया और अनेक प्रकार के कुवाक्य कहकर चला गया ॥३१॥ तदनन्तर यज्ञस्थान में जा ऋत्विक् और मुनियों को संग ले विधि पूर्वक यज्ञ करने लगा और श्रीशङ्करजी की निन्दा करता रहा ॥३२॥ ब्रह्मा और विष्णु को छोड़ सिद्ध, चारण, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर आदि सब देवता यज्ञ में आये ॥३३॥ तब सती को बड़ी इच्छा हुई कि,

किसी प्रकार से यज्ञ का उत्सव देखूं और अपने कुटुंबियों से मिलूँ ॥३४॥ स्त्रियां स्वभाव से चंचल होती हैं। महादेवजी ने कहा कि, तुम मत जाओ परन्तु उसने एक भी न मानी और जाने की मन में ठान ली ॥ ३५ ॥ महादेजी बोले—हे वरवर्णिनि! सभा में बैठ कर मेरी सदा निन्दा करते हैं जो तुम से न सही जायगी तुम निश्चय शरीर त्याग दोगी ॥३६॥

स्त्रीचाञ्चल्यात्प्रलोभिता। उत्सुका चोत्सवं द्रष्टुं बन्धूंस्तत्र समागतान् ॥३४॥ निवार्यमाणा रुद्रेण तरला स्त्री स्वभावतः। प्रत्युक्तापि पुनश्चैव गन्तव्यमिति निश्चिता ॥३५॥ स निन्दति सभामध्ये सदा मां वरवर्णिनि। तच्चासह्यं च त्वं श्रुत्वा कायं सत्यं त्यजिष्यसि ॥३६॥ असह्यमपि सोढव्यं मयापि गृहमिच्छता। मया यथा कृतं देवि तथा त्वं नैव वर्तसे ॥३७॥ तस्मान्मा गच्छ शालां वै न शुभं तु भवेद् ध्रुवम्। इत्येवं बोधिता देवी चापल्यं पुनरागतमत् ॥३८॥ निश्चक्राम सती गेहादेकैव पदचारिणी। तां दृष्ट्वा वृषभस्तूष्णीं पृष्ठे देवीमुवाह सः ॥३९॥ कोटिशो भूतसङ्घाश्च

मैंने भी घरकी इच्छा से असह्य सहन किया है ऐसा तुमसे न हो सकेगा ॥३७॥ अतएव तुम अपने पिताके घर मत जाओ। मुझे ज्ञात होता है कि, वहां जाने से असका कल्याण नहीं इस प्रकार समझाने पर भी सती न रुकीं ॥३८॥ और अकेली घरसे निकल कर पैदल चलदी, तव नन्दीने चुपचाप सतीको अपनी पीठपर बैठा लिया ॥३९॥ और करोड़ों भूतादि महादेवजी के

चुपचाप रहे कुछ न बोले, किसी ने कुछभी न कहा तो वहां खड़ी रही और रुद्रकी आहुति तक पिताकी चेष्टा देखती रही ॥४२॥ जब दक्षने रुद्रको छोड़कर आहुति दी तो सती को आंखों में आंसू भर आये और अकुलाकर बोली जो मनुष्य बड़ों

ह्यनुजग्मुः सतीं तदा । यज्ञवाटं तु सा गत्वा पत्नीशालां ययौ पुरा ॥४०॥ तूष्णीमासन् सतीं दृष्ट्वा खेदात्तस्माद्विनिर्गता । पतिवाक्यं तु संस्मृत्य जगामोत्तरवेदिकाम् ॥४१॥ पिता सभ्याश्च तां दृष्ट्वा स्थितास्तूष्णीं हताशिषः । सा रुद्राहुतिपर्यन्तं पश्यन्ती पितृचेष्टितम् ॥४२॥ त्यक्त्वा रुद्रं च जुह्वन्तमुवाचाश्रुकुलेक्षणा । देव्युवाच ॥ महदुल्लङ्घनं पुंसां न प्रायः श्रेयसे भवेत् ॥ ४३ ॥ लोककर्ता लोकभर्ता सर्वेषां प्रभुरव्ययः । एवंभूतस्य रुद्रस्य कथं नो दीयते हविः ॥४४॥ जातां न किं ते दुर्बुद्धिं हरन्त्यन्ये समागताः । न चेदृशा महात्मानः किमेषां विमुखो विधिः ॥४५॥ इत्येवं भाषमाणां तां पूषा देवो जहास ह । श्मश्रूणां चालनं चक्रे भृगुर्हतशुभस्तथा ॥४६॥ भुजपादो-

का अपमान करतेहैं उनका कल्याण नहीं होता ॥४३॥ तुमने सब सन्सार के रचने वाले सबके प्रभु और अविनाशी रुद्र की आहुति नहीं दी ॥४४॥ ये जितने बड़े २ ऋषि मुनि और माहात्मा इकट्ठे हुएहैं इन्होंने भी तुम्हारी दुष्ट बुद्धि दूर नहीं की विधाता इनके भी विमुख ज्ञात होता है ॥४५॥ जब सती ऐसे कह रही थी तब पूषादेवा मुख फाड़ हँसने लगा और शुभ

कर्मों से हीन शुक्राचार्य डाढी और मूछों को फड़काने लगे ॥४६॥ बहुत से भुजा, पांव ऊरु और कक्षाओं को फड़काने लगे और दक्ष अभाग्य से निन्दा करने लगा ॥४७॥ उनकी बातों को सुनकर सती क्रोध से लाल होगयी, और पति निन्दा सुनने का प्रायश्चित करने के लिये उसने अपनी देहको त्याग करना चाहा ॥४८॥ सबके देखते २ सती होमकी अग्नि में गिर

रुकक्षाणां स्फालनं चक्रिरे परे। बहुधा निन्दनं चक्रे तत्पिता हतभाग्यतः ॥४७॥ तच्छ्रुत्वा रुद्रभार्या सा कोपाकुलितमानसा। प्रायश्चित्त श्रुते कर्तुं देहं तत्याज सा सती ॥४८॥ होमाग्नौ वेदिकामध्ये सर्वेषामेव पश्यताम्। हाहाकारो महानासीद्द्रुवुः प्रथमा द्रुतम् ॥ ४६ ॥ आचख्युर्देवदेवाय वृत्तान्तमखिलं तदा। तच्छ्रुत्वा सहसोत्थाय रुद्रः कालान्तकोपमः॥५०॥ जटामुत्पाट्य हस्तेन भूतले तामताडयत्। ततोऽभवन्महाकायो वीरभद्रो महाबलः ॥५१॥ सहस्रबाहुरभवत्कालान्तकसमप्रभः। बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा व्याजहार हरं तदा ॥५२॥ मत्सृष्टिस्तु यदर्थं ते तदर्थं मां नियोजय।

पड़ी। सती के गिरते ही, बड़ा हाहाकार मचगया। महादेवजी के गण ॥४६॥ भागकर शिवजी के पास पहुंचे और सब कथा सुनायी। सुनते ही शिवजी ने सहसा उठकर कालांतक के समान क्रोध से ॥५०॥ एक जटा उखाड कर पृथ्वी पर दे मारी

बताइये, यह सुन रुद्र भगवान् क्रोध करके सन्मुख खडे हुए वीरभद्र से बोले ॥५३॥ तू अभी जाकर मेरे निंदक दक्षका नाश

बताइये, यह सुन रुद्र भगवान् क्रोध करके सन्मुख खड़े हुए वीरभद्र से बोले ॥५३॥ तू अभी जाकर मेरे निंदक दक्षका नाश करदे, जिसके कारण प्रिया सतीको त्यागना पड़ा और बड़े २ बलवान् भूतगणों को आज्ञा दी कि तुम भी इसके सङ्ग जाओ ॥५४॥ महादेवजी की आज्ञा पाकर सबके सब यज्ञशाला में पहुंचे और देवता, असुर, मनुष्य आदि सब सुभटों को मार

इत्युक्तः प्राह तं क्रुद्धो धूर्जटिस्तं पुरः स्थितम् ॥५३॥ हनत्वं निन्दकं दक्षं यदर्थे मत्प्रिया हता। भूतसंघास्तु गच्छन्तु सहैतेन महाबलाः ॥ ५४ ॥ इत्यादिष्टा भगवता ययुर्यज्ञसभां तदा। जघ्नुः सर्वान् महावीरान् देवासुरनरादिकान् ॥५५॥ पूषणश्च हसतो दन्ताञ्जटाभृश्च बभञ्ज ह। श्मश्रूण्युत्पाटयांचक्रे भृगोस्तस्य दुरात्मनः ॥५६॥ यद्यदास्फालितं पूर्वं तत्तच्चिच्छेद वीर्यवान्। ततो दक्षशिरो हर्तुं बहूद्योगं चकार ह ॥५७॥ मुनिमन्त्रगुप्तं तु नैव कृन्तति तद्बलात्। हरो ज्ञात्वा तु चिच्छेद स्वयमेत्य दुरात्मनः ॥५८॥ एवं मखगतान् हत्वा सानुगः स्वालयं ययौ। हता-

गिराया ॥५५॥ पूषा दांत निकाल कर हँसा था, वीरभद्र ने उसके दांत उखाड़ डाले तथा दुरात्मा भृगुकी डाढ़ी मूंछ उखाड़ डालीं ॥५६॥ जिस जिसने जो जो अङ्ग फड़काया था उसका वही अङ्ग वीरभद्र ने उखाड़कर फेंक दिया तब दक्षका शिर काटने के लिये बड़ा उद्योग किया ॥५७॥ क्योंकि उसके शिरकी रक्षा भृगु अपने मन्त्र बलसे कर रहा था इससे शिर नहीं कटता था। तब रुद्र ने स्वयं आकर उस दुरात्मा का शिर काट अलग कर दिया ॥५८॥ इस प्रकार यज्ञ में जो आये थे सबका

वै० मा० ५६

संहार कर गणों सहित कैलाश को गये । जो मरने से बचे वे ब्रह्माजी की शरण में गये ॥५६॥ उनको सङ्ग ले ब्रह्माजी कैलाश पर पहुँचे और वहां जाकर अनेक प्रकार समझा बुझा कर क्रोध को शांत किया ॥६०॥ और महादेवजी को सङ्ग ले यज्ञशाला में पहुंचे । यज्ञ में जो मारे गये थे उन सबको फिर जीवनदान दिया ॥६१॥ सदाशिव ने दक्षके धड़पर बकरे का शिर रखदिया,

वशिष्टाः केचित्तु ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥५६॥ तैरन्वितो ययौ ब्रह्मा कैलासं तु शिवालयम् । ततो रुद्रं सान्त्वयित्वा वचोभिर्विविधैरपि ॥६०॥ तेनैव सहितः प्रागाद्यज्ञवाटं महाप्रभुः तेनैवोज्जीवयामास सर्वान् यज्ञसमागतान् ॥६१॥ ख्यात्यै प्रादादजमुखं दक्षस्य तु तदा शिवः । अजश्मश्रूण्यदाच्छ्र-श्मश्रु भृगवे तु महात्मने ॥६२॥ पूष्णश्च दन्तान्न प्रादात्पिष्टादं च चकार ह । तदङ्गानां व्यतिकरं केषांचिदपि वै शिवैः ॥६३॥ शिवमापुश्च ते सर्वे ब्रह्मणा च शिवेन च । पुनः प्रवर्तितो यज्ञो यथापूर्वं महात्मनः ॥६४॥ यज्ञान्ते सर्वदेवाश्च जग्मुस्ते स्वं स्वमालयम् । नैष्ठिकं ब्रह्मचर्यं तु कृत्वा

जिससे आज तक शिवोपासक उनको प्रसन्नताके लिये बंबं करते हैं, ऐसे ही भृगुजी के मुखपर बकरे की डाढ़ी लगादी ॥६२॥ पूषा को दांत नहीं दिये कहदिया कि यह अन्नको पीसकर खालिया करेगा ऐसेही अङ्ग लगाकर सबके शरीर जोड़ दिये ॥६३॥ ब्रह्माजी तथा शिवजी ने सबका कल्याण किया दक्ष फिर पूर्ववत् यज्ञ करने लगे ॥६४॥ यज्ञ पूरा करवा कर सब देवता अपने

नीचे तप करने लगे । दक्ष पुत्री पतिव्रता सतीने ॥६६॥ हिमाचल के घर उसकी स्त्री मेनका के गर्भ में जन्म लिया

नीचे तप करने लगे। दक्ष पुत्री पतिव्रता सती ॥६६॥ हिमाचल के घर उसकी स्त्री मेनका के गर्भ से जन्म लेकर उसी के घर उसका पालन पोषण होने लगा। इतने ही में तारकासुर नामक एक महा राक्षस उत्पन्न हुआ ॥६७॥ उसने घोर तप कर परमेष्ठी ब्रह्माको प्रसन्न कर लिया, तो ब्रह्माजी ने उसे वर दिया कि तू देवत, राक्षस, मनुष्य वा नाग किसी से न मरेगा

वै० रुद्रो महत्तपाः ॥६५॥ तेपे गङ्गातटे रुद्रः पुन्नागतरुमूलगः। दक्षात्मजा सती देवी त्यक्तदेहा पतिव्रता ॥६६॥ यज्ञे हिमाद्रेर्मेनकयां ववृधे तस्य वेशमनि। एतस्मिन्नेव काले तु तारकाख्यो महासुरः ॥६७॥ सुतीव्रतपसाराध्य ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्। अवध्यप्वं वरं वव्रे देवासुरनरोरगैः ॥ ६८ ॥ आयुधैरस्त्रसंघैश्च सर्वैं रेव महाबलैः। रुद्रपुत्रं विना दैत्यो ह्यवध्यः सकलैरपि ॥६९॥ इति तस्मै वर प्रादाद्ब्रह्मा लोकपितामहः। अस्त्रीकत्वादपत्यत्वाद्रुद्रस्येति तथास्त्विति ॥७०॥ वरं गृहीत्वा स्वगृहं प्राप्य लोकान् बबाध ह। दासा देवा मार्जनादौ दास्यो देव्यश्च तद्गृहे ॥७१॥ ततस्तत्पी-

॥६८॥ किसी प्रकार के आयुध, हथियार से न मरेगा किंतु जब रुद्र भगवान का महाबली पुत्र तुझे मारेगा ॥६९॥ लोक पितामह ब्रह्मा ने उसे ऐसा वर दिया तो उसने सोचा कि महादेवजी के स्त्री ही नहीं है, उनका पुत्र मुझे कैसे मारेगा। ऐसा सोच राक्षस बोला "तथास्तु" ॥७०॥ वर पाकर तारक अपने घर जा सबको सताने लगा। उसने सब देवताओं को दास कर लिया और उनकी स्त्री उनके घरमें दासी बनकर बुहारी देने लगीं ॥७१॥ जब उसने देवताओं को बहुत सताया तो वे ब्रह्माजी

की शरण में गये उनके दुखको सुन कर ब्रह्माजी बोले ।।७२।। हे देवताओं वर देते समय मैंने कहा था कि, शिवजी के पुत्र के विना तेरा वध कोई न कर सकेगा इसलिये विना शिवजी के पुत्र के उसका वध असंभव है एक उपाय करो ।।७३।। रुद्र भगवान् की पत्नी सती ने पहिले अपने पिता के यज्ञ में शरीर त्याग दिया था। अब उसने हिमाचल के घर जन्म ले लिया

डिता देवा ब्राह्मणं शरणं ययुः। तैः पीडां वर्णितां श्रुत्वा वेधाः सुरानिदम् ।।७२।। वरप्रदानकालेऽहं रुद्रपुत्रं विना सुराः। नान्यैर्वध्य इति प्रादां वरं तस्मै दुरात्मने ।।७३।। पुरा सती रुद्रपत्नी सत्रे त्यक्तकलेवरा। जाता हिमवतः पुत्री पार्वतीति च यां विदुः ।।७४।। रुद्रो हिमवतः पृष्ठे तपश्चरति दुश्चरम्। योजयध्वं च पार्वत्या रुद्रं लोकेश्वरं प्रभुम् ।। ७५ ।। पुनर्देवेन्द्रसदने संगतैरमरेश्वरैः। धिषणेनापि संमन्त्र्य देवेन्द्रः पाकशासनः ।।७६।। सस्मार च स कार्यार्थं नारदं स्मरमेव च। तत्रागतौ ततस्तौ तु बलभिद्वाक्यमब्रवीत् ।।७७।। हिमवन्तं भवान् गत्वा वचसा तन्निबोधय। पुत्री तव

है और पार्वती उसका नामहै ।।७४।। किन्तु रुद्र भगवान् हिमाचल के शिखर पर घोर तप कर रहे हैं। किसी तरह लोकेश्वर भगवान् रुद्र से पार्वती का पाणिग्रहण कराना चाहिये ।।७५।। तब सब देवता इन्द्र के संग अमरावती में गये और वहां गुरु

की पत्नी ही तेरी पुत्री है ॥७८॥ दक्ष कन्या के वियोग से महादेवजी तेरे शिखर पर तप कर रहेहैं अतः उनकी सेवा के लिये उनकी प्रिय पत्नी को नियुक्त कर ॥७९॥ तेरी पुत्री उन्हीं की पत्नी होगो और वे उसके पति होंगे । इन्द्र की आज्ञा पाकर नारद जी उसकी बात मानकर ॥८०॥ जैसे कहा था वैसे ही करने लगे, फिर कामदेव से इन्द्रने कहा ॥८१॥ सब

प्राक्दक्षस्य हरपत्नी सुता सती ॥ ७८ ॥ तपश्चरति ते शृङ्गे वियुक्तो दक्षकन्यया । मृडस्तस्य सपर्यायै विनियोजय तत्प्रियाम् ॥७९॥ तस्यैव पत्नी भविता स एव भविता पतिः । इत्यादिष्टो मघोना च नारदोपेत्य तं गिरिम् ॥८०॥ तथैव कारयमास देवेन्द्रेणोदितं तथा । पश्चात्कामं समाहूय मघवानिदमाह च ॥८१॥ देवानां च हितार्थाय तथा मृडहिताय च । वसन्तेन समायुक्तो गत्वा रुद्रतपोवनम् ॥८२॥ गुणान्विजृंभयित्वा तु वासन्तान् त्वच्छयावहान् । यदा सन्निहिता देवी पार्वती तु मृडस्य च ॥८३॥ तदा प्रयुज्य त्वं बाणान्मोहयस्व महाप्रभुम् । तयोस्तु संगमे जाते कार्यं नोद्धा भविष्यति ॥ ८४ ॥ इत्यादिष्टः स्मरस्तूर्णं प्रतस्थे बाढमित्यथ । सवसंतः ।

देवताओं तथा महादेजी के हित के लिये वसन्त ऋतु को सङ्ग लेकर तू रुद्र भगवान् के तपोवन में जा ॥८२॥ वहां तू चारों ओर मनोहर वसंत ऋतु का विस्तार कर और जब पार्वतीजी महादेवजी के पास पहुँच जांय तब ॥८३॥ धनुष पर बाण चढ़ा कर ऐसा मार कि—महादेवजी मोहित होजायँ, उनका संगम होने पर सब कार्य अवश्य पूरा हो जायगा ॥८४॥ कामदेव

"जो आज्ञा" कह कर वसंत ऋतु, अपनी स्त्री रति और अनुचरों को संग ले उसी ओर शीघ्र ही चला गया ॥८५॥ और जाकर अपनी शक्ति से असमय में वसंतऋतु उत्पन्न करदी, चारों ओर वन की शोभा अपूर्व होगई, शीतल, मन्द, सुगंधित वायु चलने लगी ॥८६॥ दैवात् उसी समय महादेवजी भी पार्वती की सेवा से प्रसन्न हो उन्हें गोदी में बैठा कर कुछ कहना प्रारम्भ

सरतिकः सानुगतस्तद्वनं ययौ ॥८५॥ अकाले तु वसन्ततुं जृम्भयित्वा स्वशक्तितः । तद्वने सर्वतो रम्ये मन्दानिलनिषेविते ॥८६॥ कदाचिद्देवदेवोऽपि पार्वत्याश्च सपर्यया । प्रीतः स्वाङ्गं समारोप्य किंचिद्व्याहर्तुमारभत् ॥८७॥ प्राणप्रियासंगमस्य कालोऽयमिति निश्चितः । पेशलं धनुरादाय स तस्थौ हरपृष्ठतः ॥८८॥ कृत्वा जवनिकां वृक्षं बाणमेकं मुमोच ह । द्वितीयमपि सन्धाय चक्रे मोक्तुं महोद्यमम् ॥८९॥ अथ क्षुब्धमना भूत्वा मृडश्चिन्तामवाप ह । न मे मनश्चलं क्वापि केन वा कश्मलीकृतम् ॥९०॥ इति चिन्ताकुलो वामे पार्श्वे कामं ददर्श ह । क्रुद्धश्चोन्मील्य ललाटाक्षं

करने लगे ॥८७॥ तब कामदेव ने समझा कि, प्राण प्रियाके संगम का यही उचित समय है इसलिये धनुष उठा कर महादेवजी के पीछे चला गया ।८८। और वृक्षकी ओट से एक बाण छोड़ दिया और दूसरा बाण चढाकर चलाने को ही था ।८९। कि महादेवजी का मन चंचल हो गया वे चिंता करने लगे कि मेरा मन कभी चंचल नहीं होता था ऐसा विकार युक्त किसने

का खोलकर पार्वती को दूर करके ॥९१॥ ऐसी तीक्ष्ण अग्नि प्रकट की कि, सब संसार भयभीत होगया और अग्नि से धनुष

का खोलकर पार्वती को दूर करके ॥६१॥ ऐसी तीक्ष्ण अग्नि प्रकट की कि, सब संसार भयभीत होगया और अग्नि से धनुष बाण समेत कामदेव भस्म होगया ॥६२॥ देवता अपने कार्य की सिद्धि समझकर भाग गये तथा वसंत और रति भी भयभीत हो भाग गये ॥६३॥ पार्वती भी डरके मारे आंख बन्द कर दूर हटगई और स्त्री की निकटता छोडने के लिये महादेवजी भी

स्वाङ्काद्देवीमपास्य च ॥६१॥ तस्याद्क्ष्णः समभूदग्निस्तीक्ष्णो लोकविभीषणः । तेन दग्धोऽभवत्सद्यो मन्मथः सशरासनः ॥६२॥ कार्यसिद्धिं च पश्यन्तो दुद्रुवुश्चामरा दिवम् । शङ्कमानौ स्वदण्डं च वसन्तो रतिरेव च ॥६३॥ निमील्य लोचने भीता देवी दूरं प्रदुद्रुवे । सन्निधानं स्त्रियो हर्तुं मृडोऽप्यन्तरधीयत ॥६४॥ रुद्रस्येष्टं प्रकुर्वाणो देवश्च मनसो हितम् । लेभे नार्थमनिर्वृत्तं विप्रियं कुर्वतस्तु किम् ॥ ६५ ॥ तस्मादिक्ष्वाकुतनयः साधूनामप्रियः सदा । तस्मादात्महितां सेवां नाकरोन्मन्दधी सताम् ॥६६॥ अनुभूतं महद्दुःखं तस्माद्योनिरेव च । तस्मात्कुर्यात्तु

अन्तर्धान होगये ॥६४॥ हितकी इच्छा करने वाले देवताओं की फल सिद्धि न हुई उलटा अनर्थ हुआ जो कोई साधुओं के संग दुष्टता करते हैं उनका कहना ही क्या है ॥६५॥ इसी प्रकार यह इक्ष्वाकु का पुत्र सदा साधुओं को अप्रिय था क्योंकि यह साधुओं की भलीभांति सेवा नहीं करता था ॥६६॥ इसी कारण उसने महा दुःख भोगे और अनेक बुरी योनियों में जन्म लिया इसलिये सब अर्थों की सिद्धि के लिये साधु सेवा अवश्य करनी चाहिये ॥६७॥ देखो रुद्रका अप्रिय करने से कामदेव ने

भविष्य जन्मों में बड़े २ दुःख उठाये ॥६८॥ जो रात दिन इस पुण्य चरित्र रूपी पुराने इतिहास को सुनते हैं वे जन्म, मृत्यु, बुढापा आदि से निस्सन्देह छूट जाते हैं ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे कामदाहनोनाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

वै० मा० ६६

साधूनां सेवां सर्वार्थसाधिनीम् ॥ ६७ ॥ रुद्रस्याप्रियकारित्वात्स्मरो भाविनि जन्मनि । दुःखं तु बहुलं लेभे जन्मकाले महाप्रभुः ॥६८॥ इतिहासमिमं पुण्यं ये शृण्वन्ति दिवानिशम् । जन्ममृत्युजरादिभ्यो मुच्यन्ते नात्र संशयः ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहत्म्ये नारदांबरीषसंवादे कामदहमोनामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥छ॥

मैथिल उवाच ॥ तस्य दग्धस्य कामस्य कस्माज्जन्माभवद्विभो । किं दुःखमभवत्तस्मिन् कर्मणः सह लङ्घनात् ॥१॥ एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मञ्छ्रतुं कौतूहलं हि मे श्रुतदेव उवाच ॥ कुमारजन्म वक्ष्यामि श्रवणात्पापनाशनम् ॥२॥ यशस्यं पुत्रदं धर्म्यं सर्वरोगविनाशनम् । शंभुना तु हते कामे

मा० टी० अ० ६

मैथिल ने पूछा हे विभो ! जब कामदे जल गया तब उसकी उत्पत्ति कैसे हुई और कर्मवश उसे कौन कौन दुःख भोगने पुत्र देने वाला, धर्ममय और सब रोगों का नाश करने वाला, है । जब महादेवजी ने कामदेव को भस्म कर दिया तब उसकी ... हो गई । जब दो घड़ी पीछे चेत हुआ तब अनेक

मैथिल ने पूछा है विभो ! जब कामदेव जल गया तब उसकी ...

पुत्र देने वाला, धर्ममय और सब रोगों का नाश करने वाला है । जब महादेवजी ने कामदेव को भस्म कर दिया तब उसकी स्त्री रति ॥३॥ अपने सामने पति को भस्म हुआ देखकर शोक से मूर्छित होगई । जब दो घड़ी पीछे चेत हुआ तब अनेक प्रकार के विलाप करने लगी ॥४॥ उसके विलाप को सुनकर सारा तपोवन दुःखमय होगया और रति ने विचार किया कि मैं

वै० मा० ६७

तत्पत्नीं रतिसंज्ञका ॥३॥ मुमोह पुरतो दृष्ट्वा पतिं भस्मावशेषितम् । जातसंज्ञा मुहूर्तेन विललापाह चित्रधा ॥ ४ ॥ यद्विलापाद्वनं वापि समदुःखमभूत्तदा । तच्चिताग्नौ स्वकायं तु त्यक्तुकामा च माधवम् ॥५॥ पत्युः सखायं सस्मार कर्तुं तात्कलिकीं क्रियाम् । स आगतश्चितिं कर्तुं वीरपत्न्यां महाप्रभुः ॥६॥ स तु त्रस्तः सखीं दृष्ट्वा क्षणं मूर्च्छापरोऽभवत् । रतिं तु सांत्वयामास सांत्वैर्बहुविधैरपि ॥७॥ पुत्रतुल्योस्मि ते भद्रे स्थिते मयि च नार्हसि । कायं त्यक्तुं धर्म हेतुमित्याद्यैर्बहुधापि सा ॥८॥ नैव स्थातुं मनश्चक्रे तेन संस्तम्भिता रतिः । दृष्ट्वा दार्ढ्यं वसन्तोपि चितिं चक्रे सरित्तटे

भा० टी० अ० ६

भी चिता में जलकर शरीर का त्याग करदूं ॥५॥ यह विचार कर उसने अपने पति के मित्र बसन्त को उसकी अन्तिम क्रिया करने के लिये बुलाया, इस तरह जब वह वीर पत्नी चिता बना रही थी तब वह भी आ पहुंचा ॥६॥ वह रति को देख डर के मारे क्षणभर मूर्छित होगया, फिर अनेक भाँति से रति को समझाने लगा ॥७॥ और बोला हे भद्रे ! मैं तेरे पुत्र के समान हूँ । मेरे होते हुये तुम्हें ऐसा करना अनुचित है । शरीर का त्याग अथवा आत्मघात करना धर्म का हेतु नहीं, इस प्रकार

जब बहुत से समझाने पर भी ॥८॥ रति ने अपना शरीर रखना न स्वीकार किया तो उसकी दृढ़ता देखकर बसन्त ने नदी के तट पर चिता बनाई ।९। और रति गङ्गा में स्नान कर सम्पूर्ण क्रिया कर्मसे निश्चिन्त हो सब इन्द्रियों को रोक और मनको आत्मा में लीनकर ॥१०॥ चिता पर चढने को उद्यत हुई तब आकाश वाणी हुई कि हे कल्याणि ! हे पति में अत्यन्त प्रेम

बै० मा० ६८

॥९॥ सावगाह्य द्यु नद्यां च कृत्वा कार्याणि सर्वशः । सन्नियम्येन्द्रियग्रामं निवेश्यात्मनि वै मनः ॥१०॥ चितिमारोढुमारेभे ततो जाताऽशरीरवाक् । मा प्रवेश्य कल्याणि वह्निं पतिपरायणे ॥११॥ भविष्यति च ते पत्युर्हराद्विषणोश्च याचवात् । जन्मद्वयंक्रमेणैव तत्र चोत्तरजन्मनि ॥१२॥ भैष्म्यां कृष्णान्महाविष्णोः प्रद्यु म्नाख्यो भविष्यति । वसिष्यति त्वं च शापद्ब्रह्मणः शम्बरालये ।१३। प्रद्यु म्नाख्येन ते पत्या संगतिश्च भविष्यति । इत्युक्त्वा विरराामाथ वाणी चाकाशगाम्बरा ॥१४॥ श्रुत्वा तां तु निवृत्ताभून्मरणे कृतनिश्चया । ततो देवाः समाजग्मुः स्वार्थे कामे हते हरात् ॥१५॥ रत्यादृष्टं

मा० टी० अ० ८

रखने वाली ! तू चिता में प्रवेश मत करे ॥११॥ तेरा पति महादेवजी और यदुवंशी कृष्ण भगवान से पुनः पैदा होगा । ऐसे क्रम से दो जन्म होंगे । तब दूसरे जन्म में ॥१२॥ श्रीकृष्ण से रुक्मिणी के गर्भमें तेरा पति होगा । उसका नाम प्रद्यु म्न होगा, तू ब्रह्माके शाप से शंबर के घरमें निवास करेगी ॥१३॥ वहीं प्रद्यु म्न नामके तेरे पति से तेरा मिलना होगा । ऐसा कहकर

तू अक्षाके शाप से शंबर के घर में निवास करेगी ॥१३॥ वहाँ प्रद्युम्न नामके तेरे पति से तेरा मिलना होगा। ऐसा कहकर

सिद्धि के लिये कामदेव महादेवजी ने भस्म करदिया था व सब देवता बृहस्पति, इन्द्र और अग्नि को आगे करके रतिसे श्रेष्ठ हो बोले और महान् वरदान देकर उसकी शान्ति की ॥१५॥१६॥ कहा हे कामप्रिये ! अब से तेरा पति अनङ्ग कहावेगा और अङ्गवाले की तरह मरा हुआ दिखाई देगा ऐसे यों अनेक प्रकार समझा बुझा धर्म उपदेश करने लगे ॥१७॥ कि तेरा पति

प्रकुर्वाणा गुर्विन्द्राग्नि पुरोगमाः । तां ते निर्वतयासुर्वरेण महता सतीम् ॥ १६ ॥ अनङ्गोऽपि भवेत्साङ्गो मृत एवा ह्यिगो भवेत् । इति तां तु विनिर्वर्त्य धर्मं चोपदिदेशिरे ॥१७॥ पूर्वकल्पे त्वयं राजा सुन्दराख्यो महाप्रभुः । त्वमेव पत्नी तत्रापि रजःसंकरकारिणी ॥ १८ ॥ तेनेयं च दशाभूत्ते कुर्विदानीं च निष्कृतिम् । मन्दाकिन्यां तु वैशाखे प्रातःस्नानं तदा कुरु ॥१६॥मधुसूदनमभ्यर्च्य कथां दिव्यां तथा शृणु । अशून्यशयनं नाम व्रतमारंभ भामिनि ॥२०॥ धर्मेणानेन ते भद्रे व्रतेनापि च माधवे । नून ते भविता पत्युरुपलब्धिर्न संशयः ॥ २१ ॥ इति तस्यै वरं दत्त्वा देवा

पूर्वकल्प में सुन्दर नाम का राजा था। उस जन्म में भी तू इसकी पत्नी रजसंकरकारिणी हुई थी।१८। इसी से तेरी यह दशा हुई है अब तू वैशाख में मन्दाकिनी नदी में प्रातःकाल स्नान करके ॥१६॥ मधुसूदन भगवान् का पूजन कर और उनकी दिव्यकथा सुन तथा हे भामिनी ! तू अशून्य शयन नाम का व्रत प्रारम्भ कर ॥२०॥ हे भद्रे ! वैशाख में इस धर्म के करने से और इसी व्रत का अनुष्ठान करने से तेरा पति तुझे अवश्य मिल जायगा इसमें संशय नहीं ॥२१॥ रति को ऐसा वर देकर

सब देवता अपने अपने स्थान को चले गये और कामदेव की स्त्री भी क्लेश से निवृत्त होगई ॥२२॥ वह मेष की संक्रांति में गङ्गा स्नान कर बड़े उत्तम मन से अशून्यशयन व्रत धारण करती हुई ॥२३॥ इस के पुण्य के प्रभाव से तत्काल कामदेव उसको दिखाई दे गया यह ऐसा पराक्रमी है कि इसके पराक्रम को कोई नहीं रोक सकता ॥२४॥ यह पूर्वकल्प में भी बड़ा

वै० मा०

जग्मुर्यथागताः । ततः कृच्छ्रान्निवृत्ता सा देवी कामवती तथा ॥२२॥ गङ्गावगाहनं चक्रे मेषसंस्थे दिवाकरे । अशून्यशयनं नाम व्रतं चापि महामनाः ॥ २३ ॥ तेन पुण्यप्रभावेन सद्यः कामोऽक्षि-गोचरः । अभूत्तस्यै महाराज लोके चावार्ग्वीर्यवान् ॥१४॥ पूर्वकल्पेप्ययमपि राजा धर्मपरायणः । वैशाखोक्तान्महाधर्मान्नाकरोत्तेन वै स्मरः ॥२५॥ देहहानिं प्रपेदेऽसौ पुत्रोऽपि परमात्मनः । वृथा नीते तु वैशाखे मेषसंस्थे दिवाकरे ॥२६॥ अवस्थेयं च देवानां मनुष्याणां तु कथा । त्र्यम्बके-ऽन्तर्हिते पश्चान्निराशा गिरिकन्यका ॥२७॥ तूष्णीं स्थितां तदा भ्रान्तां तां दृष्ट्वा हिमवान् गिरिः।

धर्मपरायण राजा था किन्तु इसने वैशाख मास में कर्त्तव्य धर्म नहीं किये थे इसी लिये ॥२५॥ कामदेव परमात्मा का पुत्र था तो भी अङ्गहीन हुआ यही वैशाख में मेष की संक्रान्ति को व्यर्थ खोने का फल है ॥२६॥ जो देवताओं को भी भोगना पड़ा है मनुष्यों का तो कहना ही क्या, जब महादेवजी अन्तर्धान होगये तब पार्वती जी निराश होगई ॥२७॥ पार्वती खड़ी रह

ह मनुष्यों का तो कहना ही क्या, जब महादेवजी अन्तर्धान होगये तब पार्वती जी निराश होगई ॥२७॥ पार्वती ...

... उदारतादि गुणों को देखकर मुग्ध होगई थी और उसने मन में निश्चय ठानली थी कि शंकरजी ही मेरे पति हों ॥२९॥ ऐसा दृढ़ व्रत धारण कर शंकर में मन लगा गङ्गातट पर जाकर तप करने लगी माता पिता तथा कुटुम्बियों ने बहुत समझाया पर एक न मानी ॥३०॥ अन्न खाना छोड़ दिया, बड़ी बड़ी जटायें बढ़ गईं योंही सहस्र

त्रकितः स्वगृहं निन्ये दोर्भ्यां तां परिरभ्य च ॥ २८ ॥ रूपौदार्यगुणान् दृष्ट्वा हरस्यैव महात्मनः । स एव मे पतिर्भूयादिति तन्निष्ठमानसा ॥२९॥ गङ्गोपकूलमापेदे तपस्तप्तुं धृतव्रता । निवारितापि सा देवी पित्रा मात्रा स्वकैर्जनैः ॥३०॥ अर्चयन्ती महालिङ्ग निराहारा जटाधरा । दिव्यवर्षसहस्रान्ते प्रत्यक्षोऽभून्महेश्वरः ॥३१॥ भूत्वा वर्ण्यपि सायान्ह पर्णशालामुखे विभुः । स्वनिष्ठमनसो दार्ढ्यं वाक्यैर्नानाविधैरपि ॥३२॥ ज्ञात्वा वरादरं भद्रे वरयेति महाप्रभुः । सा वव्रेऽथ पतिं रुद्र त्वं भवेति वरानना ॥३३॥ स तथैव वरं दत्त्वा ऋषीन् सस्मार सप्त च आजुग्मुस्तेऽपि मुनयः स्थिताः

वर्ष तक महालिंग का पूजन करती रही तब महादेवजी ॥३१॥ सांयकाल के समय ब्रह्मचारी वेश धारण कर उसके सामने पर्णकुटी पर आये और अनेक प्रकार से परीक्षा करने लगे कि इसकी प्रीति मुझमें दृढ़ है या नहीं ॥३२॥ परीक्षा लेकर बोले हे भद्रे ! तेरी जो इच्छा हो वही वर मांग ! तब पार्वतीजी बोली हे रुद्र ! मैं यह वर मांगती हूँ कि तुम मेरे पति हो ॥३३॥ 'ऐसा ही हो' वर देकर सप्तऋषियों को बुलाया वे आकर हाथ जोड़कर आगे खड़े हुए ॥३४॥ तब ऋषियों को आज्ञा दी

कि तुम पूछने के निमित्त हिमालय के पास जाओ। भगवान् की ऐसी आज्ञा पाकर कन्या के लिये हिमाचल के घर ॥३५॥ आकाश मार्ग से चले उनके चलने से दशों दिशा प्रकाशित होगईं, इन ब्रह्मवेत्ता सप्तऋषियों को आते देख हिमाचल उठकर आदर पूर्वक ले आये ।३६। सबकी विधिवत् पूजा की। जब सुखसे वे आसन पर बैठ गये, तब हिमाचलने पूछा, हे महाराज !

प्राञ्जलयः पुरा ॥३४॥ ऋषीणां ज्ञापयामास कन्यां प्रष्टुं हिमालयम् । तथादिष्टा भगवता कन्यार्थं हिमवद्गृहम् । प्रापुर्विहायसा सर्वे द्योतयन्तो दिशो दश ॥३५॥ प्रत्युज्जगाम स गिरिः सप्तैतान् ब्रह्मवित्तमान् ॥३६॥ संपूज्य विधिवत्सर्वान् सुखासीनानपृच्छत । धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि यद्भवन्तो गृहागताः ॥३७॥ भवदागमनं मन्ये मम जन्मफलं त्विति । न कृत्यं विद्यतेऽस्माभिः पूर्णार्थानां महात्मनाम् ॥३८॥ तथापि ब्रूत कार्यं वो यत्कर्तव्यं मयाधुना । इत्युक्तास्ते तथा प्रोचुर्हिमवन्तं महागिरिम् ॥३९॥ त्वया ते सदृशं वाक्यमुक्तं गिरिपते दृढम् । अस्मदागमने हेतुं वक्ष्यामस्ते

मैं धन्य हूं, आज आप मेरे घर पधारे इससे मैं कृत्य-कृत्य हुआ। आपके आगे मनको मैं अपने पूर्व जन्म के पुण्यों का फल मानता हूँ, पूर्ण मनोरथ महात्माओं के कृत्य हम सरीखे नहीं जानते हैं ॥३७॥३८॥ आप अपने आनेका कारण कहिये मैं आपकी आज्ञा पालन करूंगा। यह सुनकर सप्तर्षि हिमाचल से बोले ॥३९॥ हे गिरिपते ! तुमने अपने योग्य ही दृढ़ वाक्य

आपकी आज्ञा पालन करूंगा । यह सुनकर सप्तर्षि हिमाचल से बोले ॥३९॥ हे गिरिपते ! तुमने अपने योग्य ही यह वाक्य

पुत्री थी इसी ने अपने पिता के यज्ञ में देह त्याग दिया था अब तेरे यहां जन्म धारण किया है ॥४१॥ इसका पाणि ग्रहण करने योग्य तीनों लोक में महादेवजी को छोड़कर और कोई नहीं है इसलिये हे कल्याण की इच्छा करने वाले ! तू अपनी कन्या का विवाह महादेव से करदे ॥४२॥ तैने सहस्रों जन्मों में अनेक सुकृत किये हैं अब सौभाग्य से वे परिपाक को प्राप्त हुए हैं

महोदये ॥४०॥ कन्या ते पार्वती नाम पूर्वं दक्षात्मजा सती । जाता तव कुमारी या यज्ञे त्यक्त-कलेवरा ॥४१॥ अस्याः पाणिग्रहे दक्षः शम्भुर्नान्यो जगत्त्रये । देया सा शम्भवे देवी भवतानन्त्यमिच्छता ॥४२॥ पूर्वजन्मसहस्रेषु भवता सुकृतं कृतम् । इदानीं तव दिष्ट्या तु परिपाकमुपागतम् ॥४३॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा संहृष्टात्मा महागिरिः । व्याजहार पुनर्वाक्यं पुत्री वल्कलधारिणी ॥४४॥ गङ्गातीरे निराहारा तपस्तपति दुश्चरम् । कांक्षमाणा पतिं शम्भुं तस्या इष्टमिदं त्विति ॥४५॥ दत्ता कन्या मया तस्मै त्र्यंबकाय महात्मने । शीघ्रं गत्वा भवन्तस्तु यत्र शम्भुर्महाप्रभुः

॥४३॥ ऋषिओं के इन वचनों को सुन कर हिमाचल को अत्यन्त हर्ष हुआ और बोला कि मेरी पुत्री तो छाल के वस्त्र धारण कर ॥४४॥ गङ्गा तट पर अनशन व्रत धारण कर अत्यन्त कठिन तप कर रही है वह महादेवजी को पति बनाना ही चाहती है उसका मनवांछित यही कार्य है ॥४५॥ हे मुनिवरो ! मैं अपनी कन्या महादेव जी को दे चुका हूं आप अब शीघ्र वहां पधारो जहां महादेवजी हैं और उनसे जाकर कहो कि हे प्रभो ! हिमाचल ने प्रीति से अपनी कन्या आपके निमित्त दी है इसे

अङ्गीकार कीजिये। ऐसे उनसे कह कर आपही इस कन्याके विवाह का प्रबन्ध कीजिये ॥४६-४७॥ जब हिमाचलने यों कहा तब सप्तऋषि महादेवजी के पास गये और उनको सब समझा बुझा विवाह निश्चित कर चले गये तब तो लक्ष्मी आदि सब देवियां और विष्णु आदि सब देवता ।४८। छहो मातृका और सब मुनिगण उस महोत्सव को देखने बराती बनकर चले और

॥४६॥ प्रीत्या हिमवता दत्तां गृहाणेति निवेद्यच। भवन्त एव कुर्वन्तु चैतद्वैवाहिकीं क्रियाम् ॥४७॥
इत्युक्तास्ते हिमवता तमामन्त्र्य शिवं ययुः। लक्ष्म्याद्या योषितः सर्वा विष्ण्वाद्या देवता अपि
॥४८॥ षण्मातरोऽथ मुनयो द्रष्टुं जग्मुर्महोत्सवम्। शिवः सर्वामरगणैर्मुनिभिर्मातृभिस्तथा
॥४९॥ आन्वतो वृषभारूढः प्रमथानां गणैर्वृतः। भेरीशङ्खमृदङ्गाद्यैः काहलीपटहादिकैः ॥५०॥
ब्रह्मघोषैर्बन्दिभिश्च प्राविशद्धिमवत्पुरीम्। सुमुहूर्ते शुभे लग्ने शुभग्रहनिरीक्षिते ॥५१॥ विवाहमकरो-
च्छैलः प्रहृष्टेनान्तरात्मना। महोत्सवस्तदा चासीत्त्रिलोक्यां प्राणिनां नृप ॥५२॥ महोत्सवे निवृत्ते

महादेवजी सब देवता,मुनि,मातृका ॥४९॥ आदि को सङ्ग ले बैल पर चढ़कर चले जिनके चारों ओर भूत गण सङ्ग हैं,भेरी, शङ्ख, मृदङ्ग,पणव,मुरचंग आदि अनेकों बाजे बजने लगे ॥५०॥ बन्दीजन अनेक प्रकार के शब्द करते जाते हैं ऋषिगण वेदकी ऋचा के पाठ कर रहेहैं इस प्रकार हिमाचल की पुरी में प्रवेश किया फिर सुन्दर मुहूर्त,शुभ लग्न और शुभ ग्रहों की

पार्वती के संग स्वच्छन्दता से रमण करने लगे ॥५३॥ सम्पूर्ण ऋद्धि सिद्धियों से युक्त इन्द्र भवन तुल्य हिमालय के शिखर

पार्वती के संग स्वच्छन्दता से रमण करने लगे ॥५३॥ सम्पूर्ण ऋद्धि सिद्धियों से युक्त इन्द्र भवन तुल्य हिमालय के शिखर पर नन्दिनीके तीर पर, वन के बीच रात्रिमें जहाँ मतवाले भौंरा गुँजारते थे, पक्षी कुहुकते थे और शब्द करते थे ऐसे स्थान पर

वैं० मा० ७५

तु शङ्करो लोकशङ्करः । रेमे स्वच्छन्दया देव्यालोकधर्मानुव्रतः ॥५३॥ ऋद्धिमद्धिमवद्देहेदेवेद्रभवनोपमे । शर्वर्यां नन्दिनीतीरे वनाराजिषु शङ्करः ॥५४॥ मत्तालिद्विजसन्नादमयूररवमण्डिते । दिव्यवर्षसहस्त्राणि रेमे स्वच्छन्दया विभुः ॥५५॥ स्त्रीणामिन्द्रवराभावात्तस्मिन् काले नृपोत्तम । पुसंगात्पुनर्गर्भो नारीणां स्रवति ध्रुवम् ॥५६॥ प्रत्यहं रमणाद्देव्यां नाभूद्गर्भो हराद्धत । देवानामवच्चिन्ता पुत्रालाभाद्धाद्धिभो ॥५७॥ सर्वे संगत्य संमंत्र्य मिथ एवं बभाषिरे । कामोत्राभूद्रतौ नित्यं सक्तो देव्या हरः स्वराट् ॥५८॥ नास्माकं सिध्यते कार्यं नित्यं गर्भस्य संस्रवात । पुनारतिर्यथा माभूत्तथा-

मा० टी० ऋ० ६

महादेवजी सहस्र दिव्य वर्ष तक रमण करते रहे ।५४-५५। देवराज इन्द्रने स्त्रियोंको वर दिया कि उस समय पुरुष संसर्ग करने से निश्चय ही स्त्रियों का गर्भ गिर जाय ॥५६॥ जब महादेवजी पार्वती के संग नित्य-प्रति रमण करने लगे और गर्भ स्थिति न हुई तो सब देवताओं को घोर चिन्ता उत्पन्न हुई ॥५७॥ सब मिलकर आपस में विचार करने लगे कि, क्या कारण महादेवजी नित्यप्रति पार्वती के संग रमण में प्रवृत्त होतेहैं ॥५८॥ नित्य गर्भस्राव हो जाने से हमारे काय की सिद्धि कठिन

है अतः अब कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे महादेवजी फिर रति करने में प्रवृति न हों ॥५९॥ ऐसा कहकर थोड़ी देर तक विचारे रहे कि क्या करें फिर निश्चित हुआ कि इस कार्य को अग्नि देवता कर सकते हैं इसलिये अग्नि का अत्यन्त सन्मान कर कहने लगे ॥६०॥ हे अग्ने ! तू ही देवताओं का मुख है, तू ही बन्धु है और अब तेरे ही हाथ में सब बात

स्माभिर्विधीयताम् ॥५९॥ मिथ एवं तु सभाष्य विचिन्वन् क्षणमत्र ते अग्निं कृत्ये विनिश्चित्य ह्यूचुर्मानपुरःसरम् ॥६०॥ त्वं मुखोऽग्ने हि देवानां त्वं बन्धुर्गतिरेव च। इदानीमपि गच्छ त्वं रमते यत्र वै हरः ॥६१॥ रत्यन्ते दर्शयात्मानं यथा न स्यात्पुनारतिः। त्वां दृष्ट्वा व्रीडिता देवी ततश्चापसरेद्ध्रुवम् ॥६२॥ शिष्यो भूत्वा तु रत्यन्ते पृच्छ तत्त्वं स्मरान्तकम्। तत्त्वसंप्रश्नव्याजेन कालं बहु नय प्रभो ॥६३॥ बहुकाले गते देवी कुमारं प्रसविष्याति। देवैरेवं प्रार्थितोऽग्निरो-मित्युक्त्वा हरं ययौ ॥६४॥ वीर्योत्सर्गात्पूर्वमेव गतो वह्नीरतान्तरे। तं दृष्ट्वा व्रीडिता देवी विवस्त्रा

है अब तू अभी वहीं जा जहां महादेवजी रमण कर रहे हैं ॥६१॥ जब वे रमण कर चुके तब तू प्रगट हो सम्मुख चले जाना जिससे वे पुनः रमण न करें क्योंकि तुझे देखकर पार्वती जी लज्जा के मारे वहां से हट जायगी ॥६२॥ तब तू शिष्य होकर कामारि श्रीशिवजी से तत्वप्रश्न करना ऐसे ही महादेवजी का बहुत सा समय लगा देना ॥६३॥ बहुत काल व्यतीत

पहुँच गया उसे देख वस्त्र हीन होने के कारण पार्वती को बड़ी लज्जा उत्पन्न हुई और मन खिन्न होगया ॥ ६५ ॥ तथा

होकर कापूति श्रीशिवजी से तत्वप्रश्न करना,ऐसे ही महादेवजी को बहुत सा समय लगा देना ॥६३॥ बहुत काल उपरांत

पहुँच गया उसे देख वस्त्र हीन होने के कारण पार्वती को बड़ी लज्जा उत्पन्न हुई और मन खिन्न होगया ॥ ६५ ॥ तथा रमण छोड़ अलग हट गई तब महादेवजी को बड़ा क्रोध हुआ और अग्नि से बोले हे दुर्मते ! इस अस्खलित वीर्य को

विमना ययौ ॥६५॥ रतिं विहाय त्वरया ततो रुद्रोऽतिकोपितः । वह्निं प्राह गृहाणेदमविसृष्टं तु दुर्मते ॥६६॥ मद्वीर्यं दुःसहं पाप रतिविघ्न स्त्वयाभवत् । उत्सृजामि च मद्वीर्यं त्वन्मुखे हव्यवाहन ॥६७॥ इत्युक्त्वोसृष्टवान्वीर्यं हव्यवाहमुखे हरः । तद्धृत्वा दह्यमानः सन् स्वोदरे वीर्यमुल्वणवम् ॥६८॥ चिन्तयानो ययौ धाम देवानां यज्ञपूरुषः । कथंचित्प्राणतो मुक्तो देवेभ्यस्तन्यवेदयत् ॥ ६९ ॥ देवा वह्नीरितं श्रुत्वा हर्षशोकौ समीययुः स्थितं वीर्यमिति ह्लादं कथं तु प्रसवो भवेत् ॥७०॥ इति दुःखं तदा चासीद्वह्नेः कुक्षौ तु शांवभम् । विवृधे तेजका च्छिप्तं दशमासा गतास्तदा ॥७१॥ नापश्य-

तू ग्रहण कर ॥६६॥ दुष्ट ! मेरा वीर्य दुःसह है तूने रति में विघ्न किया है अतः अपने वीर्य को तेरे मुख में त्यागूँ गा ॥६७॥ ऐसा कह अग्नि के मुख में वीर्य छोड दिया,उस प्रचंड वीर्य के उदर में प्रवेश होने से वह जलने लगा और चिंतित होकर स्वर्गलोक गया। अत्यन्त कठिनाई से प्राण बचे तब देवताओं से सब वृत्तान्त कहा ॥६८॥६९॥ अग्निकी बात सुन देवताओं को हर्ष शोक दोनों हुए–वीर्य के स्थित हो जाने से तो हर्ष हुआ परन्तु प्रसव कैसे होगा ॥ ७० ॥ इसका अत्यन्त दुःख

हुआ । अग्नि के उदर में महादेवजी का तेजोमय वीर्य बढ़ने लगा यहां तक कि दस महीने बीत गये ॥७१॥ जब प्रसव का कोई उपाय न हुआ तब अत्यन्त दुःख से दुःखी होकर गर्भ प्रसव के हेतु देवताओं को शरण में गया ॥७२॥ तब सब देवता अग्नि को संग ले महायशस्विनी गंगा के पास गये और सब मिलकर स्तुति करने लगे ॥७३॥ हे माता ! तू ही सम्पूर्ण

त्प्रसवोपायं बहुदुःखपरायणः देवान्वै शरणं प्राप गर्भमोचनहेतवे ॥ ७२ ॥ ते देवा वह्निना साकं प्रापुर्गङ्गां यशस्विनीम् गङ्गास्तोत्रेण ते स्तुत्वा प्रार्थयामासुरञ्जसा ॥ ७३ ॥ त्वं माता सर्वदेवानां त्वमेव जगतां पतिः । देवतार्थं तु त्वं भद्रे धत्स्व तेजस्तु शाम्भवम् ॥७४॥ तद्वह्नेर्वर्धते गर्भो न स्त्रीत्वात्प्रसवोऽस्य च । तस्मादेनं च नः सर्वान् समुद्धर दयां कुरु ॥७५॥ इत्येवं प्रार्थितो देवी तथास्त्विति वचोऽब्रवीत् । देवास्तु वह्नये प्राहुर्मन्त्रं गर्भविमोचनम् ॥७६॥ तन्मंत्राद्गर्भमाकृष्य व्यसृजद्धव्यवाहनः । गङ्गायां शाम्भवं तेजो भास्वल्लोकसुदुःसहम् ॥७७॥ सा चोढा कतिचिन्मासान्न

देवताओं की माता है उदर में ही जगदीश्वरी है हे भद्रे ! तू देवताओं के निमित्त शंकर के इस तेज को धारण कर ॥७४॥ जो अग्नि के गर्भ बढ़ रहा है वह स्त्री न होने से प्रसव नहीं होता है अतएव तू इस अग्नि और हम सब पर दया करके

गई तो उसके प्रभाव से जल सूख गया और रक्त कलेवर दिखाई देने लगा ॥७८॥ पातिव्रत्य के प्रभाव से देवी अत्यन्त दुःख से व्याकुल हो गई तब लोक पावनी गङ्गा ने अपने उदरस्थ गर्भ को त्याग दिया ॥७६॥ जो सर्पतों में गिरा। सर्पतों से

शशाक ततः परम् । निर्जला तत्प्रभावेण स्फुटद्रक्तकलेवरा ॥७८॥ बहुदुःखाकुला देवी पातिव्रत्य-प्रभावतः । उज्जहार स्वोदरस्थं गर्भं लोकैकपावनी ॥७६॥ शरकाण्डे तु विक्षेप दह्यमान समन्ततः । शरकाण्डैस्तु संभिन्नः षोढा भिन्नो बभूव ह ॥८०॥ षट्कृत्तिकाः समाजग्मुर्ब्रह्मणा चोदितास्तथा । शरकाण्डे विनिर्भिन्नं षोढा सन्धाय शाम्भवम् ॥८१॥ षण्मुखं पुरुषं कृत्वा त्वेकदेहमिति स्फुटम् । कृत्तिका विधिनाज्ञप्तास्तं तथा चक्रिरे दृढम् ॥ ८२ ॥ तद्देहं पुरुषाकारं षण्मुखं शरकाण्डम् । अरक्ष्यमाणमेवासीच्छरकाण्डेषु वै चिरम् ॥८३॥ एकदा वृषभारूढौ पार्वतीपरमेश्वरौ श्रीशैलं

विदीर्ण हो उस गर्भ के छः भाग हो गये ॥८०॥ तब ब्रह्मा की भेजी हुई छः कृत्तिकायें आईं उन्होंने शरकांडों से विभिन्न शांभवी तेज के छः भागों को ग्रहण कर ॥८१॥ छः मुख का पुरुष बनाया परन्तु उसके शरीर एक ही था ब्रह्मा की आज्ञा से उन कृत्तिकाओं ने उसे बहुत दृढ़ कर दिया ॥८२॥ यह पुरुषाकार छः मुखी शरीर बहुत समय तक शरकांडों में वैसे ही पड़ा रहा उसका कोई रक्षक नहीं था ॥८३॥ एक दिन बैल पर चढ़े हुये महादेव पार्वती उसी स्थान पर होकर श्री शैलको

जा रहे थे ॥८४॥ उस समय पार्वती के स्तनों से दूधकी धार ढरकने लगी और वे विस्मित हो महादेवजी से बोली महाराज ! अकस्मात् मेरे स्तनोंसे दूधकी धार बहनेका क्या कारण है ॥८५॥ हे विश्वात्मन् ! इसे बताइये। तब महादेवजी बोले हे देवी ! जो कुछ मैं कहूँ तू सुन, तेरा पुत्र यहीं नीचे पड़ा है ॥८६॥ एक समय तू और मैं रमण कर रहे थे जब तक वीर्य स्खलित

गन्तुमनसौ तत्स्थलं परिजग्मतुः ॥८४॥ तदासीत्पार्वती देवी सद्यःस्नुतपयोधरा । विस्मिता वचनं रुद्र स्तुतौ कस्मात्पयोधरौ ॥ ८५ ॥ कारणं ब्रूहि विश्वात्मन्नित्युक्तस्तु हरोऽब्रवीत् । शृणु देवी प्रवक्ष्यामि पुत्रोऽधो वर्तते तव ॥८६॥ त्वयि वीर्यमनुत्सृष्टं प्रागेवागाद्धविर्वहः । तं दृष्ट्वा व्रीडिता त्वं वै प्रविष्टा च स्थलान्तरम् ॥८७॥ मया कोपाद्वह्निमुखे विसृष्टं वीर्यमुल्बणम् । देवानां च प्रसादेन गङ्गायां व्यसृजद्विभुः ॥८८॥ गंगा च दह्यमाना सा चिक्षेप च शरान्तरे । तत्र षोढा प्रभिन्नं तु मातृभिश्च दृढीकृतम् ॥८९॥ पुरुषाकृतिमापेदे तं दृष्ट्वा ते स्तनौ स्नुतौ । पालनीयं महावीर्यं विष्णुना

नहीं होने पाया था। कि इतने ही में अग्नि आ गया तू उसे देख लज्जा के मारे हट गई ॥८७॥ तब मैंने क्रोध से वह वीर्य अग्नि के मुख में छोड़ दिया जब वह उसे न सह सका तब उसने देवताओं की कृपा से गङ्गा में छोड़ दिया ॥८८॥ जब गङ्गा भी जलने लगी तो उसने शरकन्डों में छोड़ दिया जहाँ ...

समान होगा तू इसका पालन ... ले चली इसमें तेरा बड़ा प्रशंसा

समान होगा तू इसका पालन पोषण कर ॥६०॥ यह तेरा औरस पुत्र है इसे उठाकर शीघ्र ले चलो इससे तेरी बड़ी प्रशंसा होगी ॥६१॥ महादेवजी की बात सुन पार्वतीजी ने शीघ्र ही उस बालक को उठा लिया और अपनी गोदी में बिठा कर दूध पान कराने लगी ॥६२॥ महादेवजी के बताने पर देवी पुत्र स्नेह में तत्पर हो गई और महादेवजी के साथ कैलाश को गई

समविक्रमम् ॥६०॥ अयमे त्वौरसः पुत्रस्तत्र भांति विनिश्चितम् । तस्माद्गृहाण शीघ्रं त्वं तेन-ख्यातिरतीव ते ॥६१॥ इत्याज्ञप्ता शंभुना सा तमादायार्भकं द्रुतम् । अङ्कमारोप्य तं देवी पाययामास सा स्तनौ ॥६२॥ देवेन मोहिता देवी पुत्रस्नेहपराभवत् । पुनः कैलासमगत्प्रभुणो सह शाङ्करी ॥६३॥ पुत्रं लालयतो देवी संतोष परमं ययौ । एवं कुमारजननं वर्णितम् ते मयाद्भुतम् ॥६४॥ य इदं शृणुयान्नित्यं कुमारजनन शुभम् । पुत्रपौत्राभिवृद्धिं तु लभते नात्र संशयः ॥६५॥ महद्दुःखं तु जनने हरस्याप्रियतोऽभवत् । प्रीत्यानुश्रतवैशाखधर्मोऽप्यप्रतिमो भवेत् ॥६६॥ तस्माद्वैशाखधर्मो

॥६३॥ इस प्रकार पुत्र का लालन पालन करती हुई देवी अत्यन्त सन्तुष्ट हुई हे राजन् ! यह कुमार के जन्म की कथा मैंने तेरे सन्मुख कही ॥६४॥ जो इसे नित्यप्रति सुनते हैं उनके पुत्र पौत्रादि की वृद्धि होती है इसमें सन्देह नहीं ॥६५॥ महादेवजी की अप्रसन्नता से उसके जानने में अत्यन्त कष्ट हुए हैं जो प्रीति पूर्वक वैशाख के धर्मों का श्रवण करते हैं उसके बराबर कोई नहीं है ॥६६॥ इसलिये वैशाख में किये हुए धर्म ही सम्पूर्ण पापों को नाश करने वाले हैं इसमें धर्म करने से स्त्रियों का

विधवा योग मिट जाता है, बड़ा पुण्य होता है और सम्पूर्ण प्रकार की संपत्तियां मिलती हैं ॥९७॥ इसके प्रभाव से अनंग कामदेव भी अङ्गों वाला हो गया जो लोग इस मास को विना स्नान किये या बिना दान किये बिता देता हैं ॥९८॥ उसे बहुत से धर्म करने पर भी अनेकों दुख भोगने पड़ते हैं, जो इसी एक मास में धर्म करले तो वह सम्पूर्ण धर्मों के लिये हितकारी है ॥९९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे हरपुत्रोत्पत्तिकथनं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

हि सर्वाघौघविनाशनः । अवैधव्यप्रदः पुण्यः सर्वसम्पद्विधायकः ॥९७॥ अनङ्गोऽपि हि साङ्गत्वं यत्प्रभावात्समाप्तवान् । अस्नात्वा चाप्यदत्त्वा च वैशाखो यस्य वै गतः ॥९८॥ अपि धर्मकृतो वापि भवेद्दुःखपरम्परा । सर्वधर्मो हितः स्याच्च यद्येकोऽयमनुष्ठितः ॥९९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्बादे हरपुत्रोत्पत्तिकथनं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

मैथिल उवाच ॥ यत्कामपत्न्या चरितमशून्यशयनव्रतम् । देवोपदिष्टं तस्यास्य विधानं ब्रूहि भूसुर ॥१॥ किं दानं को विधिस्तस्य पूजनं किं फलं तथा । एतदाचक्ष्व भूदेव श्रोतुं कौतूहलं

मैथिल बोला, कि हे ब्रह्मन् ! आपने कामदेव की स्त्री रतिका चरित्र वर्णन किया और देवताओं का बताया हुआ जो अशून्य शयन व्रत धारण किया वह भी मैंने सब सुना । अब कृपया व्रतको धारण करने की विधि वर्णन कीजिये ॥१॥ इसमें

मुझसे कहिय, इन बातों को जानने की मेरी बड़ी अभिलाषा है ॥२॥ यह सुन के श्रुतदेव कहने लगे हे राजन् ! यह व्रत महा

शुभफल कहिये, इन बातों को जानने की मेरी बड़ी अभिलाषा है ॥२॥ यह सुन के श्रुतदेव कहने लगे, हे राजन्! यह व्रत महा पापों का नाश करता है, इसका नाम अशून्यशयन व्रत है, इसका विधान श्रीहरि भगवान ने लक्ष्मीजी से कहा था वह सब मैं तुम्हें सुनाता हूं ॥३॥ इस व्रत के करने से देवताओं के देवता, श्यामवर्ण, लक्ष्मीपति, जगन्नाथ, संपूर्ण पापों को नाशकर्त्ता

हिं मे ॥२॥ श्रुतदेव उवाच ॥ शृणु भूयः प्रवक्ष्यामि व्रतं पापप्रणाशनम्। अशून्यशयनं नाम रमायै हरिणोदितम् ॥३॥ येन चीर्णेन देवेशो जीमूताभः प्रसीदिति। लक्ष्मीभर्ता जगन्नाथः समस्ताघौघनाशनः ॥४॥ अकृत्वा यस्त्विदं राजन् व्रतं पातकनाशनम्। गार्हस्थ्यमनुवर्तेत तस्येदं निष्फलं भवेत् ॥५॥ श्रावणे शुक्लपक्षे तु द्वितीयायां महीपते। अशून्यशयनाख्यं तद्ग्राह्यं व्रतमनुत्तमम् ॥६॥ चातुर्मास्ये तु संप्राप्ते हविष्याशी भवेन्नरः। चतुर्भिः पारणं मासैः सम्यङ्निष्पाद्यते प्रभो ॥७॥ लक्ष्मीयुक्तो जगन्नाथः पूजनीयो जनार्दनः। पारणे दिवसे प्राप्ते भक्ष्यं चैव

प्रसन्न हो जाते हैं ॥४॥ हे राजन्! इस पाप नाशक व्रतको किये बिना जो गार्हस्थ्य धर्म में प्रवृत्त हो जाते हैं उनका सब करना निष्फल होता है ॥५॥ हे महीपते! श्रावण शुक्ला द्वितीया के दिन इस अशून्यशयन नामके सर्वोत्तम व्रत को धारण करे ।६। चातुर्मास्य में हविष्यान्न भोजन करे फिर चातुर्मास्य व्यतीत होने पर सम्यक् परायण करे ।७। तथा लक्ष्मीनारायण का पूजन करे पारायण के दिन भक्ष्य भोज्यादि चारों प्रकार के भोजन करे ॥८॥ फिर किसी ब्राह्मण को उपाहन देवे सोने

अथवा चांदी की मनोहर मूर्ति बनवावे ॥९॥ पीतांबर धारण करावे सुन्दर वनमाला से सजाये तथा सफेद पुष्प और सुगन्धित द्रव्यों से पुरुषोत्तम भगवान का पूजन करे ॥१०॥ तत्पश्चात् ब्राह्मणों को शय्यादान, वस्त्रदान दे, ब्राह्मण भोजन करावे, ब्राह्मण और ब्राह्मणी दोनों को संग भोजन करावे, दक्षिणा दे पूजन करे ॥११॥ ऐसे नित्यप्रति चार मास तक जनार्दन भगवान

चतुर्विधम् ॥८॥ उपायनं च दातव्यं ब्राह्मणाय कुटुम्बिने । सौवर्णीं राजती वापि मूर्तिं कुर्यान्मनोरमाम् ॥९॥ पीताम्बरधरां दिव्यां वनमालाविभूषिताम् । शुक्लपुष्पैः सुगन्धैश्च पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥१०॥ शय्यादानैर्वस्त्रादानैर्विप्राणां भोजनैस्तथा । दम्पत्योर्भोजनैश्चैव दक्षिणाभिः प्रपूजयेत् ॥११॥ एवं तु चतुरो मासान् पूजयित्वा जनार्दनम् । मार्गशीर्षादिमासेषु पूजयेत्पूर्ववद्धरिम् ॥१२॥ रक्तवर्णं हरिं ध्यायेद्रुक्मिणीसहितं तथा चैत्रादिचतुरो मासानेवं संपूजयेत्ततः ॥१३॥ भूम्यासनस्थितं देवमर्चयेद्भक्तिपूर्वकम् । सनन्दनाद्यैर्मुनिभिः स्तूयमानमकल्मषम् ॥१४॥ आषाढस्य च मासस्य

का पूजन करता रहे फिर मार्गशीर्षादि मासों में पूर्ववत् हरिभगवान का पूजन करे ॥१२॥ रक्तवर्ण हरिभगवान का रुक्मिणी सहित ध्यान करे ऐसे ही चैत्र से चार मास तक हरि भगवान का पूजन करता रहे ॥१३॥ भूमि पर आसन बिछा भक्ति से हरि भगवान का पूजन करे जिनकी सनकादि ऋषिगण स्तुति करते हैं और पाप नाशक ॥१४॥ इस व्रत को आषाढ की में पारायण के दिन विष्णु गायत्री (नारायण विद्महे) इस मन्त्र से हवन करे ॥१६॥ और चैत्रादि मासों में 'सहस्रशीर्षा'

में पारायण के दिन विष्णु गायत्री (नारायण विद्महे) इस मन्त्र से हवन करे ॥१६॥ और चैत्रादि मासों में 'सहस्रशीर्षा' इस पुरुषसूक्त के मन्त्र से हवन करे, पंचामृत, खीर, घृत, पक्क मालपुआ भोग के लिये करावे ॥१७॥ उसे प्रतिमा के सन्मुख निवेदन करे पहिले लक्ष्मीनारायण को स्नान करावे ।१८। बीच में श्रीकृष्ण महाराज की सोने की प्रतिमा दे अन्त में वाराह

द्वितीयायां समापयेत् । अष्टाक्षरेण मंत्रेण जुहुयादनले शुभे ॥१५॥ मार्गशीर्षादिमासानां पारणे भूमिपालकः । जुहुयाद्विष्णुगायत्र्या चैत्रादीनां निबोधय ॥१६॥ पौरुषेण च मंत्रेण जुहुयादनले शुभे । पञ्चामृतं पायसं च अपूपं घृतयाचितम् ॥१७॥ एवं क्रमेण द्रव्याणि प्रतिमासु निवेदय । स्नानं तु प्रथमं दद्याल्लक्ष्मीनारायणस्य च ॥१८॥ सौवर्णीं मध्यमे दद्यात्कृष्णस्य परमात्मनः । राजतीं त्वन्तिमे दद्याद्वाराहस्य महात्मनः ॥१९॥ ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चान्नामभिः केशवादिभिः । वस्त्रयुग्मैरलङ्कारैर्यथावित्तानुसारतः ॥ २० ॥ अर्चयित्वा ततो दद्यादपूपान् घृतपाचितान् । उपायनार्थे विप्रेभ्यो द्वादशेऽह्नि निवेदयेत् ॥ २१ ॥ आचार्याय ततो दद्यात् प्रतिमां पूर्वकल्पि-

जी की चांदी की प्रतिमा दे ॥१९॥ फिर केशवादि नाम से ब्राह्मणों को भोजन करा श्रद्धा अनुसार दो वस्त्र और अलंकारादि से ॥२०॥ पूजन कर घी मालपूवा उपायनार्थ ब्राह्मण के निमित्त बारहवें दिन दे ॥२१॥ फिर पूर्वकल्पित प्रतिमा को सम्पूर्ण अलंकारों से आभूषित कर आचार्य को दे और शय्या का संकल्प करे ।२२। उसके ऊपर लक्ष्मीनारायण का विधिवत् पूजन

करे, कांसे के पात्र दे ॥२३ फिर अपूर्व वस्त्र अलंकार और दक्षिणा सहित किसी उत्तम वैष्णव और कुटुम्बी ब्राह्मण को दे ॥२४॥ ब्राह्मण की विधिवत् पूजा करे और ब्राह्मण भोजन करावे। दान मन्त्र—हे जनार्दन ! जैसे आपकी शय्या लक्ष्मी से अशून्य है वैसे ही हे केशव ! इस शय्यादान से मेरी भी शय्या अशून्य हो इस प्रकार भगवान् की प्रार्थना कर आप भोजन

ताम् । शय्यां संकल्पितां पूर्णां सर्वालङ्कारभूषिताम् ॥२२॥ तस्यामभ्यर्च्य विधिवल्लक्ष्मीनारायणं परम् कांस्यपात्रेण सहितामपूर्वैर्बहुभिस्तथा ॥ २३ ॥ वस्त्रालंकारसहितां दक्षिणाभिस्तथैव च । ब्राह्मणाय विशिष्टाय वैष्णवाय कुटुम्बिने ॥२४॥ दातव्यो विधिवत्पूज्य ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् । दानमन्त्रः—लक्ष्म्या अशून्यशयनं यथा तव जनार्दन ॥२५॥ शय्या ममाप्यशून्या स्याद्दानेन केशव । एवं सम्प्रार्थ्य देवेशं स्वयं भोजनमाचरेत् ॥ २६ ॥ पुरुषो वा सती वापि विधवा वा समाचरेत् । अशून्यशयनार्थं च कर्तव्यं व्रतमुत्तमम् ॥२७॥ एवं तव मयाख्यातं विस्तरान्नृपसत्तम । सुप्रसन्ने जगन्नाथे भवेयुर्विविधाः प्रजाः ॥ २८ ॥ तस्मिंस्तुष्टे तु देवेशे देवानामपि दुर्लभाः । तस्मात्सर्व-

करे ॥२५-२६॥ इस व्रतको पुरुष, सौभाग्यवती स्त्री अथवा विधवा अशून्य शयन के निमित्त धारण करे ॥२७॥ हे राजन् ! [illegible] करने से जगन्नाथ भगवान् प्रसन्न होते हैं भगवान् की [illegible]

करना चाहिये ॥२८॥२९॥ जो मनुष्य विष्णु धाम में जाने की इच्छा करता है उसको इस व्रत को अवश्य करना चाहिये,

करना चाहिये ॥२८॥२९॥ जो मनुष्य विष्णु धाम में जाने की इच्छा करता है उसको इस व्रत को अवश्य करना चाहिये, अब यह सब वर्णन हो गया, अब तुझे और क्या सुनने की इच्छा है वह बता ॥३०॥ यह सुन राजा ने फिर श्रुतदेवजी से पूछा हे महाराज ! वैशाख में छत्रदान करने का क्या महात्म्य है? यह भी मुझे विस्तारपूर्वक बताइये ॥३१॥ क्योंकि वैशाख

प्रयत्नेन व्रतमेतत्समाचरेत् ॥२९॥ अवश्यं गन्तुकामेन तद्विष्णोः परमं पदम् एवमुक्तं मया सर्वं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥३०॥ इत्युक्तस्तेन राजर्षिः पुनरप्याह तं मुनिम् । वैशाखे छत्रदानस्य माहात्म्यं विस्तराद्वद ॥३१॥ शृण्वतोऽपि न तृप्तिर्मे वैशाखोक्ताञ्छुभावहान् । इति तद्वचनं श्रुत्वा यशस्यं पुण्यवर्द्धनम् । प्रत्युवाच महाभागं श्रुतदेवो महायशाः ॥३२॥ श्रुतदेव उवाच ॥ वैशाखे धर्मतप्तानां मानवानां महात्मनाम् ॥३३॥ ये कुर्वन्त्यातपत्राणं तेषां पुण्य मनन्तकम् । अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ ३४ ॥ वैशाखधर्ममुद्दिश्य पुरा कृतयुगे कृतम् । वङ्गदेशे पुरा

के कर्तव्य शुभकर्मों को सुनते मेरी तृप्ति नहीं होती यशवर्धक और पुण्यवर्धक राजा के ऐसे वचन सुन श्रुतदेवजी महाभाग राजा से कहने लगे कि जो कोई धूप से व्याकुल महात्माओं को वैशाख में ॥३२-३३॥ छत्री दान करते हैं उनको अनन्त फल मिलता है यहां मैं एक प्राचीन इतिहास कहता हूं ॥३४॥ यह इतिहास वैशाख में किये छत्रदान की पुष्टि करता है सतयुग में एक हेमकान्त नाम का बंगाल का राजा था ॥३५॥ यह कुशकेतु का पुत्र बड़ा बुद्धिमान् बलवान् था, वह एक दिन शिकार

खेलता हुआ घने वन में चला गया। ॥३६॥ वहाँ अनेक प्रकार से मृग और शूकरों को मारता हुआ बहुत थक गया तो दुपहर को मुनियों के आश्रम में पहुँचा ॥३७॥ उस समय शतर्चि नाम ऋषि व्रत में मग्न समाधि लगाये ध्यान कर रहे थे उनको यह भी मालूम न हुआ कि आश्रम में कौन आया है ॥३८॥ अतः ऋषि ने राजा का उठ कर सम्मान नहीं किया ज्यों के त्यों

वैं० मा० ८८ मा० टी० अ० १

कश्चिद्धेमकान्त इति श्रुतः ॥३५॥ कुशकेतोः सुतो धीमान् राजा शस्त्रभृतां वरः। एकदा मृगया सक्तो गहनं वनमाविशत् ॥३६॥ तत्र नानविधान् हत्वा मृगान् क्रोडादिकान् बहून्। श्रान्तो मध्याह्नवेलायां मुनीनामश्रमं ययौ ॥३७॥ तदा शतर्चिनो नाम ऋषयः शंसितव्रताः। समाधिस्था न जानन्ति बाह्यकृत्यं तु किंचन ॥३८॥ तान् दृष्ट्वा निश्चलान् विप्रान् क्रुद्धो हन्तुं मनो दधे। भूपं निवारयामास शिष्याणामयुतं तदा ॥३९॥ दुर्बुद्धे शृणु नो वाक्यं गुरवस्तु समाधिगाः। ना जानन्ति बहिःकृत्यं तस्मात्क्रोधं न चार्हसि ॥४०॥ ततः शिष्यानुवाचेदं वचनं क्रोधविह्वलः। यूयं कुरुध्वमातिथ्यमध्वश्रान्तस्य मे द्विजाः ॥४१॥ एवमुक्ताश्च भूपेन शिष्या ऊचुस्तदा नृपम्।

निश्चल बैठे रहे यह देख राजा क्रोध करके उन्हें मारने को उद्यत हुआ तब ऋषि के दश सहस्र शिष्यों ने उसे रोका और ॥३९॥ बोले कि हे दुर्बुद्धि! ... हमारे गुरु समाधिस्थ हैं उनको यह मालूम नहीं कि बाहर क्या हो रहा है ... सत्कार करो ॥४१॥ राजा के वचन सुन कर शिष्य बोले हम भिक्षुक बिना गुरु की आज्ञा के क्या कर सकते हैं ॥४२॥ हम तो ...

सत्कार करो ॥४१॥ राजा के वचन सुन कर शिष्य बोले हम भिक्षुक विना गुरु की आज्ञा के क्या करें बताओ ॥४२॥ हम तो गुरु के अधीन हैं क्या आतिथ्य करें। शिष्यों के ऐसे प्रत्युत्तर सुन राजा ने उन्हें मारने के लिये धनुष उठा लिया ॥४३॥ बोला मैंने तुम्हारी दस्यु और पशुओं से अनेक बार रक्षा की है, मुझसे ही तो तुमने प्रतिग्रह लिया है और मुझेही शिक्षा देते

बै० मा०

नाज्ञप्ता गुरुभिर्भूप वयं भिक्षाशिनः कथम् ॥४२॥ गुरुतन्त्राः कथं कर्तुमातिथ्यं न वयं क्षमाः। प्रत्याख्यातो नृपः शिष्यैस्तान् हन्तुं धनुराददे ॥४३॥ मृगदस्युभयादिभ्यो बहुधा रक्षिता मया। ते मामेवोपशिक्षन्ति मया दत्तप्रतिग्रहाः ॥४४॥ एते मां न विजानन्ति कृतघ्ना भूरिमानिनः। घ्नतोऽपि मे न दोषः स्यादेतान् वै ह्याततायिनः ॥ ४५ ॥ एवं विक्रुद्धमानः सञ्छरान्मुञ्चन् शरासनात्। तान् विद्रुतानुद्रुत्य जघ्ने शिष्यशतत्रयम् ॥४६॥ दुद्रुवुर्भयतःसर्वे विहायाश्रममञ्जसा। विद्रावितेषु शिष्येषु बलादाश्रमसंस्थितान् ॥ ४७ ॥ संभाराञ्जगृहुः शीघ्रं सैनिकाः पापबुद्धयः।

टी० मा० ८६ अ० १०

हो ॥४४॥ ये महा कृतघ्नी अपने को बहुत बड़ा मानते हुए भूलगये हैं, ये बड़े आततायी हैं इनके मारने में कुछ दोष नहीं ॥४५॥ इस प्रकार अत्यन्त क्रोधकर धनुष से बाण छोड़ने लगा, तो वे भागने लगे उन्हें रोककर राजा ने उनमें से तीनसौ शिष्य मार डाले ॥४६॥ तो डरके मारे शेष सभी शिष्य आश्रम छोड़ छोड़कर भाग गये जब सब शिष्य भाग गये तब आश्रम में रखी हुई वस्तुओं को ।४७। पाप बुद्धि सैनिकों ने उन सब वस्तुओं को ले लिया और सबने खूब भोजन किया इसमें

राजा का भी अनुमोदन था ॥४८॥ फिर सांयकाल के समय राजा सब सेना को सङ्ग ले पुरी में आया, तब कुशकेतु ने अपने बेटे के दुष्ट व्यहार को सुनकर ॥४६॥ बेटेकी बहुत निन्दा करके उसे पुरसे बाहर निकाल दिया । हे राजन्! क्षमाही पुरुष देश के शासन के योग्य नहीं होता है ॥५०॥ जब पिता ने उसे त्याग दिया तब राजा हेमकान्त व्याकुल होकर गहन वनमें

यथेष्टं भोजनं चक्रुर्नृपेणैवानुमोदिताः ॥ ४८ ॥ ततः सेनावृतो राजा पुरीमागाद्दिनात्यये । कुशकेतुस्ततः श्रुत्वा तनयस्य विचेष्टितम् ॥ ४६ ॥ पुरान्निर्यातयामास गर्हयन् गर्हयन् सुतम् । राज्यानार्हं क्षमाहीनं स्वदेशादपि भूमिप ॥५०॥ पित्रा त्यक्तस्ततो राजा हेमकान्तोऽतिविह्वलः । वनं विवेश गहनं हत्याभिश्च सुपीडितः ॥५१॥ बहुकालमवासीच्च गह्वरे निर्जने वने । आहारं कल्पयामास व्याधधर्ममुपाश्रितः ॥५२॥ न क्वापि स्थितिमापेदे हत्ययाभिद्रुतो भृशम् । अष्टाविंशतिवर्षाणि गतान्यस्य दुरात्मनः ॥ ५३ ॥ तीर्थयात्राप्रसंगेन त्रितो नाम महामुनिः । तस्मिन्नरण्ये

चला गया वहां उसे ब्राह्मणों की हत्या सताने लगी ॥५१॥ उस गहन निर्जन वनमें बहुत काल पर्य्यन्त वास करता रहा और जीव जन्तुओं को मार मार कर पेट भरने लगा ॥५२॥ उन हत्याओं के पापसे उसकी कहीं भी स्थिति न हुई जहाँ-तहां मारा मारा फिरने लगा इस प्रकार [illegible] तीर्थयात्रा करते करते त्रित [illegible]
कहीं वृक्षविहीन स्थान में वह आप मूर्छित होकर गिर पड़े [illegible]

जीव जन्तुओं को मार मार कर पेट भरने लगा ॥५२॥ उन हत्याओं के पापसे उसकी कहीं भी स्थिति न हुई जहां-तहां मारा [illegible]

कहीं वृक्षविहीन स्थान में वह ऋषि मूर्छित होकर गिर पड़े ॥५५॥ [illegible] अधम राजकुमार के हृदय में तृषार्त,मूर्छित और थके हुए ऋषिको देखकर दया उत्पन्न होगई ॥५६॥ उनके ढाक के पत्तों की छत्री बना धूप निवारण करने के लिये मुनीश्वर के शिरपर लगाई और अलम्बुका जल दिया ॥५७॥ इस उपचार से मुनीश्वर

वैशाखे रवौ मध्यंदिने गते ॥५४॥ गच्छन्नातपविक्लान्तस्तृषया चातिपीडितः । कच्चिद्वृक्षविहीने तु प्रदेशे मूर्छितोऽभवत् ॥ ५५ ॥ दैवाद्दृष्ट्वा हेमकान्तस्त्रितं नाम महामुनिम् । तृषार्तं मूर्छितं श्रान्तं कृपां चक्रे नृपाधमः ॥५६॥ ब्रह्मपत्रस्तदा छत्रं कृत्वा चातपवारणम् । मुनेर्जग्राह शिरसि ह्यलाबुस्थं जलं ददौ ॥५७॥ लब्धसंज्ञोऽभवत्तेन ह्युपचारेण वै मुनिः पत्रच्छत्रं चत्रदत्तं गृहीत्वा गतविक्लमः ॥५८॥ ग्रामं कञ्चिच्छनैः प्राप्य किंचिदाप्यायितेन्द्रियः । तेन पुण्यप्रभावेण ब्रह्महत्या-शतत्रयम् ॥५९॥ विनष्टमभवत्तस्य क्षणादेव महात्मनः । ततो विस्मयमापन्नो हेमकान्तो महारथः ॥६०॥ बहुधा पीड्यमानस्य ब्रह्महत्याः कथं गताः । केनापि निष्कृता ह्येताः क्व गताः केन

की मूर्छा जाती रही,और चेतकर सावधान हो क्षत्रीके दिये हुए उस पत्तों के छत्रको लेकर ॥५८॥ इन्द्रियों में बल आजाने से धीरे २ किसी गांवमें पहुंचे इसी पुण्य के प्रभाव से उनकी तीनसौ ब्रह्महत्यायें ॥५९॥ क्षणभर में दूर होगई तो हेमकान्त को बड़ा विस्मय हुआ ॥६०॥ जो बहुधा प्राणियों को कष्ट देता था उसकी ब्रह्महत्या कैसे दूर होगई, किसने दूर करदी,कहां गई

और इसका क्या हेतु है ।।६१।। इस प्रकार ब्रह्महत्याओं से मुक्त होनेकी चिंता करने लगा । जब राजा इसी अज्ञान में पड़ा था तब उस वनवासी महात्मा हेमकान्त को लेने यमके दूत आये और उसका प्राण नष्ट करने के लिये संग्रहणी रोग उत्पन्न किया ।।६२।।६३।। जब वह प्राणों के वियोग में व्याकुल हुआ तब उसे तीन पुरुष दिखाई देने लगे, बड़े २ भयंकर यमदूत जिनके

हेतुना ।।६१।। इत्येवं चिन्तयामास ब्रह्महत्याविमोचनम् । एवं चाज्ञस्थिते राज्ञि यमदूता अथागमनम् ।।६२।। नेतुमेनं महात्मानं हेमकान्तं वने स्थितम् । ग्रहणीं जनयामासुः प्राणान् हर्तुं महात्मनः ।।६३।। तथा प्राणवियोगार्तः पुरुषांस्त्रीन् ददर्श ह । यमदूतान् महाघोरानूर्ध्वकेशान् भयङ्करान् ।।६४।। चिन्तयानः स्वकर्माणि तूष्णीमासीत्तदा नृपः । छत्रदानप्रभावेण जाता विष्णुस्मृतिर्नृप ।।६५।। तेन स्मृतो महाविष्णुर्विष्वक्सेनंस्वमन्त्रिणम् । उवाचतूर्णं त्वं गच्छ यमदूतान्निवारय ।।६६।। वैशाखधर्मनिरतं हेमकान्तं तु पालय । निष्पापमेनं मद्भक्तं पित्रे देहि पुरं गतः ।।६७।। मदीरिते

सिरपर बाल ऊँचे खड़े थे राजाको डराने लगे ।६४। तब अपने कर्मों को सोचता हुआ राजा मौन साधगया तब उसी छत्रदान के प्रभाव से वह विष्णुभगवान का स्मरण करने लगा ।६५। तो विष्णुभगवान ने अपने महामन्त्री विष्वक्सेन को आज्ञा दी कि तुम जल्दी जाकर यमदूतों को रोको ।६६। और वैशाख मासके धर्म में लगे हुये हेमकान्त की रक्षा करो, वह निष्पाप है,

...से यह विष्णुभगवान का स्मरण करने लगा। देखो तो विष्णुभगवान ने अपने महामन्त्री विष्वक्सेन को आज्ञा दी
कि तुम जल्दी जाकर यमदूतों को रोको ।६६। और वैशाख मासके धर्म में लगे हुये हेमकान्त की रक्षा करो, यह निष्पाप है

ब्रह्मचर्यादि से रहित है ।६७-६८। परन्तु वैशाख के धर्ममें निरत होने से मेरा प्यारा है, इसमें संशय नहीं, तेरे पुत्रने बड़े २ पाप किये हैं परन्तु उसने धूपसे व्याकुल मुनि की रक्षा की है ।६९। अतः वैशाख में छत्रीदान करने से यह निस्सन्देह निष्पाप हो गया है, तथा उसी पुण्यके प्रभाव से यह शान्त, जितेन्द्रिय और चिरंजीव होगया ॥७०॥ अब शूरता उदारता आदि गुणों में

वाक्येन कुशकेतुं च बोधय । सर्वधर्मोज्झितो वापि ब्रह्मचर्यादिवर्जितः ॥६८॥ वैशाखधर्मनिरतो मत्प्रियः स्यान्न संशयः । कृतागाश्चापि त्वत्पुत्रो मुनित्राणपरायणः ॥ ६९ ॥ वैशाखे छत्रदानेन निष्पापो नात्र संशयः । तेन पुण्यप्रभावेण शान्तो दान्तश्चिरायुषः ॥७०॥ शौर्यौदार्यगुणोपेतस्त्वत्समोऽगं गुणैरपि । तस्मादेनं राज्यभारे संस्थापयं महाबलम् ॥ ७१ ॥ विष्णुनैवं समाज्ञप्त मित्यादिश्य नृपोत्तमम् । पितुर्वंशे हेमकान्तं स्थाप्यायाहि च मां पुनः ॥ ७२ ॥ इत्यादिष्टो भगवता विष्वक्सेनो महाबलः । हेमकान्तं समासाद्य यमदूतान्निवार्य च ॥ ७३ ॥ पाणिना शन्तमेनैव

तेरे समान होगया है अतएव तू इसे राज्य का भार सौंप दे यह बलवान् है ॥७१॥ कुशकेतु राजा से यह भी कहना कि यह विष्णुभगवान की आज्ञा है राजा को इस प्रकार समझा बुझा हेमकान्त को पिता के पास पहुँचा कर मेरे पास आजाओ ।७२। भगवान् की ऐसी आज्ञा पा महाबलि विष्वक्सेन यमदूतों को भगाकर हेमकान्त के पास पहुंचा ।७३। और उसके शरीर को हाथ से स्पर्श किया, भगवान् के पार्षद के स्पर्श करते ही उसकी सब व्याधि तत्काल दूर होगई ।७४। फिर विष्वक्सेन

हेमकान्त को अपने सङ्ग ले नगर को गया, जिसे देखकर कुशकेतु को बड़ा आश्चर्य हुआ। ॥७५॥ और भक्तिपूर्वक शिर झुका पृथ्वी में गिर दंडवत् कर भगवान् के पार्षदको घरके भीतर ले गया ॥७६॥ तथा अनेक प्रकार के स्तोत्रों से स्तुति कर अनेक उपचारों से पूजन किया, तब विष्वक्सेन प्रसन्न हो बोला ॥७७॥ हेमकान्त को आगेकर जो जो बात विष्णुभगवान् ने कही थीं

वै० पस्पर्शाङ्गेषु भूमिपम् । भगवद्भक्तसंस्पर्शाद्गतव्याधिः क्षणादभूत् ॥७४॥ विष्वक्सेनस्ततस्तेन सह तस्य पुरीं ययौ । तं दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा कुशकेतुर्महाप्रभुः ॥७५॥ ननाम शिरसा भक्त्या दण्डवत् मा० पतितो भुवि । गृहं प्रवेशयामास पार्षदं परमात्मनः ॥७६॥ स्तुत्वा च विविधैः स्तोत्रैः पूजयामास वैभवैः ॥ तस्मै प्रीतमनाः प्राह विष्वक्सेनो महाबलः ॥७७॥ हेमकान्तं समुद्दिश्य यदुक्तं विष्णुना पुरा । तच्छ्रुत्वा कुशकेतुश्च पुत्रं राज्ये निवेश्य च ॥७८॥ विष्वक्सेनाभ्यनुज्ञातः सभार्यो वनमा- ६४ विशत् । विष्वक्सेनो हेमकान्तमनुमंत्र्याभिपूज्य च ॥७९॥ श्वेतद्वीपं ययौ धीमान् विष्णुपार्श्वे महामनाः । हेमकान्तस्ततो राजा वंशाखोक्ताऽच्छुभावहान् ॥८०॥ विष्णुप्रीतिकरान् धर्मान् प्रतिवर्षं

मा० टी० अ० १०

वह सभी उससे कही जिनको सुनकर कुशकेतु ने पुत्रको सिंहासन पर बैठा दिया ॥७८॥ और स्वयं विष्क्सेन की आज्ञा के अनुसार स्त्री सहित तप करने वनमें चला गया और विष्वक्सेन हेमकान्त को समझा कर तथा धन्यवाद देकर ॥७९॥ विष्णु-

दांत, जितेन्द्रिय ॥८१॥ सब जीवोंपर दयालु, यज्ञोंमें दीक्षित, सर्व संपत्तियों से युक्त, पुत्रपौत्रादि से संपन्न हुआ। फिर संपूर्ण भोगोंको भोगकर विष्णुलोक को गया ॥८२॥ वैशाख मासके धर्मों से अधिक कोई धर्म पापरूप इंधन को जलाने के लिये

चकार ह । ब्रह्मण्यो धर्ममार्गस्थः शान्तो दान्तो जितेन्द्रियः ॥८१॥ दयालुः सर्वभूतेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । प्रवृद्धः सर्वसंपद्भिःपुत्रपौत्रादिभिर्वृतः । भुक्त्वा भोगान्समस्तांश्च विष्णुलोकमवाप्तवान् ॥८२॥ नेच्चेतु वैशाखसमांश्च धर्मान् सुखप्रयत्नान् बहुपुण्यहेतून् पापेन्धनाद्यग्निनिभान्सुलभ्यान् धर्मादिमोक्षान्तपुमर्थहेतून् ॥८३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे छत्रदानप्रशंसने हेमकान्तस्य ब्रह्महत्यादिपापशमनं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

॥ मैथिल उवाच ॥ वैशाखधर्माः सुलभाः पुण्यराशिविधायकाः । विष्णुप्रीतिकराः सद्यः

अग्नि के समान नहीं हैं यह सुलभ तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूप पुरुषार्थ चतुष्टयका दाता है ॥८३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे छत्रदानप्रशंसने हेमकांतस्य ब्रह्महत्यादिपापशमनं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

फिर राजा मैथिल पूछने लगा, हे महाराज ! वैशाखके धर्म आपने जो वर्णन कियेहैं वे बड़े सुलभहैं और अनेक पुण्यों के दाताहैं जिनसे विष्णुभगवान् प्रसन्न होजातेहैं और तत्काल अर्थ, धर्म, काम मोक्ष प्रदान करते हैं ॥१॥ ऐसे वेदअनुकूल

धर्म सन्सार में ज्ञात नहींहै राजसधर्म और तामसधर्म तो अनेक प्रकार के प्रख्यात हैं ॥२॥ जो बड़े कष्ट साध्य हैं, जिनमें बहुत प्रयत्न करना पड़ताहै और धनभी बहुत लगाना पड़ताहै कोई माघमास की प्रशंसा करते हैं, कोई चातुर्मास्य को उत्तम कहते हैं ॥३॥ कोई २ व्यतीपातादि धर्मकी प्रशंसा करते हैं हे प्रभो ! यह क्या बात है मुझसे विस्तार पूर्वक कहिये ॥४॥

पुमर्थानां तु हेतवः ॥१॥ न प्रख्याताः कथं लोके शाश्वताः श्रुतिचोदिताः । प्रख्याता राजसा धर्मास्तामसा अपि भूरिशः ॥२॥ दुर्घटा बहुयत्नाश्च बहुद्रव्यव्ययावहाः । केचिन्माघं प्रशंसन्ति चातुर्मास्यान् परे जगुः ॥३॥ व्यतीपातादिधर्मांश्च वर्णयन्तीह भूरिशः एतद्विवेकं विस्तार्य श्रोतु-कामाय मे वद ॥४॥ श्रुतदेव उवाच ॥ शृणु भूप प्रवक्ष्यामि न प्रख्याता इमे कथम् । इतरेषां च धर्माणि कथंख्यातिश्च भूतले ॥५॥ राजसास्तामसा भूमौ बहवः कामुका जनाः । इच्छन्त्यैहिकभो-गांस्ते पुत्रपौत्रादिसंपदः ॥६॥ कश्चित्कथंचन क्वापि जनेष्वेकोऽतिकृच्छ्रतः । स्वर्गाय यतते लोके

श्रुतदेव बोली-हे राजन् ! वैशाखके कर्त्तव्य धर्म प्रख्यात क्यों नहींहै यह मैं तुम्हें बताता हूँ । और अन्य धर्मोंकी सन्सार में ख्याति क्योंहै ॥५॥ सन्सार में रजोगुणी और तमोगुणी मनुष्य बहुत हैं जो संसार के भोगोंकी रातदिन इच्छा करते हैं और [illegible]
आशा कर अपने अभीष्ट कार्योंकी सिद्धि चाहते हैं [illegible] इसी लिये राजस और तामस धर्म सन्सार में प्रख्यातहै और जो

ख्याति क्योंहै ॥५॥ संसार में रजोगुणी और तमोगुणी मनुष्य बहुत हैं जो संसार के भोगोंकी रातदिन इच्छा करते हैं और

आशा कर अपने अभीष्ट कार्योंकी सिद्धि चाहते हैं ॥८॥ इसी लिये राजस और तामस धर्म सन्सार में प्रख्यात हैं और जो भगवान को प्रसन्न करने वाले सात्त्विक धर्म हैं,वे प्रसिद्ध नहीं ।९। ये धर्म इच्छा रहित हैं इनसे लौकिक और पारलौकिक सुखकी प्राप्ति होती है, भगवत् मायासे घिरे हुए मूढ़ बुद्धि वाले जीव इन्हें नहीं जानते ॥१०॥ जैसे आधिपत्य के प्राप्त होनेपर

तस्माद्यज्ञादिसत्क्रियाः ॥७॥ कुरुते प्रिययत्नेन मोक्षं नोपासते नरः । क्षुद्राशा भूरिकर्माणो जनाः काम्यानुपासते ॥८॥ प्रख्याता राजसा धर्मास्तामसा अपि तेन व । न ख्याताः सात्त्विका धर्मा हरिप्रीतिकरा इमे ॥ ९ ॥ निष्कामिका इमे धर्मा ऐहिकामुष्मिकप्रदाः । न जनन्ति जना मूढा मोहिता देवमायया ॥ १० ॥ यथाधिपत्ये संप्राप्ते सर्वः सिद्धो मनोरथः । मोहनार्थं स्थलं प्राप्तमाधिपत्यं न हीयते ॥ ११ ॥ कारणं च प्रवक्ष्यामि गोपने भूतलेऽञ्जसा । यद्वैशाखोक्त धर्माणां सात्त्विकानां नृणामिह ॥ १२ ॥ सार्वभौमः पुरा काश्यामिक्ष्वाकुकुलभूषणः । कीर्तिमानिति विख्यातो नृगपुत्रो महायशाः ॥ १३ ॥ जितेन्द्रियो

सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होताहै और मोहनार्थ स्थलमें प्राप्त हुआ आधिपत्य नष्ट नहीं होताहै ॥११॥ इसका कारण बताता हूँ यह पृथ्वी पर छिपाने योग्य है,यही वैशाख के कहे धर्मों में सतोगुणी मनुष्यों का धर्म है ॥१२॥ इक्ष्वाकु के कुलका भूषण काशीपुरी में नृग पुत्र सार्वभौम बड़ा यशस्वी कीर्तिमान नामका हुआ ॥१३॥ यह जितेन्द्रिय,क्रोध को जीतने वाला,ब्रह्मण्य

और राजाओं में उत्तम था एक दिन आखेट करता हुआ वशिष्ठजी के आश्रम में जा पहुँचा ॥१४॥ मार्गमें उस राजाने महात्मा वशिष्ठजी के शिष्यों को देखा जो वैशाख के धर्मोंके करने में वारंवार लगे हुये थे ॥१५॥ कहीं प्याऊ लगा रहेहैं कहीं छाया मंडप बनवा रहेहैं कहीं वापी निर्मल करवा रहे हैं ॥१६॥ कहीं सुख पूर्वक बैठे लोगों को पंखों से पवन कर रहे हैं,कहीं

जितक्रोधो ब्रह्मण्यो राजसत्तमः । एकदा मृगयासक्तो वसिष्ठाश्रममाययौ ॥ १४ ॥ गच्छन्मार्गे ददर्शासौ वैशाखे धर्मनिष्ठुरे । भूयो भूयः कार्यमाणाञ्छिष्यैस्तस्य महात्मनः ॥१५॥ क्वचित्प्रपां प्रकुर्वन्ति छायामण्डपमेव च । तटप्रपातं निस्तीर्य वापीं कुर्वन्ति निर्मलाम् ॥१६॥ सूपविष्टान् क्वचिद्वृक्षे व्यजनैर्वीजयन्ति च । क्वद्दुर्हीक्षुदण्डान् क्वचिद्गन्धान् क्वचित्फलम् ॥ १७ ॥ मध्याह्ने छत्रदानं च सायाह्ने पानकस्य च । क्वचिद् यच्छन्ति तांबूलं नेत्रे कर्पूरलेपनम् ॥ १८ ॥ सुच्छाये च वने केचित्सुसंमृष्टाङ्गणेषु च । केचिदास्तरयन्त्यद्धा वालुकानि हितानि च ॥१६॥ कुर्वन्त्यान्दोलिका राजन् वृक्षशाखावलम्बिनीम् । के यूयमिति प्रपच्छ वासिष्ठा इति तेऽब्रुवन् ॥ २० ॥

सुगंधित द्रव्य और सुन्दर फलों को देरहेहैं ॥१७॥ मध्याह्नके समय छत्री दान करतेहैं सांयकाल के समय पानी के द्रव्य देते

हैं ॥२०॥ यह क्या कर रहे हो वे बोले हम वैशाख में कर्तव्य धर्मों को करहे हैं,ऐसा करने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष

सुगंधित द्रव्य और सुन्दर फलों को देरहे हैं ॥१७॥ मध्याह्नके समय छत्री दान करते हैं सायंकाल के समय पानी के द्रव्य देते

हैं ॥२०॥ यह क्या कर रहे हो वे बोले हम वैशाख में कर्त्तव्य धर्मों को करहैं,ऐसा करने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष मिलती है ॥२१॥ यह सब हम वशिष्ठजी की आज्ञा से कर रहेहैं ऐसा जब राजासे कहा तब राजाने फिर पूछा इन धर्मों के करने से क्या फल मिलता है और कौनसे देवता प्रसन्न होते हैं ॥२२॥ जैसा आपने सुना हो वह सब कहो यह सुन वे राजासे

किमेतदिति पप्रच्छ धर्मा वैशाखचोदिताः । पुमर्थहेतव इमे क्रियन्तेऽस्माभिरञ्जसा ॥२१॥ वशिष्ठस्याज्ञया चेति तेऽब्रुवन्नृपसत्तमम् । एददाचरणे पुंसां किं फलं कस्तु तुष्यति ॥२२॥ एतद्विस्तार्य मे ब्रूत यूयं सम्यग्यथाश्रुतम् । इति राज्ञा तु संपृष्टाः प्रत्यूचुस्ते महीपतिम् ॥२३॥ गुरोराज्ञाक्रमेणैव कुर्वतां पथि सत्क्रियाः । नास्माकमवकाशोऽत्र गुरुं पृच्छ यथोचितम् ॥२४॥ स वेत्ति तत्त्वतो नूनं धर्मानेतान्महायशाः । इति शिष्यैर्वसिष्ठस्य प्रत्युक्तस्तु द्रुतं ययौ ॥२५॥ वसिष्ठस्याश्रमं पुण्यं विद्यायोगोपबृंहितम् । समायान्तं नृपं वीक्ष्य वसिष्ठः प्रीतमानसः ॥ २६ ॥ आतिथ्यं विधिवच्चक्रे

कहने लगे ॥२३॥ हे राजन् ! हम अपने गुरुकी आज्ञा से मार्गमें इन सत्कर्मों के करने में प्रवृत्त हो रहेहैं हमें इतना अवकाश नहीं कि तुमसे सब बातें कहें । तुम गुरुके पास जाकर पूछो ॥२४॥ वह महायशस्वी इन सम्पूर्ण धर्मों के तत्त्वको जानते हैं, वशिष्ठके शिष्यों की यह बात सुन राजा वहांसे तत्काल चल दिया ॥२५॥ वशिष्ठजी का आश्रम पुण्यरूपी विद्या और योग का स्थान था । राजा को अपने आश्रम में आया देख वशिष्ठजी बड़े प्रसन्न हुए ॥२६॥ और सहचरों समेत महात्मा का

अतिथि सत्कार किया जब वह भली भांति बैठ गया तब अत्यन्त प्रफुल्लित चित्त से गुरुसे पूछने लगा ।२७। हे गुरो ! मैंने मार्ग में बड़ा आश्चर्य देखा कि, आपके शिष्य बड़े शुभ कर्मों के करने में लग रहे हैं परन्तु मैंने पूछा कि तुम क्या कर रहे हो तब मुझको नहीं बतलाया और कहने लगे ॥२८॥ हमको इस धर्मकी प्रशंसा करने का अवकाश नहीं हमें तो जैसे गुरुने

वै०

सानुगस्य महात्मनः । सूपविष्टः कृतातिथ्यः प्रीतः प्रपच्छ तं गुरुम् ॥ २७ ॥ राजोवाच ॥ मार्गे दृष्टं महाश्चर्यं त्वच्छिष्यैश्च कृतं शुभम् ॥ मया पृष्टं च तैर्नोक्तं क्रियमाणं शुभावहम् ॥२८॥ नास्माकमवकाशोऽत्र ह्येतद्धर्मप्रशंसने । कर्तव्या च क्रियास्माभिर्गुरुणा या च चोदिता ॥२९॥ गुरुं गच्छेति तैरुक्त आगतोऽहं तवान्तिकम् । मृगयासक्तचित्तेन श्रान्तेनातिथ्यमिच्छता ॥३०॥ दृष्टं मार्गे त्विदं पुण्यं तव शिष्यैश्च कारितम् । जिज्ञासासात्ततः श्रोतुं धर्मानेतान्मुनीश्वर ॥ ३१ ॥ त्वमादिरादिमान् धर्मान् समाचरसि वै यतः । तान् धर्माञ्छ्रोतुकामाय शिष्याय प्रणताय च ॥३२॥

मा०

१००

भा०

टी०

अ०

११

बताया है उस धर्म के करने में प्रवृत्त हो रहे हैं ॥२९॥ गुरुके पास जाओ, इसलिये मैं आपके पास आया हूँ, मेरा मन आखेट में था शरीर थक गया था मैं आतिथ्य की इच्छा से आरहा था ।३०। तो मार्गमें मैंने आपके शिष्यों को यह पुण्य कर्म करते

हे मुनिवर ! बड़ी श्रद्धा है आप मेरे सामने विस्तार पूर्वक कहिये ऐसा इक्ष्वाकुवंश भूषण राजा ने पूछा ॥३३॥ वशिष्ठजी बड़े

हे मुनिवर ! बड़ी श्रद्धा है आप मेरे सामने विस्तार पूर्वक कहिये ऐसा इक्ष्वाकुवंश भूषण राजा ने पूछा ॥३३॥ वशिष्ठजी बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे हे राजा ! तेरी बुद्धि बड़ी सुन्दर और सुशिक्षित है ॥३४॥ जो विष्णुभगवान की कथा में और धर्मों के आचरण करने में ऐसी सद्भाव से प्रवृत्ति हुई है ये तेरे पुण्य फलीभूत होगये हैं ॥३५॥ ऐसा कह हर्ष युक्त वशिष्ठजी

श्रद्दधानाय मे ब्रूहि विस्तरान्मुनिपुङ्गव । इतीक्ष्वाकुकुलीनेन राज्ञा पृष्टो महायशाः ॥३३॥ मनसा तोषमापेदे सम्यक् पृष्टोऽधुना मुनिः । अहो व्यवसिता बुद्धी राजंस्तेद्य सुशिक्षिता ॥३४॥ यस्माद्विष्णुकथायां च तद्धर्माचरणेऽपि च । मतिरात्यन्तिकी जाता सुकृतं फलितं तव ॥३५॥ इति सम्भाष्य राजनं जातहर्षस्तमब्रवीत् । शृणु भूप प्रवक्ष्यामि यत्पृष्टोऽहं त्वयाधुना ॥३६॥ यस्य श्रवणमात्रेण मुच्यते सर्वकिल्विषैः । सर्वधर्मान् परित्यज्य वर्तते विषयात्मः ॥३७॥ वैशाखस्नाननिरतः स प्रियो मधुविद्विषः । साङ्गान् धर्माननुष्ठाय वैशाखो येन नादृतः ॥३८॥ स्नानदानार्चनैः

राजा से कहने लगे हे राजन् ! जो प्रश्न तुमने किया है उसका अब हम वर्णन करते हैं ॥३६॥ इसके सुनने से ही सब पाप दूर हो जाते हैं, जो सब धर्मोंको छोड़ विषयासक्त हो जाता है वह भी ॥३७॥ यदि वैशाख में प्रातःकाल स्नान करे तो वह मधुसूदन भगवान का प्यारा हो जाता है, जिसने सांगोपांग सब धर्म किये परन्तु वैशाख का अनादर किया है ॥३८॥ वह प्राणी चाहे कैसा ही स्नान, दान, अर्चन और पुण्य करे हरि भगवान उससे दूरही रहते हैं जिसने वैशाख को विना स्नान

या दान दिये खो दिया ॥३६॥ वह इसी कर्म से चांडाल होता है इसमें कुछ भी विचार नहीं, वैशाख में बताये सर्वोत्कृष्ट धर्म
द्वारा जिसने हरि भगवान् का आराधन किया है ॥४०॥ भगवान् उसीसे प्रसन्न होते हैं और उसकी अभिलाषा पूर्ण करते हैं
लक्ष्मीपति जगन्नाथ सम्पूर्ण पापों के नाश करने वाले ॥४१॥ थोड़े ही धर्म से प्रसन्न हो जाते हैं बहुत परिश्रम और धनसे

पुण्यैस्तस्य दूरतरो हरिः । अस्नात्वा चाप्यदत्त्वा च वैशाखो येन नीयते ॥ ३६ ॥ कर्मणा स तु चाण्डालो नात्र कार्या विचारणा । वैशाखोक्तैर्महाधर्मैर्येन चाराधितो हरिः ॥४०॥ तैश्च तोषं समायाति प्रददाति समीहितम् । लक्ष्मीभर्त्ता जगन्नाथो ह्यशेषाघौघनाशनः ॥४१॥ धर्मैः सूक्ष्मैश्च प्रीणाति न प्रयासैर्धनैरपि । भक्त्या संपूजितो विष्णुः प्रददाति समीहितम् ॥ ४२ ॥ तस्माद्राजन् सदा भक्तिः कर्तव्या मधुविद्विषः । जलेनापि जगन्नाथः पूजितः क्लेशहा हरिः ॥४३॥ परितोषं व्रजत्याशु तृषार्तः सलिलैर्यथा । महदप्यल्पदं कर्म तथा ह्यल्पादि भूरिदम् ॥४४॥ कर्मणो भूरिहे तु त्वे

नहीं होते भक्ति पूर्वक विष्णुभगवान का पूजन सब कामनाओं को पूर्ण करता है ॥४२॥ हे राजन्! इसलिये मधुसूदन भगवान
में सदा भक्ति करनी चाहिये जगन्नाथ भगवान् की जलसे पूजा करने पर भी क्लेशहारी हरि ॥४३॥ ऐसे प्रसन्न होते हैं जैसे
...नहीं महत है ।४५। वैशाख में जो धर्म कहे हैं उनमें परिश्रम भी थोड़ा होता है और द्रव्य भी बहुत व्यय नहीं होता है ।४६।

बड़ी गहन है ।४५। वैशाख में जो धर्म कहे हैं उनमें परिश्रम भी थोड़ा होता है और द्रव्य भी बहुत व्यय नहीं होता है ।४६।
परन्तु विष्णुभगवान के प्रसन्न करने का सुगम उपाय है ॥४७॥ अतएव हे राजन् ! तुम जो वैशाख के धर्मोंको न करे उसे
दंड दो ॥४८॥ इस प्रकार सब शास्त्रोक्त बातें बताकर पीछे वैशाखोक्त सब धर्म समझा दिये ॥४९॥ सब धर्मों को सुनकर

न हेतुर्महदल्पके । किंतु कर्मस्वरूपं च गहना कर्मणो गतिः ॥४५॥ वैशाखोक्ता इमे धर्माः स्वल्पा-
यासकृता अपि । बहुव्ययविहीनश्च विष्णोः प्रीयिकराः शुभाः ॥ ४६ ॥ तस्मात्त्वमपि भूपाल
वैशाखोक्तान् समाचार । स्वद्राष्ट्रीयैर्जनैः सर्वैः कारयेमान् शुभावहान् ॥४७॥ न करोति च यो
धर्मान् वैशाखोक्तान्नराधमः । बहुधा शिक्ष्यमाणोऽपि स दण्ड्यस्तव भूपते ॥४८॥ इत्यावश्यकतां
सम्यक् शास्त्रे व्युत्पाद्य तस्य च । पश्चाद्वैशाखनिर्दिष्टान् धर्मान् प्रोवाच सर्वशः ॥ ४९ ॥ श्रुत्वा
तान् सकलान् धर्मान् गुरुं संपूज्य भक्तितः । स राजा गृहमागत्य सर्वान्धर्मांश्चकार ह ॥५०॥
भक्तिमान् केशवे राजन् देवदेव निरञ्जने । नान्यं पश्यति देवेशात् पद्मनाभान्महीपतिः ॥५१॥

गुरुकी भक्ती पूर्वक पूजाकर राजा अपने घर चला आया और सभी धर्म करने लगा ॥५०॥ देव देव निरंजन केशव भगवान
में बड़ी प्रीति करने लगा और पद्मनाभ देव देव भगवान के अतिरिक्त किसी को भी न देखता ॥५१॥ फिर राजा ने हाथी पर
ढोल रखवाकर अपने राज्य भरमें सूचना करादी कि आठ वर्षसे अस्सी वर्षकी अवस्था के वृद्धतक ॥५२॥ जो कोई मेषको

संक्रांति में सूर्योदय से पहिले स्नान न करेगा उसे मैं दंड दूंगा, और देशसे निकाल दूंगा ।।५३।। पिता, पुत्र भार्या या इष्ट मित्र कोई भी हो जो वैशाखोक्त धर्मों का संपादन न करेगा उसको मैं चोर के समान समझूंगा ।।५४।। प्रातःकाल सुन्दर जलमें स्नानकर श्रेष्ठ ब्राह्मणो को दान दो और शक्ति के अनुसार प्याऊ लगाओ तथा अन्य धर्मों को करो ।।५५।। गांव२

भेरीमुद्घाह्य मतांगे स्वराष्ट्रेऽघोषयद्भटैः । अष्टवर्षाधिका मर्त्या ह्यशीतिर्न हि यूर्यते ।।५२।। प्रातर्न स्नाति मेषस्थे सूर्ये सर्वोऽपि यो जनः स मे दण्डयश्च निर्यास्यो विषायादध्रुवम् ।।५३।। पिता वा यदि वा पुत्रो भार्या वाथ सुहृज्जनः । वैशाखधर्महीनश्च निग्राह्यो दस्युवन्मया ।।५४।। दातव्यं विप्रमुख्येभ्यः स्नात्वा प्रातर्जले शुभे । प्रपादानादिधर्मांश्च कुरुध्वं शक्तितोऽनघाः ।।५५।। विप्रं च धर्मवक्तारं ग्रामे ग्रामे न्यवेशयत् । पञ्चानामपि ग्रामाणामकरोदधिकारिणम् ।। ५६ ।। दण्डार्थं त्यक्तधर्माणां दशवाजिनिषेवितम् । एवं प्रवृत्तः सर्वत्र सार्वभौमस्य शासनात् ।।५७।। प्रवृद्धो धर्मवृत्तोऽयं सर्वदेशेषु विस्तरात् । ये केचिन्निधनं यान्ति भूपालविषये नराः ।।५८।। प्रसादाच्च नृपश्रेष्ठ

में एक एक धर्मोपदेशक ब्राह्मण नियुक्त कर दिया और पांच २ गांवों के ऊपर एक अधिकारी नियुक्त किया ।।५६।। ऐसेही धर्महीनों को दंड देने के लिये दस दस सवार नियत किये इस प्रकार इस चक्रवर्ती राजा के शासन से ।।५७।। यह धर्म वृत्त सब

उनको निस्सन्देह वैकुण्ठकी प्राप्ति होती थी ॥५८॥५९॥ जो कोई मेषकी संक्रांति में प्रातःकाल किसी बहाने से भी स्नान कर लेताहै वह सम्पूर्ण पापों से छूट विष्णुलोक को जाता है ॥६०॥ वैशाख में एकबार भी स्नान करने से प्राणी यमलोक को नहीं जाता, उस सूर्यवंशी राजा ने यमके लेखों को मिटा दिया, विचारे चित्रगुप्त को लिखने के लिये कुछ काम न रहा

ते यान्ति हरिमन्दिरम् । अवश्यं वैष्णवो लोकः प्राप्यते मानवैर्द्रुतम् ॥५९॥ व्याजेनापि सकृत्स्नातः प्रातर्मेषगते रवौ । सर्वपापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं पदम् ॥६०॥ न प्राप्नोति यमं धर्मं सकृद्वैशाखस्नानतः । वैलेख्यमगमद्राजा रविसूनुस्तदा नृप ॥६१॥ लेख्यकर्मणि विश्रान्तश्चित्रगुप्तोऽभवत्तदा । मार्जितानि च लेख्यानि पुरा पापोद्भवानि च ॥६२॥ गच्छद्भिर्वैष्णवं लोकं स्वकर्मस्थैर्जनैः क्षणात् । शून्यास्तु नरकाः सर्वे पापप्राणिविवर्जिताः ॥ ६३ ॥ भग्नयानोऽभवन्मार्गो वैशाखस्य प्रभावतः । सर्वेऽपि विमलाकारा जना यान्ति हरेः पदम् ॥ ६४ ॥ दिवौकसां तु ये लोकाः शून्याः सर्वे तथाभवन् ।

विष्णुलोक को जाने वाले स्वकर्मस्थ मनुष्यों के जो कुछ पुराने पापों के लेख थे ॥६१॥६२॥ वे भी सब दूर कर दिये तथा सभी पापी जीवों से नरक खाली होगये ॥६३॥ तथा वैशाख के प्रभाव से नरक का मार्ग भग्नयान होगया सम्पूर्ण मनुष्य निर्मल रूप धारण करके विष्णुलोक जाने लगे ॥६४॥ देवताओं के भी सम्पूर्ण लोक खाली होगये जब स्वर्ग और नरक सब शून्य होगये ॥६५॥ तब नारदजी धर्मराज के पास जाकर बोले-हे राजन् ! नरक में पहिले जैसे हाहाकार के शब्द सुनाई नहीं देते

हैं ॥६६॥ और खोटे कर्म करने वालों की कुछ लिखा पढ़ी नहीं है चित्रगुप्त हाथ पर हाथ रक्खे मुनिकी भांति चुपचाप बैठे हैं ॥६७॥ हे राजेन्द्र पाप कर्म करने वाले माया और दंभ से बढ़े हुए पापी मनुष्य तेरे लोकमें क्यों नहीं आते हैं इसका कारण बताओ ॥६८॥ जब महात्मा नारदजी ने ऐसा कहा तब धर्मराज बड़ी दीनता से बोले ॥६९॥ हे नारद ! आजकल

शून्येषु त्रिविष्टपे जाते शून्येषु नरकेषु च ॥६५॥ नारदो धर्मराजानं गत्वा चेतमुवाच ह । नाक्रन्दः श्रूयते राजन् प्राक्श्रुतो नरको यथा ॥६६॥ तथा न क्रियते लेख्यं किंचिद् दुष्कृतकर्मणाम् । चित्रगुप्तो मुनिरिव स्थितोऽयं मौनमास्थितः ॥६७॥ कारणं ब्रूहि राजेन्द्र न यान्ति तव मन्दिरम् । मनुष्याः पापकर्माणो मायादम्भविवर्धिताः ॥६८॥ एवमुक्ते तु वचने नारदेन महात्मना । प्राह वैवस्वतो राजा किंचिद् दैन्यसमन्वितः ॥६९॥ योऽयं नारद भूपालः पृथिव्यां सांप्रतं स्थितः । सोऽतिभक्तो हृषीकेशे पुराणपुरुषोत्तमे ॥७०॥ प्रबोधयति वैशाखधर्मं भेरीस्वनेन च । अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यशीतिर्न हि पूर्यते ॥७१॥ यो वै ह्यकृतवैशाखः स मे दण्ड्यो न संशयः । तद्भयाद्धि जनाः सर्वे नोल्लङ्घन्ति

पृथ्वी में जो राजा है वह हृषीकेश पुराण पुरुषोत्तम का बड़ा भक्त है ॥७०॥ उसने अपने देश भर में सूचना करादी है कि आठ वर्ष के बालक से अस्सी वर्ष के वृद्ध तक जो कोई वैशाख के धर्म न करेगा वह दंडका भागी होगा उसके डरके मारे प्रजा वैशाख के धर्मों को करने से सब मनुष्य वैकुण्ठ को चले जाते हैं ॥७२॥ उस राजा ने मेरे लोक में आने का मार्ग बन्द कर

आठ वर्ष के बालक से अस्सी वर्ष के वृद्ध तक जो कोई वैशाख के धर्म न करेगा वह दंडका भागी होगा उसके डरके मारे प्रजा वैशाख के धर्मों को करने से सब मनुष्य वैकुण्ठ को चले जाते हैं ॥७३॥ उस राजा ने मेरे लोक में आने का मार्ग बन्द कर दिया है नरक लोक और देव लोक सब सूने पड़े हैं ॥७४॥ लेखकों को लिखने के लिये अब कुछ नहीं रहा और जो पहिले लेख लिखे गये हैं वे भी सब मनुष्यों ने मेट दिये हैं मुनिवर इस वैशाख के धर्मोंकी ऐसी महिमा है ॥७५॥ वैशाख में

कदाचन ॥७२॥ गच्छन्ति वैष्णवं धाम कर्मणा तेन नारद । वैशाखसेवनाल्लोका यास्यन्तिः । हरिमन्दिरम् ॥७३॥ तेन राज्ञा मुनिश्रेष्ठ मार्गो लुप्तो ममाधुना । कृता हि नरकाः शून्या लोका-श्चापि दिवौकसाम् ॥७४॥ विश्रान्तो लेखको लेखे लिखितं मार्जितं जनैः । वैशाखमासधर्मस्य माहात्म्यं त्वदृशं मुने ॥ ७५ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि विमुक्तानि जनौर्द्विज । कृत्वा वैशाखकृत्यानि यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥७६॥ सोऽहं काष्ठसमो जातो न कश्चिन्मम गोचरः । युद्धं कृत्वा तु तं हन्मि सर्वथाद्य महाबलम् ॥७७॥ अकृत्वा स्वामिकार्यं तु निर्व्यापारो यदि स्थितः । तस्य वित्तं समश्नाति स याति नरकं ध्रुवम् ॥७८॥ यदि दैवादवध्यो हि तदा ब्रह्माणमेत्य च । निवेद्य तस्मै

कर्तव्य कर्मों के करने से मनुष्य ब्रह्महत्यादि पापों से छूटकर विष्णुपद को प्राप्त होते हैं ॥७६॥ अतः मैं काठके समान होगया हूँ मुझे कुछ दिखाई नहीं देता मैं उस महाबली से युद्ध कर उसे मारूंगा ॥७७। क्योंकि जो स्वामी के कार्य को बिना किये निर्व्यापार रहता है उसका वैभव नष्ट हो जाता है और वह निश्चय ही नरक में जाता है ॥७८॥ वह यदि मुझसे न मरेगा तो

मैं ब्रह्मा के पास जा उनसे सब निवेदन कर स्वस्थ हो जाऊंगा ॥७९॥ इस प्रकार नारदजी से सलाह कर अपने सेवकों का सङ्ग ले यमकाल सहित भैंसापर चढ़ पृथ्वी पर आया भीषण दंड उठा ॥८०॥ मृत्यु रोग जरा आदि सभी सेवकों तथा पचास कोटि यमदूतों को ले ॥८१॥ शीघ्र ही उस राजा की पुराको घेर महा शङ्खनाद करने लगा । जिससे सब लोक भयभीत होगये

तत्सर्वं पश्चात् स्वस्थस्थितिर्भवेत् ॥७९॥ इत्युक्त्वा द्विजमामन्त्र्य सानुगः प्रययौ भुवम् । स कालो महिषारूढो दण्डमुद्यम्य भीषणम् ॥८०॥ मृत्युरोगजराद्यैश्च पार्षदैश्च महोत्कटैः । पञ्चाशत्कोटिसंख्याकैर्यमदूतैर्वृतस्ततः ॥८१॥ स तूर्णं तस्य राजर्षे रुरोध सकलां पुरीम् । शङ्खं दध्मौ महाघोरं सर्वलोकभयंकरम् ॥८२॥ तच्छ्रुत्वा स तु राजर्षिर्ज्ञात्वा वैवस्वतं यमम् । स सज्जीकृतसर्वस्वः पत्तनान्निर्ययौ रुषा ॥८३॥ तयोर्युद्धमभूत्तत्र भीषणं रोमहर्षणम् । मृत्युं कालं तथा रोगं यमदूतपतिं तथा ॥८४॥ जित्वा क्षणेन राजर्षिर्द्रावयामास रोषतः । ततः क्रुद्धो यमो राजा स्वयमभ्येत्य तं रुषा ॥८५॥ युयोध बहुभिर्बाणैः सिंहनादं चकार ह । चकर्त राजा तस्यापि कामुकं विशिखोस्त्रभिः

॥८२॥ जब राजा ने यह सुना कि यमने यह पुरी घेरीहै तब अत्यन्त क्रोध कर अपनी सब सेना सजा नगर से बाहर आया ॥८३॥ दोनों में बैसा घोर युद्ध हुआ जिससे रोमांच खड़े होगये । राजा ने मृत्यु,काल,रोग यमराज के दूतों के स्वामी को ... तब यमराज ढाल तलवार उठा राजा

॥८८॥ दोनों में ऐसा घोर युद्ध हुआ जिससे रोमांच खड़े होगये। राजा ने मृत्यु,काल,रोग यमराज के दूतों के स्वामी की

नाद करने लगा तो राजा ने तीन बाणों से यमराज का धनुष काटकर फेंक दिया ॥८६॥ तब यमराज ढाल तलवार उठा राजा को मारने के लिये आया, उसे आता देख राजा ने अति क्रोधित हो उसकी ढाल तलवार भी काट गिराई और सर्प की भांति फुंकारता हुआ एक तीक्ष्ण बाण यमराज के मस्तक में मारा तब यमने क्रोधकर अपना दंड उठाया ॥८७-८८॥ और

॥८६॥ पुनश्चर्मासिमादाय यमो हन्तुमथागमत् तं दृष्ट्वा तु नृपः क्रुद्धः पुनश्छित्वासिचर्मणी ॥८७॥ निजघान ललाटे च शरं कालोरगप्रभम् । यमस्तेनाहतः क्रुद्धस्ततो दण्डमुपाददे ॥८८॥ ब्रह्मास्त्रेण च संमन्त्र्य दण्डं तस्मै मुमोच ह । हाहाकारो महानासीज्जनानां पश्यतां तदा ॥८९॥ चक्रं विष्णुः स्वभक्तस्य रक्षार्थे प्राहिणोत्तदा । विष्णुमुक्तं तदा चक्रं शीघ्रमागत्य तद्रणे ॥९०॥ यमदण्डेन सयुध्य तद्ब्रह्मास्त्र निवार्य च । यमं हन्तुमथारेभे सहस्रारं महाद्भुतम् ॥९१॥देवभक्तस्ततो भीतस्तादास्तौच्चक्रमञ्जसा । सहस्रार नमस्तेऽस्तु विष्णुपाणि विभूषण ॥९२॥ त्वं सर्वलोकरक्षार्थे

उसको ब्रह्मास्त्र से अभिमंत्रित कर राजा के ऊपर छोड़ दिया तो सबके देखते बड़ा हाहाकार मच गया ॥८९॥ तब विष्णु भगवान् ने अपने भक्त की रक्षा के लिये सुदर्शन चक्र छोड़ा जो रण में आ ॥९०॥ यमदंड से युद्ध करने लगा और ब्रह्मास्त्र का निवारण कर यमको मारने को उद्यत हुआ ॥९१॥ तब भक्तिमान् राजा भयभीत होकर महा अद्भुत भगवान् के चक्रकी स्तुति करने लगा कि हे विष्णुभगवान् के हाथ के आभूषण,हे सहस्रार ! तुम्हें नमस्कार है ॥९२॥ तुम्हें भगवान ने सम्पूर्ण

लोकों की रक्षा के लिये धारण किया था, हे विष्णुभक्त ! हे महाबली ! आज में तुमसे यमको मांगता हूं ॥९३॥ क्योंकि देवताओं के द्रोही मनुष्यों के काल तुम्हीं हो और कोई नहीं इस कारण हे जगत्पते ! इस यमकी रक्षा करिये ॥९४॥ जब सुदर्शन चक्रकी राजा ने ऐसी स्तुति की तब चक्र यमको राजा के पास छोड़ कर देवताओं के देखते देखते वैकुण्ठ को चला गया

हरिणा च धृतं पुरा । त्वा याचेऽद्य यमं त्रातुं विष्णुभक्त महाबलम् ॥९३॥ नृणां देवद्रुहां कालस्त्वमेव हि न चापरः । तस्मादेनं यमं रक्ष कृपां कुरु जगत्पते ॥९४॥ नृपेणैवं स्तुतं चक्रं यमं हित्वा नृपान्तिकम् । पुनर्ययौ महाराज देवानां पश्यतां दिवि ॥ ९५ ॥ ततो यमोऽतिनिर्विण्णो ब्रह्मणः सदनं ययौ । स ददर्श समासीनं मूर्तामूर्तजनैर्वृतम् ॥९६॥ देवाश्रयं जगद्बीजं सर्वलोकपितामहम् । उपास्यमानं विविधैर्लोकपालैर्दिगीश्वरैः ॥९७॥ इतिहासपुराणाद्यैर्वेदैर्विग्रहसंस्थितैः । मूर्तिमद्भिः समुद्रैश्च नदीभिश्च सरोवरैः ॥९८॥ देहवद्भिस्तथा वृक्षैरश्वत्थाद्यैरशोभितैः । वापीकूपत-

॥९५॥ तब यम बहुत उदास होकर ब्रह्माजी के पास गया ब्रह्माजी के चारों ओर मूर्तामूर्त जन बैठे थे ब्रह्माजी देवताओं के आश्रय हैं जगत् के उत्पत्ति कारण हैं सम्पूर्ण लोकों के पितामह हैं उनकी सम्पूर्ण लोकपाल और दिग्पाल उपासना कर रहे हैं ॥९६-९७॥ इतिहास और पुराण शरीर धारण कर खड़े हैं समुद्र नदी और सरोवर मूर्तिमान् विराजमान हैं ॥९८॥ पीपल

काष्ठा, निमेष, ऋतु, अयन, युग, ॥१००॥ संकल्प, विकल्प, निमेष, उन्मेष, ऋक्ष, योग, करण, पूर्णिमा, अमावास्या ॥१०१॥ सुख, दुःख, भय, लाभ, अलाभ, जय, अजय, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, शांत, मूढ, अतिघोर प्राकृतिक विकार कफ, वात पित्त आदि सब चराचर मूर्तिमान् सेवा में खड़े हैं ॥१०२॥१०३ उनके बीचमें यम ऐसे जाता है जैसे लाजवन्ती कुलवधू,

डागैश्च मूर्तिमद्भिश्च पर्वतैः ॥९९॥ अहोरात्रैस्तथा पक्षैर्मासैः संवत्सरैस्तथा । कलाकाष्ठानिमेषैश्च ऋतुभिश्चायनैर्युगैः ॥१००॥ संकल्पैश्च विकल्पैश्च निमिषोन्मेषणैस्तथा ऋक्षैर्योगैश्च करणैः पूर्णिमा-शशिसंक्षयैः ॥१०१॥ सुखैर्दुःखैर्भयैश्चैव लाभालाभैर्जयाजयैः । सत्वेन रजसा चैव तमसा च सम-न्वितम् ॥१०२॥शान्तमूढातिघोरैश्च विकारैः प्राकृतैरपि । वायुना देवदेवेन श्लेष्मपित्तादिभिर्वृतम् ।१०३। तेषां मध्येऽविशत्सौरिः सव्रीडा च वधूर्यथा । विलोकयन् धरापृष्ठं म्लानवक्त्रं व्यदर्शयत् ।१०४। संप्रविष्टं यमं दृष्ट्वा सकाशस्थं सहानुगम् । विस्मितास्ते मिथः प्रोचुः किमर्थं भास्करिस्त्विह ॥१०५॥ संप्राप्तो लोककर्तारं द्रष्टुं देवं पितामहम् । निर्व्यापारः क्षणमपि योऽयं नास्ति रवेः सुतः ॥१०६॥

धरती की ओर देखती है, मुख मलीन होरहा है ॥१०४॥ सेवकों सहित पास जा बैठा, उसे देख बड़े विस्मय से सब आपस में कहने लगे कि यमके यहां आनेका क्या कारण है ॥१०५॥ कहीं सृष्टिकर्त्ता पितामह ब्रह्माजी के दर्शन को तो नहीं आया, यमराज को तो क्षणभर भी कामसे अवकाश नहीं मिलता ॥१०६॥ इसके यहां आने का कारण क्या है, देवता तो कुशल से

हैं, बड़े आश्चर्य की बात है कि इसके वस्त्र भी फट रहे हैं ॥१०७॥ चित्रगुप्त भी इसके पीछे पीछे ही आया है यह भी बड़ा दीन होरहा है कहीं इसके वस्त्र यमने ही तो नहीं फाड डाले हैं ॥१०८॥ ऐसी बात न पहिले कभी सुनी न देखी जैसी आज यहां पर है जब वह सब ऐसा कह रहे थे तभी प्राणियों का शासक, सूर्य पुत्र, यम ब्रह्मा के आगे पृथ्वी पर इस प्रकार गिरा जैसे

वै० मा० भा० टी० अ० ११२

सोऽयमभ्यागतः कस्मात् कच्चित्क्षेमं दिवौकसाम् । आश्चर्यातिशयो यश्च संमार्जितपटस्त्वयम् ॥१०७॥ लेखकस्तमनुप्राप्तो दैन्येन महतान्वितः । न कदाचित्पटो ह्यस्य मार्जितो धर्मभीरुणा ॥१०८॥ यन्न दृष्टं श्रुतं वापि तदिहाद्य प्रपद्यते । एवमुच्चरतां तेषां भूतानां भूतशासनः ॥१०९॥ निष्पपाताग्रतो भूमौ ब्रह्मणो रविनन्दनः । कृत्तमूलो यथा शाखी त्राहि त्राहीति वै रुदन् ॥११०॥ परिभूतोऽस्मि देवेश संमार्जितपटः कृतः । त्वयि नाथे न विफलं पश्यामि कमलासन ॥१११॥ एवमुक्त्वा हि निश्चेष्टो बभूव नृपसत्तम । ततः कोलाहलः शब्दः सभायां समजायत ॥११२॥ यो हि खादयते मर्त्यान् सर्वान् स्थावरजङ्गमान् । स वै रुदति दुःखार्तः कस्माद्दैवस्तो यमः ॥११३॥

जड़ कट वृक्ष गिरता है और त्राहि त्राहि पुकारने लगा ॥१०९॥११०॥ हे देवेश ! मेरी प्रतिष्ठा भङ्ग होगई है मुझे खूब पीटा है मेरे वस्त्रादि छीन लिये हैं, कमलासन ! आपके होते हुये मेरी यह दुर्गति हुई है ॥१११॥ ऐसा कह मूर्छा खा पृथ्वी [illegible]

महादुःखी होकर क्यों रोता है ॥११३॥ मनुष्यों को संताप देनेवाला दुःखी [illegible] है सत्य है दुष्कर्मों का करने वाला

महादुःखी होकर क्यों रोता है ॥११३॥ मनुष्यों को संताप देनेवाला दुःखी कैसे होगया है सत्य है दुष्कर्मों का करने वाला मनुष्य शोभा नहीं पाता है ॥११४॥ तब पवन ने ब्रह्माके मतसे सबकी वाणी रोक दीं ॥११५॥ और सबको हटाकर धीरे २ यमको अपनी बड़ी २ और मोटी भुजाओं से उठाया यह पवन संसार में विचारने वाला बड़ा उदार बुद्धि है ॥११६॥ जो

जनसंतापकर्ता यः सोऽचिराद्यात्यशोभनम् । न हि दुष्कृतकर्ता हि नरः प्राप्नोति शोभनम् ॥११४॥
ततो निवारयामास वायुस्तेषां वचस्तदा । लोकानां समवेतानां मतं ज्ञात्वा स वेधसः ॥११५॥
निवार्य लोकान् मार्तण्डि शनैरुत्थापयन्मरुत् । भुजाभ्यां शालपीनाभ्यां लोकसूत्र उदारधीः ॥११६॥
विह्वलन्तं परायत्तमासने सन्न्यवेशयत् । आसनस्थमुवाचेदं व्योमसूनू रवेः सुतम् ॥११७॥ केन
त्वभिभूतोसि केन स्थानान्निवारितः । केनायं मार्जितो देव पटो लेखपटस्तव ॥११८॥ ब्रूहि
सर्वमशेषेण कुशकेतोस्त्वमग्रतः । यः प्रभुस्तात सर्वेषां स ते कर्ता ममापि च अपनेष्यति मार्तण्डे
दुःख ह्रदय संस्थितम् ॥११९॥ स एवमुक्तः श्वसनेन सत्यमादित्यसूनुर्वचनं बभाषे । विलोक्य वक्त्रं

यमराज बहुत विह्वल होरहा था उसे आसन पर बैठाकर यह कहने लगा ॥११७॥ तेरा पराभव किसने किया है किसने तुमको अपने स्थान से निकाल दिया है,हे देव ! तुम्हारे वस्त्र और लेखपट किसने फाड़ दिये हैं ॥११८॥ तू कुशकेतु के सामने सब वृत्तान्त कह ये सबके प्रभू तथा मेरा और तुम्हारा भी पिता है यह यमके हृदयस्थ दुःखको दूर करेगा ११९॥ जब पवन ने

ऐसा कहा तो यमराज कुशकेतु के पुत्रके मुखकी ओर देख बड़े दीन स्वर और गद्गद्वाणी से सत्यबात बताने लगा ।१२०।
इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदम्बरीषसंवादे कीर्तिमद्विजयवर्णनं नाम एकादशऽध्यायः ॥११॥

यम बोला हे शम्भो ! हे ब्रह्मन् ! मेरी बात सुनो, मेरा लोप होगया मैं मरने से भी अपने पद खंडनको अधिक मानता

कुशकेतुसूनोः समद्गदं चेदमहोऽतिदीनम् ॥१२०॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे कीर्तिमद्विजयवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥११॥

यम उवाच ॥ शृणु मे वचनं शम्भो लोपितोऽहं पितामह । मरणादधिकं मन्ये मत्पदस्य च खण्डनम् ॥१॥ नियोगी न नियोग्यं हि करोति कमलासन । प्रभोर्वित्तं समश्नाति स भवेत्काष्ठकीटकः ॥२॥ योऽश्नाति लोभाद्वित्तानि प्रज्ञावांश्च महीपतेः । स तिर्यग्योनिनरकं याति कल्पशतत्रयम् ॥३॥ निस्पृहो नाचरेद्यस्तु नियोगं पद्मसंभव । भुक्त्वा तु नरकान् घोरान् स पुमान् वायसो

हूँ ॥१॥ हे कमलासन ! जो जिस कामपर नियुक्त किया जाय और वह अपना काम न करे ऐसे जो अपने स्वामीका धन खाता है वह काठ का कीडा अर्थात् घुन बनता है ॥२॥ जो प्राज्ञवान् लोभ से राजाके वित्तको विना काम खाता है वह तिर्यक्योनि में जा तीनसौ कल्पतक नरक भोगता है ॥३॥ हे ब्रह्मा ! जो निस्पृह होकर अपने २ स्वामी के कार्यका संपादन नहीं करता है वह घोर नरक भोगकर कौआ की योनि पाता है ॥४॥ जो अपने कार्य में तत्पर रहकर स्वामीके कार्य को बिगाड़ देता है

वह तीनसौ कल्पतक चूहेकी योनि पाता है ॥५॥ जो कार्यपर नियुक्त हो कार्य करने की सामर्थ्य होनेपर भी घरही रह जाता है वह बिल्ली की योनि पाता है ॥६॥ सो हे देव ! मैं आपकी आज्ञा अनुसार प्रजाके धर्मों का साधन करता हूँ पुण्य करने वाले को पुण्यकर्म से और पापीको पापकर्म से ॥७॥ भली भांति विचार कर धर्म शास्त्र के जानने वाले मुनियों द्वारा कल्पके

भवेत् ॥४॥ आत्मकार्यपरो यस्तु स्वामिकार्यं विलुम्पति । भवेद्वेश्मनि पापात्मा आखुः कल्पशत-त्रयम् ॥५॥ नियोगी यश्च भूत्वा वै तिष्ठन्नित्यं स्ववेश्मनि । शक्तस्तु कार्यकरणे मार्जारो जायते नरः ॥६॥ सोऽहं देव तवादेशात्प्रजा धर्मेण साधये । पुण्येन पुण्यकर्तारं पापं पापेन कर्मणा ॥७॥ सम्यग्विचार्य मुनिभिर्धर्मशास्त्रान्वितैः प्रभो । कल्पादौ वर्तमानश्च यातना दापये प्रभो ॥८॥ कर्तुं नियोगमेवं हि त्वदीयं नैव शक्नुयाम् । राज्ञा कीर्तिमता भग्नो नियोगस्तव च क्षितौ ॥९॥ भयादस्य जगन्नाथ पृथिवी सागराम्बरा । वैशाखधर्मसहिता पालने वर्तते क्वचित् ॥१०॥ विहाय सर्वधर्मांश्च

आदि वर्त्तमान में जो यातना हो वह मैंने दी हैं ॥८॥ हे प्रभो ! अब मैं आपके नियोग को करने में असमर्थ हूँ क्योंकि कीर्ति-मान् राजाने पृथ्वी से आपका नियोग उखाड़ दिया है ॥९॥ हे जगत्पते ! इस राजाके भयसे समुद्रपर्यन्त सब पृथ्वी के मनुष्य वैशाखके कर्त्तव्य धर्मों का पालन करते हैं ॥१०॥ और प्रजा ने सब धर्म, पित्रीश्वरों की पूजा अग्निष्टोमादि यज्ञ, तीर्थ यात्रादि सब शुभ कर्म छोड़ दिये हैं ॥११॥ योग सांख्य का परित्याग कर दिया है, प्राणायाम करना छोड़ दिया है, होम और

स्वाध्याय का नाम भी नहीं लेते हैं तथा अनेक प्रकार के पाप करके भी ॥१२॥ वैशाख में किये धर्मों के प्रभाव से विष्णुलोक को चले जाते हैं उनके पिता पितामह ॥१३॥ उनके भी पिता, पित्रीश्वरों के पिता, तथा मातामह और उनके भी पिता आदि से लेकर ॥१४॥ तथा उनके भी सम्बन्धी और उनके भी जनकादि के पूर्वज विष्णुलोक को जाते हैं, ये सब दुःख मेरे मस्तक

विहाय पितृपूजनम्। विहायाग्निसपर्यां तु तीर्थयात्रादिसत्क्रियाः।११। योगसांख्यावुभौ त्यक्त्वा त्यक्त्वा प्राणनिरोधनम् । त्यक्त्वा होमं च स्वाध्यायं कृत्वा पापानि भूरिशः ॥१२॥ प्रयान्ति वैष्णवं लोकं कृत्वा वैशाखसत्क्रियाः । मनुजाः पितृभिः सार्धं तथैव च पितामहैः ॥ १३ ॥ तेषामतीतपितरः पितृणां पितरस्तथा । तथा मातामहा यान्ति तेषां वै जनकादयः ॥ १४ ॥ तेषामपि च नप्तारो जानत्रीणां हि पूर्वजाः । एतद्दुःखं पुनर्देव मम मस्तकभेदनम् ॥ १५ ॥ प्रियायाः पितरो यान्ति मार्जयित्वा लिपि मम । पितृणां बीजजो यस्तु धात्र्या कुक्षौ धृतौ विभो ॥१६॥ यदेकेन कृत कर्म

को पीड़ा पहुँचते हैं ॥१५॥ मेरे लेख, पत्रको मिटाकर भार्या के पिता पितामह आदि तथा पित्रीश्वरों के बीज से धात्री आदि के गर्भ से उत्पन्न होनेवाले सब विष्णुलोक को चले जाते हैं ॥१६॥ जो कोई एक मनुष्य कोई एक कर्म करता है, उसके फलको वही भोगता है परन्तु सारे कुलमें कोई एक ही ऐसा धर्मात्मा होता है जो सब पापों को दूर करके दोनों पक्षों की [illegible]

देताहै ॥१७॥१८॥ हे प्रभो ! ये सब विष्णुलोक को चले जातेहैं अतः अब इस कामपर मुझको रखने की कुछ आवश्यकता नहीं है ॥१९॥ वैशाख के धर्म करके लोग मुझे त्याग सब हरि भगवान् के पास चलेजातेहैं तथा अपने सङ्ग अपनी इक्कीस पीढ़ियों का भी उद्धार करते हैं पाप मुक्त होकर वे दिव्य देह धारण करतेहैं ॥२०॥ वे सब मेरे मार्ग को छोड़ वैकुण्ठ को

वै० मा० ११७

तदेकेनैव भुज्यते । तन्निरस्य कृतं सर्वं जानंस्त्वेकः कुले तु यः ॥ १७ ॥ तारयेत्तावुभौ पक्षौ षड्भावशापर्यंलं विभो । प्रियायाश्चापि वै तात सर्वे वै कुक्षिसंभवाः ॥१८॥ तेऽपि सर्वे जगन्नाथ यान्ति विष्णोः परं पदम् । न मे प्रयोजनं देव नियोगेनेदृशेन वै ॥१९॥ वैशाखधर्मनिरतः स मां त्यक्त्वा व्रजेद्धरिम् । त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य त्यक्तपापोऽतिशोभनः ॥ २० ॥ स त्यक्त्वा मम मार्गं हि प्रयाति हरिमन्दिरम् । न यज्ञैस्तादृशैर्देवगतिं प्राप्नोति मानवः ॥२१॥ सर्वतीर्थैर्न दानाद्यैर्न तपोभिश्च न व्रतैः । अपि वा सकलैर्धर्मैर्युक्तो नाप्नोति तां गतिम् ॥२२॥ प्रयागपाताद्रणमध्यपाताद्भृगोश्च पातान्मरणाच्च काश्याम् । न तां गतिं यान्ति जनाश्च सर्वे वैशाखनिष्ठेन च या प्रपद्यते ॥२३॥

मा० टी० अ० १७

चले जातेहैं वह देवताओं की गति यज्ञादि करने से नहीं मिलतीहै ॥२१॥ अनेको तीर्थों के करने से दान,तप,व्रत करने से अथवा अनेक प्रकार के धर्माचरण करने से देवगति नहीं मिलतीहै ॥२२॥ प्रयाग में पतन होने,रणमें मरने,भृगुके पतन से या काशी में मरने से भी जो गति नहीं मिलतीहै वह वैशाख के धर्मों में निष्ठावान् को सहजही मिलजातीहै ॥२३॥ जो

कोई प्रातःकाल स्नान करके भगवान् का पूजन कर कथा श्रवण करे और वैशाख माहात्म्य सुने और यथोचित वैष्णवीय धर्मों का संपादन करे तो वह विष्णुलोक का अधिपति होजाता है ॥२४॥ हे ब्रह्मन्! मेरी समझ में विष्णुलोक परिमाण रहित है जो करोड़ों मनुष्यों से भी नहीं भरता ॥२५॥ मधुसूदन भगवान के निवास करने से विकर्मी विकर्म रहते हैं और जो पवित्र

प्रातः स्नात्वा देवपूजां च कृत्वा श्रुत्वा कथां माससमाहात्म्य संज्ञम् । धर्मान्कृत्वा चोचितान्वैष्णवांश्च स वै भवेद्विष्णुलोकैकनाथः ॥ २४ ॥ अप्रमाणमहं मन्ये लोकं विष्णोर्जगत्पते । यो न पूर्येत कोट्यौघैः सर्वतः कमलासन ॥२५॥ माधवावसथेनेह समस्तेन पितामह । विकर्मस्था विकर्मस्थाः शुचेयो शुचयस्तथा ॥२६॥ कृत्वा वैशाखकृत्यानि लोका यांति नृपाज्ञया । योऽस्माकं हि महच्छत्रुर्भवतां च विशेषतः ॥२७॥ निग्राह्यो जगतां नाथ भवतासौ महीपतिः । हित्वा हि सकलान् धर्मान् सकृद्वैशाखस्नानतः ॥२८॥ असंस्कृतजना यान्ति वैकुण्ठं हरिमन्दिरम् । अस्माभिस्तु कृतोपेक्षो

हैं वे पवित्र रहते हैं ॥२६॥ राजा की आज्ञा से वैशाख के कर्मों को कर सभी मनुष्य वैकुण्ठ को चले जाते हैं अतः यह राजा मेरा बड़ा शत्रु है और तुम्हारा तो बहुत ही है ॥२७॥ हे जगत्पते! इस राजा का निग्रह करना उचित है जिसने सम्पूर्ण धर्म त्याग दिये और कुसंस्कारी मनुष्य भी केवल वैशाख में स्नान करके वैकुण्ठ को चले जाते हैं यदि हम उसकी उपेक्षा कर देंगे तो केवल विष्णुभगवान के चरणों का आश्रय लेकर ॥२८-२९॥ वह राजा इस मर्त्य लोक को वैकुण्ठ में ले जायगा, इसमें

सन्देह नहीं अतः यह आपका दिया हुआ दंड और यह पट अब आपके चरणों में रक्खा है ।३०। उसी राजाने अतुल लोकपालत्वका मार्जन किया हैं केवल मा को क्लेश देनेवाली सन्तान से क्या फल है ॥३१॥ जैसे ज्येष्ठमास में सूर्य प्राणियों के व्याकुल करदेता है उसी तरह जो शत्रुओं को नहीं गिराता वह अपनी माता के गर्भ से वृथा ही पैदा हुआ,उसे कुपुत्र जानना

विष्णुपादैकसंश्रयः ॥२९॥ समस्तं नेष्यते लोकं पार्थिवो नात्र संशयः । एष दण्डः पटो ह्येषस्तव पद्भ्यां निवेदितः ॥३०॥ लोकपालत्वमतुलं मार्जितं तेन भूभुजा । किमपत्येन जातेन मातुः क्लेशकरेण वै ॥३१॥ यो न पातयये शत्रुं ज्येष्ठमासीव भास्करः वृथासुता हि युवतिर्जाता वेद कुपुत्रिणी ॥३२॥ न तस्याः स्फुरते कीर्तिघनस्येव शतह्रदा । यः पितुर्नोद्धरेत्पापाद्विद्यया वा बलेन वा ॥३३॥ मातुर्जठरजा रोगः स प्रसूतो धरातले । धर्मे चार्थे च कामे च यः अनीपो भवेत्सुतः ॥३४॥ मातृहा ह्युच्यते सद्भिः स पुत्रः पुरुषाधमः । तन्माता नृपपत्नी च लोकविख्यातसत्क्रिया

चाहिये ॥३२॥ जैसे बादल में बिजली चमकती है वैसे उसकी कीर्ति नहीं बढ़ती है जो कोई विद्या या बलसे अपने पिता का पापसे उद्धार नहीं करता ॥३३॥ जो पुत्र धर्म,अर्थ,और काम से विमुख होता है वह इस पृथ्वी पर केवल माता के उदररोग तुल्य है ॥३४॥ उसे महात्मा लोग मातृघाती कहते हैं,वह पुत्र मनुष्यों में अधम होता है, परन्तु उसकी माता राज पत्नी अपने सत्कर्मों से संसार में प्रसिद्ध है ॥३५॥ ब्रह्माने संसार में ऐसी वीर माता कोई कोई सृजी हैं । इस कीर्तिमान राजा ने

मेरी लिपि दूर करदी ॥३६॥ ऐसा किसी क्षत्री ने आज तक नहीं किया। हे प्रभो! पटमार्जन की बात तो पुराणों में भी
नहीं सुनी ॥३७॥ हे जगत्पती! उस राजा के सिवाय भगवान में तत्पर ऐसा राजा कोई नहीं हुआ, जिसने पटमार्जन की
घोषणा कर दी हो और यमलोक में आनेका मार्ग रोक दिया हो ॥३८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे
यम दुःख निरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

यथा वै कीर्तिमान् जातो मल्लिपेमार्जनाय वै
॥३५॥ एकैकवीरस्मूर्लोके विरिञ्चे नात्र संशय ॥ पुराणेषु जगन्नाथ न श्रुतं पटमार्जनम् ॥३७॥
॥३६॥ नेदं व्यवसितं देव केनचित्क्षत्रियेण हि। प्रचोदयन्तं पटहसुघपविलोपमानं
सोऽहं न जानामि जगत्पतीश ऋते क्षितीशं हरितत्परं तम्। इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे यमदुःखनिरूपण
मम वेश्ममार्गम् ॥३८॥
नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

सद्गुणेषु कृतस्तापः स तापो मरणा-
ब्रह्मोवाच किमाश्चर्यं त्वया दृष्टं किमर्थं खिद्यते भवान्। न गच्छन्ति हरेर्लोकं कथं भूपस्य शासनात्
न्तिकः ॥१॥ तस्योच्चारणमात्रेण प्राप्यते परमं पदम्।

ब्रह्माजी कहने लगे कि हे यम! तुमने क्या आश्चर्य देखा, तुम दुःखी क्यों होते हो सद्गुणों में ईर्ष्या करने से वही
मृत्यु प्रदायिनी होती है ॥१॥ उसके उच्चारणमात्र से ही परम पद की प्राप्ति होती है फिर राजा के शासन से विष्णुलोक को ... समान फल मिलता है, यज्ञ के करने वाले

क्यों न जांयें ॥२॥ जो गोविन्द को एक बार भी प्रणाम करे तो सौ अश्वमेधयज्ञों के समान फल मिलता है, यज्ञ के करने वाले को तो फिर जन्म लेना पड़ता है परन्तु जो हरि भगवान को प्रणाम करते हैं उनको फिरसे जन्म ही नहीं होता ॥३॥ उस प्राणी को कुरुक्षेत्र जाने से क्या या सरस्वती में स्नान करने से क्या जिसकी जिह्वाके अग्रभागपर हरि (ये दो अक्षर) विरा-

॥२॥ एकोऽपि गोविन्दकृतः प्रणाम शताश्वमेधावभृथेन तुल्यः। यज्ञस्य कर्ता पुनरेति जन्म हरेः प्रणामी न पुनर्भवाय ॥३॥ कुरुक्षेत्रेण किं तस्य सरस्वत्या च किं तथा। जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥४॥ ब्राह्मणः श्वपचीं भुञ्जन्विशेषेण रजस्वलाम्। यदि विष्णुं स्मरेन्नित्यं तदाप्नोति परं पदम् ॥५॥ अभक्ष्यभक्षणाज्जातं विहायाघस्य संचयम्। प्रयाति विष्णुसायुज्यं ततो विष्णुप्रिया स्मृतिः ॥६॥ एवं विष्णुप्रियो मासो वैशाखो नाम वै यम। यद्धर्मश्रवणादेव मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥७॥ यतीति किमु वक्तव्यं तस्यानुष्ठानतत्परः। यस्मिन् संगीतमात्रे हि प्रीयते

जमान हैं ॥४॥ जो ब्राह्मण चांडाली अथवा विशेष कर रजस्वला से सङ्गम करता है यदि वह नित्य प्रति विष्णुभगवान का स्मरण करे तो विष्णुलोक को चला जाता है ॥५॥ अभक्ष्यभक्षण करने से जो बहुत से पाप इकट्ठे हो जाते हैं उन पापों से छूटकर विष्णुभगवान का स्मरण करने से ही प्राणी विष्णु की सायुज्यता प्राप्त करता है ॥६॥ हे यम! ऐसे ही यह वैशाख मास भी विष्णुभगवान को बहुत प्रिय है इसके धर्मों के सुनने से सम्पूर्ण पाप दूर होजाते हैं ॥७॥ जो पुरुष वैशाख में कहे

धर्मों का करता है, और उसके गुणानुवाद गान करता है उससे भगवान प्रसन्न होते हैं ॥८॥ वह निश्चय ही वैकुण्ठ को जाता है अर्थात् वैशाखोक्त धर्मों को करने वाला अवश्य ही उस गति को प्राप्त करता ही है वह जगत् का स्वामी पुरुषोत्तम हमारा भी तो पिता है ॥९॥ जो वैशाख के मास में माधव भगवान् के प्रिय धर्मों को करता है उस पर विष्णुभगवान् प्रसन्न

पुरुषोत्तमः ॥८॥ कथं न याति च गतिं तस्यानुष्ठानतत्परः । अस्माकं जगतां नाथो जनिता पुरुषोत्तमः ॥९॥ तस्येष्टान्माधवे मासि धर्मानेतान्करोत्ययम् । तस्य विष्णुः प्रसन्नात्मा सहायो सर्वदा । स्थितः ॥१०॥ न तस्य भूपतिः सौरे प्रभावो मम शिक्षणे । न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित ॥११॥ जन्ममृत्युजराव्याधिभयं वाप्युपजायते । नियोगी स्वामिकार्येषु यावच्छाक्तः समीहते ॥१२॥ तावता स कृतार्थः स्यान्नरकान्नैव गच्छति । कार्ये शक्तिविनिष्क्रान्ते स्वामिने च निवेदयेत् ॥१३॥ अनृणस्तावता भृत्यो नियोगी सुखमश्नुते । तस्मान्निवेदितार्थस्य न ऋणं न

होकर सदा उसकी सहायता करते हैं ॥१०॥ हे सौरे ! उस राजा का प्रभाव मेरे वश में नहीं क्योंकि वासुदेव भगवान के भक्तों का अशुभ कहीं भी नहीं होता ॥११॥ उसको कुछभी जन्म, मृत्यु, जरा व्याधि और भय नहीं होते हैं। स्वामी का कार्य करने की जब तक नियुक्त पुरुष में शक्ति रहे तब तक कार्य किये जायें तो वह नरकगामी नहीं होता और जब कार्य करने की शक्ति न रहे तब स्वामी से निवेदन कर दे तो उसी समय सेवक उऋण होजाता है उसे कुछ पातक नहीं लगता ॥१२-१३॥ अपने

कर्तव्य का पालन करने पर देहधारियों का कुछ अपराध नहीं होता हे यम! जब तू इस कार्य के करने में असमर्थ है तो तेरा क्या दोष है तू शोच मत कर ॥१५॥ जब ब्रह्माजी ने ऐसा कहा तो यम बहुत ही दुःखी हुआ और अश्रु पात करता हुआ अत्यन्त दीन वाणी से कहने लगा।१६। हे तात! मुझे आपके चरणों का भजन करने से सब कुछ मिलगया परन्तु हे ब्रह्मन्!

वै० मा० १२३

च पातकम् ॥१४॥ यत्ने कृते स्वकर्तव्ये नापराधोऽस्ति देहिनः। तस्मादशक्यकार्येऽस्मिन्न वै शोचितुमर्हसि ॥१५॥ इत्युक्तो ब्रह्मणा सौरिः पुनरत्यन्तखिन्नधीः। उवाच दीनया वाचा गलद्बाष्पाकुलेक्षणः ॥१६॥ प्राप्तं तात मया सर्वं त्वदांघ्रिभजनेन वै। नाहं यास्ये पुनः कर्तुं नियोगं पद्मसंभव ॥१७॥ प्रशासति महावीर्ये भूपेऽस्मिन्भूमि मण्डले। चालयित्वा स्वधर्माच्च तमेकं भूपतिं विभो ॥१८॥ कृतकृत्योऽस्मि तनयो गयायां पिण्डदो यथा। कृपालो तदिदं कार्यं साधयस्व ममाव्यय ॥१९॥ विज्वरस्तु ततो भूपः शासनं ते करोम्यहम्। श्रुत्वा ब्रह्मायमेनोक्तं पुनश्चिन्ता-

मा० टी० अ० १३

अब मुझे अपने काम पर जानेकी इच्छा नहीं है ॥१७॥ जब तक भूमंडल पर यह महावीर्यवान् राजा शासन करेगा हे प्रभो! इस राजा को जब मैं अपने धर्मसे चलायमान करा दूंगा तब कृतकृत्य होऊँगा जैसे गया में पिंड दान करने वाला पुत्र होता है हे कृपालु! आप मेरे इस कार्य को सिद्ध कर दीजिये तब मैं फिर शासन करूंगा यमकी यह बात सुन ब्रह्माजी बड़े शोच में डूब गये ॥१८-१९॥ और यम को अनेक प्रकार समझा कर कहने लगे हे यम! विष्णु धर्म में परायण राजाका निग्रह तू

नहीं कर सकता ॥२१॥ जो तू कोप के वश हो यही चाहता है तो चल मैं और तू दोनों विष्णुभगवान के पास चलें और उनके सामने सब कथा कह सुनायेंगे फिर जैसी उनकी आज्ञा हो ।२२। क्योंकि वे विष्णुभगवान सम्पूर्ण लोकों के कर्ता और धर्म के पालने वाले हैं वे हमारे दंडदाता, शास्ता, और नियम में चलाने वाले हैं ॥२३॥ हे नृप ! भगवान् की आज्ञा के विरुद्ध

वै० मा० १२४

परायणः ॥२०॥ तमुवाच पुनर्ब्रह्मा सान्त्वयन्बहुधाप्यमुम् । ब्रह्मोवाच ॥ न निग्राह्यस्त्वया राजा विष्णुधर्मपरायणः ॥२१॥ यदिच्छलयसे कोपाद्गच्छामो ह्यन्तिकं हरेः । निवेद्य सकलं तस्मै कर्म पाश्चत्तदीरितम् ॥२२॥ स एव कर्ता लोकस्य धर्मस्य परिपालकः । स च दण्डधरोऽस्माकं शास्ता कर्ता नियामकः ॥२३॥ न तदुक्तेऽस्ति प्रत्युक्तिरस्माकं विहिता नृप । राजोक्तेस्तु प्रत्युक्तिर्दृश्यते क्वापि भूतले ॥२४॥ इत्याश्वास्य यमं तेन साकं क्षीराम्बुधिं ययौ । ब्रह्मा तुष्टाव चिन्मात्रं निर्गुणं परमेश्वरम् ॥२५॥ सांख्ययोगैरद्वितीयमेकं तं पुरुषोत्तमम् । आविरासीत्तदा विष्णुर्ब्रह्मणा संस्तुतो हरिः ॥२६॥ प्रणामं चक्रतुस्तस्मै यमो ब्रह्मा च सत्वरम् । तामुवाच महाविष्णुर्मेघगम्भीरया गिरा

मा० टी० अ० १३

हम कुछ भी नहीं कर सकते और न भूमिपर राजा की भक्ति के विरुद्ध कुछ दिखाई देता है ॥२४॥ इस प्रकार यमको समझा उसे साथ ले ब्रह्माजी क्षीरसागर में गये और चिन्मात्र निर्गुणस्वरूप परमेश्वर अद्वितीय पुरुषोत्तम भगवान की सांख्ययोग से स्तुति करने लगे तब ब्रह्माकी स्तुति सुन विष्णुभगवान प्रगट हुए ॥२५-२६॥ तो यम और ब्रह्माने प्रणाम किया विष्णुभगवान

मेघ के समान गंभीर वाणी से कहने लगे ॥२७॥ तुम यहां क्यों आये हो क्या राक्षसों ने तुम्हें दुःख दियाहै ? यमका मुख मलीन क्यों हो रहाहै इसके कंधे क्यों झुके हुयेहैं ॥२८॥ हे ब्रह्मन् ! आप यह सब वृत्तान्त बताइये । तब ब्रह्माजी बोले हे श्रेष्ठ सेवक राजा के शासन में सब मनुष्य ॥२९॥ वैशाख के धर्मों को करके आपके विष्णुपद को प्राप्त करते चले जा रहेहैं

वं० मा० १२५

॥२७॥ कस्माद्युवामिहायातौ किं दुःखं दनुजैरभूत् । म्लानं यममुखं कस्मात्केन वा नतकन्धरः ॥२८॥ एतद्वदस्व मे ब्रह्मन्नित्युक्तश्चारुकञ्जजः । त्वद्दासवर्ये भूपाले भूमिं शासति वै नराः ॥२९॥ वैशाखधर्मनिरता यान्ति ते पदमव्ययम् । ततो यमपुरी शून्या तेन चातीव दुःखितः ॥३०॥ तेन युद्धं चकारासौ हन्तुं दण्डमथाददे । त्वच्चक्रेण पराभूतो यमावद्य ममान्तिकम् ॥३१॥ न च शक्ता वयं दण्डं त्वद्भक्तानां महात्मनाम् । तस्मात्त्वामेव शरणं वयं प्राप्ता महाविभो ॥ ३२ ॥ तस्माद्भूपं दण्डयित्वा पालयैनं यमं स्वकम् ॥ इत्युक्तः प्रहसन्प्राह ब्रह्माणं यममेव च ॥३३॥ लक्ष्मीं

इसी कारण यमपुरी शून्य होगई । इससे अत्यन्त दुःखी होकर ॥३०॥ यह यम राजा से युद्ध करने गया और उसको मारने के लिये दंड उठाया तब आपके चक्रने इसे परास्त कर दिया तो यह दुःखी हो मेरे पास आया ॥३१॥ हम भी आपके महात्मा भक्तों को दंड देने की सामर्थ्य नहीं रखतेहैं अतएव हे महाविभो ! हम आपकी शरण में आयेहैं ॥३२॥ इसलिये हे प्रभो ! उस राजा को दंड देकर आप अपने यम की रक्षा करिये ब्रह्माके ये वाक्य सुनकर विष्णुभगवान हँसे और ब्रह्माजी और यम से

मा० टी० अ० १३

बोले ॥३३॥ मैं लक्ष्मीजी तथा प्राण और देहका त्याग कर सकता हूँ श्रीवत्स कौस्तुभमणि तथा वैजयंतीमाला को भी त्याग सकता हूँ ॥३४॥ श्वेतद्वीप,वैकुण्ठ, क्षीरसागर, शेष और गरुड को छोड़ सकता हूँ परन्तु अपने भक्तको कदापि नहीं त्याग सकता ॥३५॥ ब्रह्माजी ! आप ही बताओ कि जिन्होंने मेरे लिये सम्पूर्ण भोग त्याग दिये,प्राण छोड़ दिये मुझ में ही अपनी

वापि परित्यक्ष्ये प्राणान्देहमथापि वा । श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां वैजयन्तीमथापि वा ॥३४॥ श्वेतद्वीपं च वैकुण्ठं क्षीरसागरमेव च । शेषं च गरुडं चैव न भक्तं त्यक्तुमुत्सहे ॥३५॥ विसृज्य सकलान्भोगान्मदर्थे त्यक्तजीवितान् । मदात्मकान्महाभागान्कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥३६॥ तस्मात्त्वद्दुःखशमने ह्युपायं कल्पयाम्यहम् । तस्य चायुर्मया दत्तमयुतं भूपते भुवि ॥३७॥ गतान्यष्टौ सहस्राणि तत्रेदानीं नरान्तक । आयुः शेषे तेन नीते मत्सायुज्युयं गतेऽपि च ॥३८॥ भविष्यति ततो राजा वेनो नाम दुरात्मवान् । स लुम्पति महाधर्मान्सर्वानेताञ्छ्रुतीरितान् ॥ ३९ ॥ तदा वैशाखधर्माश्च विच्छिन्नाः

आत्मा को लगा दिया उन्हें मैं कैसे छोड़ सकता हूँ ॥३६॥ अतएव हे यम ! मैं तेरे दुःख को दूर करने का उपाय बताता हूं उस राजा को मैंने दस सहस्र वर्ष की आयु दीहै ।३७। उसमें से आठ सहस्र बीत चुके अब दो सहस्र वर्षों की आयु भोगकर वह मेरी सायुज्य मुक्ति को प्राप्त हो जायगा ॥३८॥ तब एक वेन नाम का राजा बडा दुराचारी होगा,वह सब वेदोक्त धर्मों का लोपकर देगा ॥३९॥ तब वैशाख के धर्म भी नष्ट हो जायेंगे फिर अपने ही पाप से वेन जल जायगा ॥४०॥ फिर मैं पृथु का

धर्मों की स्थापना करूंगा और वैशाखोक्त प्रख्यात धर्म मनुष्यों से कराऊंगा ॥४१॥ जो मेरा भक्त है

रूप धारण करके पुनः धर्मों की स्थापना करूंगा और वैशाखोक्त प्रख्यात धर्म मनुष्यों से कराऊंगा ॥४१॥ जो मेरा भक्त है जिसने मुझमें ध्यान लगाया है और सब वस्तुएँ त्याग दी हैं ऐसा सहस्रों में कोई एक ही होता है उसी से वैशाखोक्त धर्म कहना चाहिये ॥४२॥ पृथ्वी पर मेरे इन धर्मों को विरले ही जानते हैं इस प्रकार हे यम! तेरे कार्य की सिद्धि हो जायगी तू

स्युर्न संशयः । स्वकृते नैव पापेन वेनो दग्धो भविष्यति ॥४०॥ पश्चादहं पृथुर्भूत्वा पुनर्धर्मान्प्रवर्तये ।
तदा जनेषु प्रख्यातान्वैशाखोक्तान्करोम्यहम् ॥ ४१ ॥ मद्भक्तो मद्गतप्राणो यस्तु विन्यस्तसंग्रहः ।
एकः सहस्रे भविता तस्य प्रख्यापयेदिमान् ॥ ४२ ॥ कश्चिदेव हि जानतु धर्मानेतान्क्षितौ मम ।
ततस्ते भविता कार्यं मा विषीद नरान्तक ॥४३॥ दापयिष्यामि ते भागं मासेऽस्मिन्माधवेऽपि
च । नरैः सर्वैश्च वैशाखधर्मनिष्ठैर्महात्मभिः ॥४४॥ भूपेनापि च कालेन खेदं शमयते न च ।
वीर्यशुल्कं तु ते भागं शत्रोर्भुङ्क्ते बलाधिकात् ॥४५॥ गृह्णन्गृह्णन्स्वकं भागं न भागी दुःखमर्हति ।

खेद मत कर ॥४३॥ वैशाख के धर्म में निष्ठ महात्माओं द्वारा इस वैशाख मासमें भी तुझे भाग प्राप्त होगा ॥४४॥ राजा से भी तेरा भाग मिलेगा तू खेद को छोड़ कर पराक्रम प्राप्त होने के योग्य बन तेरे भाग को वह राजा अपने बलकी अधिकता से ग्रहण करता है ॥४५॥ अपने अपने भाग को ग्रहण करता हुआ भागी दुःख के योग्य नहीं होता है जो मनुष्य पृथ्वी में तेरे उद्देश्य से प्रति दिन स्नान, अर्घ्य,जल, कुंभ, दही,अन्नादि का दान न करेंगे उनके वैशाख में किये हुए सब कर्म निष्फल

हो जायंगे ॥४६-४७॥ अतएव तू उस राजा के ऊपर क्रोध को त्याग करदे वह राजा तेरा भाग देगा क्योंकि वह मेरा अत्यन्त भक्त है और जो कोई प्राणी तेरा भाग देकर वैशाखोक्त धर्मों में प्रवृत्त हो उसके धर्म में तुम विघ्न मत करना, जो धर्म के पालन कर्त्ता तुम्हें छोड़ केवल मेरा ही भजन करें ॥४८-४९॥ उनको तुम मेरी आज्ञा से अवश्य दंड देना। उस राजासे तुम्हें

त्वामुद्दिश्य न कुर्वन्ति प्रत्यहं ये नरा भुवि ॥४६॥ स्नानं चार्घ्यं सोदकुम्भं दध्यन्नं चान्तिमे दिने । वैशाखे सकलं कर्म तेषां च विफलं भवेत् ॥४७॥ तस्मात्क्रोधं त्यज नृपे भागदे मत्परायणे । ये के चापि प्रकुर्वन्ति लोके ते भागदा नराः ॥४८॥ वैशाखोक्ते महाधर्मे तेषां विघ्नं च मा कुरु । मामेव ये यजन्त्यद्धा त्वां हित्वा धर्मपालकम् ॥४९॥ मदाज्ञया महाभाग तदा दण्डं च त्वं कुरु । नृपाद्भागं दापयितुं सुनन्दं प्रेषयामि च ॥५०॥ मच्छासनात्स वै गत्वा भागं ते दापयिष्यति । तिष्ठत्येवं यमे स्वस्थ सन्निधौ गरुडासनः ॥५१॥ सुनन्दं प्रेषयामास नृपं बोधयितुं विभुः । सोऽपि गत्वा बोधयित्वा पार्श्वं च पुनरागमत् ॥५२॥ इत्याश्वास्य यमं विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत । यमं स्वर्ग

भाग दिलाने के लिये मैं अभी सुनन्द को भेजता हूँ ॥५०॥ मेरी आज्ञा से वह वहां जाकर तुम्हें भाग दिलावेगा तब भगवान ने यम के सामने ही ॥५१॥ राजा को समझाने के लिये सुनन्द को भेज दिया जो जाकर राजा को समझा कर फिर भगवान के पास आगया ॥५२॥ ऐसे यमको आश्वासन देकर विष्णुभगवान वहीं अन्तर्धान होगये तथा ब्रह्मा भी यमको समझा कर

आता है ।५३। अत्यन्त विस्मित हो अपने अनुचरों सहित चले गये। यम भी कुछ प्रसन्न चित्त हो अपनी पुरी को चला गया

आज्ञा दे ।५३। अत्यन्त विस्मित हो अपने अनुचरों सहित चले गये। यम भी कुछ प्रसन्न चित्त हो अपनी पुरीको चला गया ॥५४॥ फिर विष्णुभगवान की आज्ञा से जैसे सुनन्द कह आया था वैसे ही वैशाख के धर्मों में परायण सभी मनुष्य यम का भाग देने लगे ॥५५॥ राजा ने सबसे कह दिया कि जो कोई धर्मराज का भाग नहीं देगा उसके वैशाख में किये कर्मों को यम-

सान्त्वयित्वा तमनुज्ञाप्य वेगतः ॥५३॥ अतिविस्मयमापन्नो ययौ धाम सहानुगैः । यमोऽपि स्वपुरीं प्रायात्किंचित्संहृष्टमानसः ॥५४॥ पश्चाद्विष्णोर्निदेशान सुनन्दपरिबोधितः । भागदाः सकला लोका ये वैशाखपरायणाः ॥५५॥ धर्मराज पुरस्कृत्यं येन कुर्वन्ति मानवाः । तेषां हि स्वयमादत्ते पुण्यं वैशाखसंभवम् ॥५६॥ कुर्याच्च प्रत्यहं स्नानं दद्यादर्घ्यं यमाय वै । वैशाखे सकलं पुण्यमन्यथा विफलं भवेत् ॥५७॥ सोदकुम्भं च दध्यन्न पौर्णमास्यां च माधवे । धर्मराजं समुद्दिश्य दातव्यं प्रथमं जनैः ॥ ५८ ॥ पश्चात्पितॄन्समुद्दिश्य गुरुमुद्दिश्य वै नरः । मधुसूदनमुद्दिश्य पश्चाद्देवं

राज स्वयं ले लेंगे ॥५६॥ अतः प्रति दिन यमके निमित्त स्नान और अर्घ्यादि करना चाहिये नहीं तो वैशाख के सब कर्म निष्फल हो जायंगे ॥५७॥ वैशाख की पूर्णमासी के दिन सबसे पहिले धर्मराज के लिये जलका घड़ा और दही तथा अन्नदान करना चाहिये ॥५८॥ फिर पित्रीश्वरों के निमित्त, गुरु के निमित्त, पीछे जनार्दन मधुसूदन भगवान के निमित्त ॥५६॥ शीतल जल, दही, अन्न, तांबूल, दक्षिणा और फल कांसे के पात्र में रखकर ब्राह्मण को अर्पण करे ॥६०॥ और मधुसूदन भगवान

की प्रतिमा बनवाकर मास धर्म के चलाने वाले गरीब ब्राह्मण को दे।६१। सम्पूर्ण पूजा की सामग्री से उसी धर्मवक्ता ब्राह्मण की पूजा करे, सुनन्द की आज्ञा पा राजा ऐसा ही करने लगा ॥६२॥ तत्पश्चात् राजा अपनी शेष आयु को पूरी कर यथेच्छ भोग भोग पुत्र पौत्रादि समेत वैकुण्ठ को गया ॥६३॥ जब वह राजा वैकुण्ठ धाम को चला गया तब वेन नामका एक महा

जनार्दनम् ॥५६॥ शीतलोदकदध्यन्न ताम्बूलं च सदक्षिणम्। सफलं कांस्यपात्रस्थं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥६०॥ दद्याच्च प्रतिमां दिव्यां मधुसूदनदेवताम्। मासधर्मप्रवक्त्रे च दद्यात् विप्राय सीदते ॥६१॥ तमेव धर्मवक्तारं पूजयेद्विभवैः स्वकैः। इति दिष्टः सुनन्देन पथा राजा चकार ह ॥६२॥ स नीत्वा त्वायुष शेषं भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान्। पुत्रपौत्रादिभियुक्तो जगाम हरिमन्दिरम् ॥६३॥ वैकुण्ठस्थे नृपे तस्मिन्वेनो राजाधमोऽभवत्। सर्वे धर्माश्च वैशाखधर्मा अपि विशेषतः ॥६४॥ दुरात्मना च तेनैव लुप्ता एव बभूविरे। न प्रख्याताः पुनर्भूमौ भूरिशो मोक्षहेतवः ॥६५॥ यः कश्चिन्नैव जानाति वैशाखोक्तानिमाञ्छुभान्। बहुजन्मार्जिते पुण्ये परिपक्व उपागते ॥६६॥

नीच राजा हुआ उसने सब धर्म और विशेष कर वैशाख के धर्मों का लोप कर दिया तथा मोक्ष के कारण धर्मों को प्राणी फिर भूल से गये ॥६४-६५॥ कोई भी वैशाखोक्त शुभ धर्मों को नहीं जानता था क्योंकि बहुत जन्मान्तर के पुण्य इकट्ठे होजाने पर ॥६६॥ प्राणियों की वैशाखोक्त धर्म करने में बुद्धि लगती है यह सुनकर राजा मैथिल ने पूछा महाराज! आपने पहिले यह

कथा कही थी कि दुरात्मा राजा वेन पहिले मन्वन्तर में हुआ ॥६७॥ और यह सूर्य वंश में इक्ष्वाकु के कुल में जन्मे। यह कथा मैंने आप से पहिले सुनी थी और अब आपने ऐसा कहा ॥६८॥ कि पूर्व राजा के वैकुण्ठ धाम जाने पर वेन राजा होगा। हे महामते श्रुतदेव ! मेरे इस संशय को दूर कीजिये ॥६९॥ श्रुतदेवजी बोले हे राजन् ! युग और कल्पों की व्यवस्था पुराण

वै० मा० १३१

वैशाखोक्तेषु धर्मेषु मतिरात्यन्तिकी भवेत्। मैथिल उवाच ॥ पूर्वमन्वन्तरस्थो हि वेनो राजा दुरात्मवान् ॥६७॥ अयं वैवस्वतस्थो हि राजा चेक्ष्वाकुनन्दनः। इति श्रुतं मया पूर्वमिदानीं चोच्यते त्वया ॥ ६८ ॥ अथ वैकुण्ठगः पश्चाद्वेनो राजा भविष्यति । इत्येतं संशयं छिन्धि श्रुतदेव महामते ॥ ६९ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ पुराणेषु च वैषम्ययुगकल्पव्यवस्थया । न चाप्रामाण्यशंका ते कथायां व्यत्यये क्वचित् ॥७०॥ गते दैनन्दिने कल्पे कथैषा शाश्वता शुभा । मार्कण्डेयेन मे प्रोक्ता सा चोक्ता तव भूपते ॥ ७१ ॥ तस्मान्न ख्यातिमायान्ति धर्मा वैशाख-

भा० टी० अ० १३

में विषयानुसार है अतः इस कथा की अप्रसंगता में तुम्हें शंका करना ठीक नहीं है ॥७०॥ जैसे २ जो कुछ जिन जिन कल्पों में शुभ कथायें हुई हैं और मार्कण्डेयजी ने मुझसे कही हैं वह सब मैंने तुमको सुनाई ॥७१॥ अतएव वैशाखोक्त धर्म बहुत

प्रसिद्ध नहीं विष्णुभगवान के कोई विरले भक्त इन धर्मों को जानते हैं ॥७२॥ इति श्री स्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे यमदुःखसान्त्वननाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

श्रुतदेवजी कहने लगे कि मेषकी संक्रांति में वैशाख में जो प्राणी प्रातःकाल स्नान करे और मधुसूदन भगवान की पूजा

संभवा । कश्चिदेव हि जानाति विरक्तो विष्णुतत्परः ॥७२॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे यमदुःखसांत्वनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

श्रुतदेव उवाच ॥ यः प्रातः स्नाति वैशाखे मेषसंस्थे दिवाकरे । मधुसूदनमभ्यर्च्य कथां श्रुत्वा हरेरिमाम् ॥१॥ स तु पापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं पदम् । वाच्यमानां कथां हित्वा योऽन्यां सेवेते मूढधीः ॥२॥ रौरवं नरकं प्राप्य पैशाची योनिमाप्नुयात् । अत्रैवोदारन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥३॥ पापन पावनं धर्म्यं सद्योवन्द्यं पुरातनम् । पुरा गोदावरीतीरे क्षेत्रे ब्रह्मेश्वरे शुभे ॥४॥

करके भगवान की इस मनोहर कथा को सुने ॥१॥ तो वह सब पापों से छूटकर विष्णुलोक को जाता है, जो दुर्बुद्धि होती हुई कथा छोड़ कर अन्य काम करने में लग जाते हैं ॥२॥ वे रौरवनरक में जाकर पिशाच की योनि पाते हैं यहां हम एक प्राचीन इतिहास कहते हैं ॥३॥ यह इतिहास पाप दूर करने वाला, पवित्र, करने वाला, धर्म वधक और तत्काल सेवनीय है, प्राचीन काल में गोदावरी के किनारे ब्रह्मेश्वरक्षेत्र में ॥४॥ ब्रह्मनिष्ठ बड़े परम हंस दुर्वासा ऋषि के दो शिष्य रहते थे। वे सदा उपनि-

षट्शास्त्रों में निष्ठावान् थे उन्हें किसी से कुछ अपेक्षा नहीं थी ।५। भीख मांगकर जो कुछ मिलता, उसीको खाकर पर्वत की गुहा में पड़े रहते थे । ये दोनों तीनों लोक में सत्यनिष्ठ और तपोनिष्ठ नामों से विख्यात हुए ॥६॥ इनमें सत्यनिष्ठ तो सदा भगवान् की कथा में तत्पर रहता था कोई श्रोता और वक्ता न होता तो वह मुनीश्वर स्वयं कर्मों में तत्पर रहता था परन्तु जब

दुर्वासशिष्यौ परमहंसौ ब्रह्मैकनिष्ठितौ । सदैवोपनिषद्विद्यानिष्ठितौ निरपेक्षितौ ॥५॥ भिक्षामात्राशिनौ पुण्यौ तौ गुहावासिनावुभौ । सत्यनिष्ठतपोनिष्ठाविति ख्यातौ जगत्त्रये ॥६॥ तयोर्मध्ये सत्यनिष्ठः सदा विष्णुकथापरः । श्रोतॄणामप्यभावे च व्याख्यातॄणां तथा नृप ॥७॥ तदा कर्मकलानित्याः करोत्यद्धा मुनीश्वरः । श्रोता चेदस्ति यः कश्चित्तस्मै व्याख्यात्यहर्निशम् ॥ ८ ॥ यदि व्याख्याति कश्चिद्वा पुण्यां विष्णुकथां शुभाम् । तदा संकुच्य कर्माणि शृणोति श्रवणे रतः ॥९॥ अतिदूरस्थतीर्थानि देवतायतनानि च । हित्वा कथाविरोधीनि तथा कर्माणि भूरिशः ॥१०॥ शृणोति च कथां दिव्यां श्रोतृभ्यो वक्ति वै स्वयम् । विना कथां न जानाति सेऽव्यमन्यन्नरश्वर ॥ ११ ॥

कोई श्रोता होता तो स्वयं कथा कहने लगता था ॥७-८॥ जब कोई उस पुण्यरूपी कथा की व्याख्या करता तो संपूर्ण कर्मों को छोड़ कथा सुनने लग जाता था ॥९॥ जो तीर्थ और देवताओं के मन्दिर अत्यन्त दूर थे उन विक्षेप करने वाले सम्पूर्ण तीर्थों को छोड़कर स्वयं दिव्य कथाओं का श्रवण करता और श्रोताओं को स्वयं कथा सुनाता था हे राजन् ! वह विना कथा

श्रवण किये अन्न ग्रहण नहीं करता था ।१०-११। जो वक्ता रोगसे पीडित होकर अपने घर कथा करता, वह मुनि कूप जल से स्नान करके उसकी कथा सुनता था ॥१२॥ कथा समाप्त होने पर अपने नित्य कर्म करता, जो मनुष्य ऐसे कथा सुनता है उसको जन्म के बन्धन नहीं व्यापते ॥१३॥ तथा विष्णु भगवान में सच्ची भक्ति उत्पन्न होती है और अरति दूर होजाती है,

व्याख्याति च गृहे स्वस्य वक्ता रोगाद्युपद्रुतः । कूपस्नानपरो भूत्वा शृणोत्येव कथां मुनिः ॥१२॥
कथायाश्च विरामे तु स्वकृत्यं साधयत्यलम् । कथां वै शृण्वतः पुंसो जन्मबन्धो न विद्यते ॥१३॥
सत्त्वशुद्धिस्ततो विष्णौवरतिश्चैव गच्छति । रतिश्च जायते विष्णौ सौहृदं चैव साधुषु ॥१४॥
निरञ्जनन्निर्गुणं ब्रह्म सद्यो हृद्यवरुध्यते । ज्ञानहीनस्य वै पुंसः कर्म वै निष्फलं भवेत् ॥१५॥
बहुधाचरितं चापि यथैवान्धकदर्पणम् । कर्माणि क्रियमाणानि बहुधा शोचितात्मभिः ॥१६॥
सत्त्वशुद्ध्यै भवन्त्येव सत्त्वशुद्ध्या श्रुतिं व्रजेत् । श्रुतेस्तु ज्ञानमासाद्य ज्ञानाद्धयनाय कल्पते ॥१७॥

विष्णु भगवान् में स्नेह और साधुमहात्माओं में सुहृदता उत्पन्न होती है ॥१४॥ निरंजन निर्गुण ब्रह्म उनके हृदय में आकर विराजते हैं, जो पुरुष ज्ञान हीन है उसके सब कर्म नष्ट होजाते हैं ॥१५॥ जैसे अन्धे के हाथ में दर्पण व्यर्थ होता है वैसे ही बिना ज्ञान के प्रायः किये हुए कर्म भी निष्फल होते हैं जो माहात्मा बहुधा कर्म करते हैं उन्हें सत्त्व बुद्धि मिलती है, सत्त्व शुद्धि से वेद में मति उत्पन्न होती है, वेद ज्ञान से ध्यान की उत्पत्ति होती है ॥१६-१७॥ ...

ज्ञान, ध्यानादि में लगे होते हैं परन्तु जहां विष्णुभगवान की कथा नहीं होती, जहां साधुमहात्मा न हों, वहाँ यदि साक्षात् गङ्गाजी का किनारा भी हो तो भी त्याग दें, जिस देशमें तुलसी न हो अथवा विष्णुजी का मन्दिर न हो, जहां विष्णुभगवान की कथा न हो वहां पर मरा हुआ प्राणी अंधतामिस्रनरक में पड़ता है। जिस ग्राम में विष्णुजी का मन्दिर अथवा काला मृग

वै०

भा०

बहुधा श्रवणं ध्यानं मननं श्रुतिचोदितम्। यत्र विष्णुकथा नास्ति यत्र साधुजना न हि ॥१८॥ साक्षाद्गङ्गातटं वापि त्याज्यमेव न संशयः। यद्देशे तुलसी नास्ति वैष्णवं धाम वा शुभम् ॥१९॥ यत्र विष्णुकथा नास्ति मृतस्तत्र तमो व्रजेत्। यद्ग्रामे वैष्णवं धाम नास्ति कृष्णमृगोऽपि वा ॥२०॥ यत्र विष्णुकथा नास्ति साधवो वा तदाश्रयाः। मृतस्तत्र पुमान्क्षिप्रं श्वानयोनिशतं व्रजेत् ॥२१॥ विचार्योपनिषद्विद्यामिति निश्चित्य वै मुनिः। सदा विष्णुकथासक्तो विष्णुस्मृतिपरायणः॥२२ न किंचिदधिकं जातु मन्यते श्रवणात्परम्। इतरस्तु तपोनिष्ठः कर्मनिष्ठो दुराग्रही ॥२३॥ न

मा०

टी०

न हो ॥१८-२०॥ जहां विष्णु की कथा नहीं होती, जहां साधु महात्मा न हो, वहां का मरा हुआ प्राणी सौ जन्म तक कूकर योनि पाता है ॥२१॥ उपनिषदों के विचार से उस मुनीश्वर ने यह बात निश्चय करली अतः सदा विष्णु की भक्ति में तत्पर रहे और विष्णु की कथा श्रवण करे ॥२२॥ कथा सुनने से अधिक और किसी काम को न माने और दूसरा जो तपोनिष्ठ था वह बड़ा दुराग्रही तथा कर्म निष्ठ था ।२३। न तो स्वयं कथा कहता न सुनता था और होती हुई कथाको छोड़ तीर्थ स्नान

के लिये चला जाता था ॥२४॥ हे राजन् ! तीर्थ पर होती हुई कथा को इस डर से छोड़ देता था कि कहीं तप में विघ्न न हो ॥२५॥ श्रोता और वक्ता कोई भी उस कर्मनिष्ठ के निकट होकर गृहकार्य के लिये नहीं निकलता था ॥२६॥ वह दुरात्मा दुर्बुद्धि ऐसे ही समय बिताता था न जिह्वा से विष्णु कथा कहता था न कानों से सुनता था ॥२७॥ विष्णुभगवान की कथा

व्याख्याति स्वयं वापि न शृणोति च सत्कथाम् । वाच्यमानां कथां हित्वा तीर्थस्नानाय गच्छति ॥२४॥ तीर्थेऽपि च प्रवृत्तायां कथायां भूमिपालक । कर्मलोपभयाद् दूरं याति चाञ्चल्यशङ्कितः ॥२६॥ व्रजन्ति गृहकृत्यार्थं सगमात्परतो जनाः । न श्रोतारो न वक्तारस्तस्य पार्श्वे तू कर्मिणः ॥२५॥ दुरात्मनस्तु दुर्बुद्धेः काल एवं क्षयं गते । जिह्वां श्रुतिं च न क्वापि न प्राप्ता हि कथा विभोः ॥२७॥ अश्रोतृत्वादवक्तृत्वाद्दुर्बुद्धित्वाद् दुराग्रहात् । पश्चात्पञ्चत्वमासाद्य सद्यो धर्मेण वै मुनिः ॥२८॥ पिशाचोऽभूच्छमीवृक्षे छिन्नकर्णाह्वयो बलः निराश्रया निराहारः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ॥२६॥ एवं वै खिद्यमानस्य समा दिव्यायुता गताः । नापश्यत्स्वस्य त्रातारं निराहारोऽतिदुःखितः ॥३०॥

न सुनने से तथा अपनी मूढता और दुराग्रह से जब उसने अपना शरीर छोड़ा ॥२८॥ तब वह शमी के वृक्षपर छिन्नकर्ण नाम का महाबलवान् पिशाच हुआ, आश्रय हीन क्षुधा से व्याकुल हो उसका कण्ठ ओष्ठ और तालु सूख गये ॥२६॥ ऐसे ही अत्यन्त दुःख भोगते २ उसे दशसहस्त्र वर्ष बीत गये कहीं भी उसे अपना कोई रक्षक नहीं दिखाई देता था । भूख से व्याकुल

अत्यन्त दुःखी ॥३०॥ हो वह अपने किये कर्मों पर विचार करता हुआ उन्मत्त की तरह घूमने लगा भूख के मारे इधर उधर भटकता रहा कहीं भी निवृत्ति न हुई ॥३१॥ उस अकृतात्मा की देह पर पवन अग्नि के समान लगता था जल कालाग्नि के तुल्य और फल पुष्पादि विषके सदृश मालूम होते थे ॥३२॥ इस प्रकार उस दुर्बुद्धि कमठ को कहीं भी सुख प्राप्त न हुआ इसी

स्वकृतं चिन्तयानस्य मत्तोन्मत्त इवाभ्रमत् । क्षुधया पर्यटन् वापि निवृत्तिं नाप मूढधीः ॥ ३१ ॥ कृशानुसदृशो वायुरङ्गं स्पृष्ट्वाऽकृतात्मनः । कालाग्नितुल्या आपश्च फलपुष्पादिकं विषम् ॥३२॥ न क्वापि सुखमापेदे कर्मठो दीनधीरयम् । एवं व्यससिते तस्मिन्नरण्ये जनवर्जिते ॥३३॥ कथया रहिते क्षेत्रे स्वाश्रये साधुवर्जिते । दैवादायात् सत्यनिष्ठस्तदा पैठीनसीं पुरीम् ॥३४॥ गच्छन्मार्गे ददर्शासौ छिन्नकर्णं बहुव्यथम् । दृष्ट्वात्मानं द्रावयन्तं रुदन्तं क्षुधयातुरम् ॥३५॥ माभैषोति समाभाष्य कोऽसीत्याह मुनीश्वरः । दशेदृशी च कस्मात्ते न ते दुःखमतः परम् ॥३६॥ इत्याश्वस्तो-

प्रकार वह उस सुनसान बन में फिरता था ॥३३॥ साधु सङ्ग तथा कथा से रहित आश्रम स्थान में वह भटकता रहा कदाचित् दैव योग से सत्यनिष्ठ पैठीनसी पुरी में आया ॥३४॥ मार्ग में दुःख से पीडित छिन्न कर्ण नाम पिशाच को देखा वह क्षुधा से आतुर अपनी आत्मा को द्रवित करता हुआ बुरी तरह से रोता था ॥३५॥ उसे देख मुनीश्वर कहने लगे-डरे मत, तू कौन है, तेरी यह दशा कैसे होगई, अब से आगे तुझे दुःख नहीं होगा ॥३६॥ जब सत्यनिष्ठ ने ऐसा आश्वासन दिया तो छिन्न

कर्ण अत्यन्त व्याकुल हो कहने लगा-हे प्रभो! मैं दुर्वासा का शिष्य तपोनिष्ठ नामका यती हूँ ॥३७॥ मैं ब्रह्मेश्वरक्षेत्र का निवासी बड़ा दुराग्रही कर्म निष्ठ था। कर्मों के लोप हो जाने के भय से मैंने अपनी मूर्खता और अपने दुर्बुद्धि से ॥३८॥ महात्माओं की होती हुई विष्णु कथा का आदर नहीं किया और कर्मों को काटने वाली कथा मैंने श्रोताओं को कभी नहीं

ऽमुनाच्छिन्नकर्णः प्राहातिविह्वलः। तपोनिष्ठोयतिरहं शिष्यो दुर्वाससः प्रभो ॥३७॥ ब्रह्मेश्वर-क्षेत्रवासी कर्मनिष्ठो दुराग्रही। कर्मलोपभयान्मौढ्यान्मया दुर्बुद्धिना मुने ॥३८॥ साधुभिर्वाच्य-मानापि नादृता विष्णुसत्कथा। व्याख्याता च श्रोतृभ्यः कथा कर्मनिकृन्तनी ॥३९॥ तेन कर्म विपाकेन महताहं मृतिं गतः। छिन्नकर्णोऽभवं नाम्ना पिशाचो दुःखविह्वलः ॥४०॥ न पश्यामि च त्रातारं दुःखादस्मात्कथञ्चन। तव दृष्टिपथं यातो दिष्ट्याहं गतकल्मषः ॥४१॥ अद्य मे देवता-स्तुष्टा गुरवः साधवश्च ये। हरिश्च मे प्रसन्नोऽभूद्यतस्ते दर्शनं मम ॥४२॥ पपात पादयोर्भूमौ

सुनाई ॥३९॥ उसी कर्म के घोर परिणाम से मेरी मृत्यु हुई और मैं छिन्न कर्ण नामक पिशाच बन दुःख से अत्यन्त व्याकुल हुआ हूँ ॥४०॥ मुझे इस घोर दुःख से छुडाने वाला कोई नहीं दिखाई देता मार्ग में जाते हुए तुम्हें देखकर मेरा भाग्य फिर गया मेरे पाप जाते रहे ॥४१॥ आज मेरे ऊपर सब देवता, गुरु और साधु, सन्तुष्ट हैं आज हरि भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हैं, जो आपके दर्शन हुए हैं ॥४२॥ इस प्रकार 'त्राहि त्राहि' छिन्नकर्ण बुरी तरह रुदन करता उसके चरणों पर गिर पड़ा तो महा

यशस्वी सत्यनिष्ठ को बहुत दया आई ॥४३॥ उन्होंने उसे दोनों हाथों से पकड़ के उठा लिया और अपने सुकृत का पुण्य

यशस्वी सत्यनिष्ठ को बहुत दया आई ॥४३॥ उन्होंने उसे दोनों हाथों से पकड़ के उठा लिया और अपने सुकृत का पुण्य दिया ॥४४॥ वैशाख मासके माहात्म्य को क्षण भर सुनने का फल दिया । जिससे उसके पाप तत्काल दूर होगये ॥ ४५ ॥ पिशाच की देह छोड़ दिव्य देह धारण कर दिव्य विमान पर बैठ महामुनि को प्रणाम कर ॥४६॥ आमन्त्रण और परिक्रमा

त्राहि त्राहीति वै रुदन् । ततस्तु कृपयाविष्टः सत्यनिष्ठो महायशाः ॥४३॥ दोर्भ्यामुत्थापयामास शन्तमाभ्यां मुनीश्वरम् । ततस्त्वप उपस्पृश्य ददौ पुण्यमनुत्तमम् ॥४४॥ वैशाखमासमाहात्म्यश्रवणस्य मुहूर्तजम् । तेन पुण्यप्रभावेण सद्यो ध्वस्ताखिलाशुभः ॥४५॥ पिशाचदेहान्निर्मुक्तो दिव्यदेहधरोऽभवत् । दिव्य विमानमारुह्य तं प्रणम्य महामुनिम् ॥४६॥ आमंत्र्य च परिक्रम्य यमौ विष्णोः परं पदम् । सत्यनिष्ठस्ततो धीमान् ययौ पैठीनसीं पुरीम् ॥४७॥ माहात्म्यश्रवणस्यैवं चिन्तयानः पुनः पुनः ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ यत्र विष्णुकथा पुण्या शुभा लोकमलापहा ॥४८॥ तत्र सर्वाणि तीर्थानि क्षेत्राणि विविधानि च । यत्र प्रवहते पुण्या शुभा विष्णुकथापगा ॥४९॥ तद्देशवासिनां

करके विष्णु लोक को गया तब सत्यनिष्ठ पैठीनसी पुरी को गया ।४७। तथा बारम्बार माहात्म्य श्रवण की चिन्ता करने लगा श्रुतदेवजी बोले जहां शुभ फल देने वाली सब लोक के पाप दूर करने वाली विष्णुभगवान की कथा होती है ।४८। वहां सब तीर्थ और अनेक क्षेत्र आ जाते हैं जहां विष्णुभगवान की कथा रूपी नदी बहती है उस देश के निवासियों के हाथ में मुक्ति

रहती है इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥४९-५०॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे कथा प्रशंसायां पिशाच मुक्ति प्राप्तिर्नाम चतुर्दशोध्यायः ॥ १४ ॥

श्रुतदेवजी बोले—हे राजन्! मधुसूदन भगवान के प्यारे वैशाख माहात्म्य का फल और भी सुनो। यह पाप नाशक है ॥१॥ प्राचीन काल में पांचाल देश में पुण्यशील और बुद्धिमान् भूरियश का पुत्र पुरुयश था ॥२॥ पिता के मरने पर वही

मुक्तिः करसंस्था न संशयः ॥५०॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे कथा-प्रशंसायां पिशाचमुक्तिप्राप्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

श्रुतदेव उवाच ॥ भूयः शृणुष्व भूपाल माहात्म्यं पापनाशनम्। वैशाखस्य च मासस्य वल्लभस्य मधुद्विषः ॥१॥ पुरा पाञ्चालदेशे तु राजा पुरुयशाभवत्। तनयो भूरियशसः पुण्यशीलस्य धीमतः ॥२॥ पितर्युपरते भूप राज्यस्थो धर्मलालसः। शौर्यौदार्यगुणोपेतो धनुर्विद्याविशारदः ॥३॥ शशास्र पृथिवीं सर्वां स्वधर्मेण महामतिः। पूर्वजन्मजलादानाद्दोषेण महता नृनः ॥४॥ संपद्धानिमवापासौ

राजा हुआ। यह बहुत शूर वीर और उदार था, धनुर्विद्या में बड़ा प्रतापी था ॥३॥ धर्म पूर्वक पृथ्वी का शासन करता था परन्तु पूर्व जन्म में इसने जल दान नहीं किया था। इस पाप के मारे कुछ काल में इसकी सब संपत्ति नष्ट होगई, महा रोग से पीड़ित होकर घोड़े हाथी सब मर गये ॥४-५॥ तत्पश्चात् राज्य में ऐसा दुर्भिक्ष पड़ा कि सब मनुष्य नष्ट होगये तथा राजा

और कोष हाथी द्वारा भक्षण किये हुए कैथ के समान होगयेहैं जिससे राजा को बलहीन जान उमे जीतने का निश्चय कर ॥७॥ उसके बैरी सैकड़ों राजा आए और उस पांचाल के राजा को युद्ध में जीत लिया ॥८॥ राजा परास्त होकर पहाड़ की कन्दरा में घुस गया । शिखिनी रानी और धात्र्यादिगण साथ थे ॥९॥ वहां का मार्ग और कोई नहीं जानता था राजा ने बड़े

वै० मा० १४१

कालेन कियताऽनघ । हया गजा मृतिं याता मद्द्रोगेण पीडिताः ॥५॥ दुर्भिक्षमतुलं चासीन्निर्मानुष्यविधायकम् । राज्यं कोशस्तदा चासीद्गजभुक्तकपित्थवत् ॥६॥ बलहीनं नृपं ज्ञात्वा कोशराष्ट्रविवर्जितम् । तं जेतुमेष समय इति निश्चितमानसाः ॥७॥ आजग्मुः शतशो भूप रिपवस्तस्य भूपतेः । जिग्युयुर्द्धेन तं भूपं पाञ्चालविषयाधिपम् ॥८॥ पराजितस्ततो राजा विवेश गिरिगह्वरे । शिखिन्या भार्यया सार्कं धात्र्यादिगणसंयुतः॥९॥ अज्ञातपद्धतिश्चान्यैर्बहुदुःखसमाकुलः। त्रिपञ्चाशत्समाश्चैव नीतास्तेन विलीयता ॥१०॥ चिन्तयामास भूपालः किमेतदिति भूरिशः । कर्मणा जन्मशुद्धोऽहं मातृपितृहिते रतः ॥११॥ गुरुभक्तः सदाब्रिएयो ब्रह्मण्यो धर्मतत्परः । दयावान्

भा० टी० अ० १५

कष्ट से व्याकुल हो तिरेपन वर्ष वहीं व्यतीत किये ॥१०॥ तब राजा के मन में चिन्ता उत्पन्न हुई कि मेरी ऐसी दशा किस कर्म से हुई, मैं कर्म और जन्म से तो शुद्ध हूँ सदैव माता पिता का हित साधन करता रहा हूँ ॥११॥ मैं सदा गुरु के प्रति भक्ति,ब्राह्मणों की सेवा तथा धर्म में तत्पर रहा हूं,सम्पूर्ण प्राणियों पर दयावान,देव भक्त और जितेन्द्रिय हूं ॥१२॥ मेरा

भाई, पुत्र, सुहृद, हितकारी कोई नहीं है मैंने उत्तम कुल में जन्म लिया मेरे दया पौरुष भी न जाने कहां गये ॥१३॥ यह घोर दुःखदायक दरिद्र किस कर्म द्वारा उपस्थित हुआ, किस कर्म से मेरी पराजय हुई और किस कर्म से मैं वनवास दुःख भोग रहा हूं ॥१४॥ ऐसी चिन्ता करता हुआ खिन्न बुद्धि राजा अपने गुरु का स्मरण करने लगा तब याज और उपयाज नाम के

वै० मा०

सर्वभूतेषु देवभक्तो जितेन्द्रियः ॥१२॥ न भ्राता मे न पुत्रो मे न च मे सुहृदो हिताः । दयापौरुष-विख्याताः कुलिनस्यापि मे कुतः ॥१३॥ केन वा कर्मणा चासीद्दारिद्र्यं भूरिदुःखदम् । केन वापजयो मेऽद्य केन वा वनवासिता ॥१४॥ इति चिन्ताकुलो राजा गुरुं सस्मार खिन्नधीः । याजोपयाजकौ नाम सर्वज्ञौ मुनिसत्तमौ ॥१५॥ आजग्मतुर्मुनीन्द्रौ तौ राज्ञाहूतौ महामती । तौ दृष्ट्वा सहसोत्थाय राजा पाञ्चालवल्लभः ॥१६॥ ननाम शिरसा भक्त्या प्रवासेनातिपीडितः । राजचिह्नविहीनश्च केनाप्यज्ञातपद्धतिः ॥१७॥ तूष्णीं तस्थौ मुहूर्तं हि पतित्वा भुवि पादयोः । दोर्भ्यामुत्थापितस्ताभ्यां

दो मुनीश्वर सर्वज्ञाता ॥१५॥ राजा के स्मरण करने पर आ पहुंचे। राजा इन्हें देख सहसा उठ खड़ा हुआ ॥१६॥ और भक्ति पूर्वक शिर झुकाए वन में वास से पीडित राजचिन्ह से हीन वन के मार्ग को न जानकर ॥१७॥ थोड़ी देर तक चुपचाप खड़ा रहा। फिर उनके चरणों पर गिर पड़ा। तब दोनों मुनियों ने अपने हाथों से राजा को उठाया और आंसु पोंछे तब वन के फलादि से राजा ने इनका विधिवत पूजन किया ॥१८॥ इस प्रकार जब वे दोनों ऋषि सुख पूर्वक बैठ गए तब शिर झुका

कर राजा ने प्रश्न किया ।१९। हे मुनिवरो ! मेरे दुःख का कारण कहिये । मैं कर्म और जन्म से तो शुद्ध हूँ पित्रीश्वर और देवता सब का हित करता रहा हूँ ॥२०॥ पाप से डरता रहा हूँ प्राणियों पर दयावान् और गुरु के प्रति भक्ति रखने वाले मुझ को दरिद्र का क्या कारण है मेरा कोष क्यों नष्ट होगया, शत्रुओं ने मुझे कैसे जीत लिया ॥२१॥ मैं वन में वास करता हूँ,

वै० मा० १४३

परिमृष्टाश्रुलोचनः ॥१८॥ विधिवत्पूजयामास वन्यैरेवार्हणैः शुभैः । सूपविष्टौ तु तौ विप्रौ पप्रच्छानतकन्धरः ॥१९॥ ब्राह्मणौ वदतं दुःखकारणं च क्षितीशितुः । कर्मणा जन्मशुद्धस्य पितृदेवप्रियस्य च ॥२०॥ पापभीरोः कृपालोश्च गुरुभक्तस्य मे कुतः । दारिद्र्यं कोशहानिश्च रिपुभिश्च पराभवः ॥२१॥ कस्मादरण्यवासश्च कुत एकाकिता मम । न पुत्रौ न च मे भ्राता न हिताः सुहृदश्च मे ॥२२॥ दुर्भिक्षं वा कुतश्चासीद्देशे मत्पालितेऽवे । एतद्विस्तार्य मे ब्रूतं कारणं मुनिपुङ्गवौ ॥२३॥ इत्युक्तौ तौ मुनिश्रेष्ठौ भूपेनात्यन्तदुःखिना । प्रत्यूचतुर्महात्मनौ किंचिद्ध्यानपरायणौ ॥२४॥ याजोपयाजावूचतुः ॥ शृणु भूप प्रवक्ष्यावस्तव दुःखस्य कारणम् । पुरा भूप

मा० दी० अ० १५

मैं अकेला क्यों रह गया हूं मेरे पुत्र पौत्र भाई बन्धु हित सुहृद कोई नहीं रहा ॥२२॥ मैंने निष्पाप हो राज्य का पालन किया, फिर भी अकाल कैसे पड़ा, हे मुनिपुंगव ! यह सब कथा विस्तार पूर्वक मुझसे कहिये ॥२३॥ राजा के अत्यन्त दुःख भरे हुए ऐसे वचन सुन थोड़ी देर ध्यान कर वे दोनों मुनि कहने लगे ॥२४॥ याज और उपयाज बोले-हे राजन् सुन, हम तेरे दुःख

का कारण बताते हैं तू पहिले दस जन्मों में अत्यन्त घोर पापी व्याध रहा है ॥२५॥ तब तू बहुत निष्ठुर संपूर्ण जीव मात्र की हिंसा में तत्पर रहता था धर्म, इन्द्रियदमन और शांति तुझमें लेशमात्र भी न थी।२६। तेरी जिह्वा से कभी विष्णुभगवान का नाम उच्चारण भी नहीं होता था! तूने कभी मन में गोविन्दचरणारविन्द का ध्यान नहीं किया ॥२७॥ न कभी

महापापी व्याधस्त्वं दशजन्मसु ॥२५॥ निष्ठुरः सर्वलोकानां सदा हिंसापरायणः। धर्मलेशाकरः क्वापि न दमो न च वै शमः ॥२६॥ न जिह्वा वक्ति नामानि विष्णोर्वापि कथंचन। चेतः स्मरति गोविन्दचरणाम्बुरुहद्वयम् ॥२७॥ न प्रणामः कृतः क्वापि शिरसा परमात्मने। नवजन्मानि ते भूप गतान्येवं दुरात्मनः ॥२८॥ दशमे जन्मनि प्राप्ते व्याधस्त्वं सह्यभूधरे। निष्ठुरः सर्वलोकानां नराणां त्वं नरान्तकः ॥२९॥ दयाहीनः शस्त्रजीवी सदा हिंसापरायणः। निर्गुणः सकलत्रस्त्वं मार्गपीडाकरः शठः ॥३०॥ प्रजानां गौढदेश्यानां राक्षसो मानुषाशनः। एवं चाब्दान्यतीतानि

परमात्मा को नमस्कार किया हे राजन्! ऐसे ही पाप करते २ तेरे नौ जन्म बीतगये ॥२८॥ फिर दशवें जन्म में तू सह्यादि पर व्याध का जन्म धारण कर और भी निष्ठुर हुआ सब प्राणियों के वध करने में यमराज के समान था ॥२९॥ दयाहीन, शस्त्रद्वारा जीविका करने वाला सदा हिंसा में लीन, निर्जन मार्ग के पथिकों को कष्ट दायक, शठ ॥३०॥ गौड देश के प्रजा जनों का मांस भक्षण करता अपने हित की बातें न जानते हुए समय बिताया करता था ॥३१॥ रे दया हीन दुर्बुद्धि! सग

और पक्षियों के छोटे २ बच्चों का वध करने के कारण तेरे इस जन्म में सन्तान नहीं हुईहै ॥३२॥ तूने विश्वासघात किये जिससे इस जन्म में तुझे सहोदर भाई नहीं मिले तूने मार्ग में यात्रियों को बड़े कष्ट दिये इस कारण से तेरा कोई मित्र नहींहै ॥३३॥ साधुओं का तिरस्कार करने से तुझे शत्रुओं ने पराजित किया तूने कभी दान नहीं दिया इस दोष से तेरे घर में दरिद्र

नैजं हितमजानतः ॥३१॥ बालापत्यमृगाणां च पक्षिणां च वधात्तव । दयाहीनस्य दुर्बुद्धेर्जन्मन्यस्मिन्नपुत्रता ॥३२॥ विश्वासघातकत्वेन भ्रातरो नैव सोदराः । मार्गपीडाकरत्वेन सुहृज्जनविवर्जितः ॥३३॥ साधूनां च तिरस्काराच्छत्रुभिस्ते पराजयः । कदाप्यदत्तदोषेण दारिद्र्यं पतितं गृहे ॥३४॥ सदैवोद्वेगकारित्वात्प्रवासस्ते दुरासदः । सर्वेषामप्रियत्वाच्च दुःखमत्यन्तदुःसहम् ॥३५॥ निराहारोऽप्यतः पूर्वं सदा क्रूरेण कर्मणा । तस्माद्राज्यापहारस्ते जन्मन्यस्मिन्महामते ॥३६॥ अथ ते सत्कुलीनत्वे हेतुं चापि ब्रवीम्यहम् । यदाभूगौडदेशीयो ह्यन्तिमे व्याधजन्मनि ॥३७॥ स्वकर्मनिरते क्रूर

आयाहै ॥३४॥ सदा उद्वेग कराने से तुझे देश निकाला हुआ सबका अहित करने से तुझे अन्यत्व दुःसह दुःख भोगना पड़ा ॥३५॥ पूर्व जन्मों में सदा क्रूर कर्म करने से अब तुझे भोजन भी नहीं मिलताहै इन सभी कर्मों द्वारा इस जन्म में तेरा राज्य छिन गयाहै ॥३६॥ अब हम तेरे सत्कुल में जन्म लेने का कारण बतातेहैं जब दशवें जन्म में तू गौड़ देश में था तब ॥३७॥ तू अपने घोर दुष्कर्म में प्रवृत्त था और कन्टकमय वन में बड़ी निर्दयता से सब पथिकों को बड़ा कष्ट दिया

करता था ॥३८॥ उसी समय धूपसे व्याकुल बड़े धनवान् दो वैश्य और वेदवेदांग के ज्ञाता कर्षणनाम मुनि वहां आए॥३६॥ शिर पर जटा देह पर छाल के वस्त्र हाथ में कमंडलु लिये हुए इन्हें आते तू हाथ में धनुष ले मार्ग रोक कर खड़ा हो गया ॥४०॥ बाण मार कर तूने दोनों वैश्यों के शरीर छिन्न भिन्न कर दिये और एक वैश्य को मार कर सब धन तूने

विपिने कण्डकाविले । तिष्ठत्येवं दयाहीने सर्वभूतान्तके पथि ॥३८॥ वैश्यावाजग्मतुर्दिव्यौ धनाढ्यौ धर्मपीडितौ । मुनिश्च कर्षणो नाम वेदवेदाङ्गपारगः ॥३६॥ जटाचीरधरः पुण्यः कमण्डलुपरिग्रहः। तान् दृष्ट्वा धनुरादाय मार्गं रुद्ध्वा व्यवस्थितः ॥४०॥ अनुद्रुत्य शरी वैश्यौ कृत्वा च्छिन्नशरीरकौ। तयोरेकं च त्वं हत्वा गृहीत्वाखिलतत्पणम् ॥४१॥ अपरं हन्तुमुद्युक्ते स दुद्राव भयाद्द्रुतम्। पर्णं गुल्मे विनिक्षिप्य भीतः प्राणपरीप्सकः ॥४२॥ कर्षणोपि मुनिः शीघ्रं व्याधान्मृतिविशङ्कया। आतपे धावमानः सन् तृषाघर्मप्रपीडितः ॥४३॥ मूर्छामाप गलत्स्वेदः संज्ञामात्रावशेषितः। विहायैनं

छीन लिया ॥४१॥ जब तू दूसरे को मारने के लिये तैयार हुआ तो वह डरके मारे भाग गया और अपने प्राणों की रक्षा के निमित्त सब धन को कहीं लता पत्तों में फेंक गया ॥४२॥ तब कर्षण मुनि भी व्याध के हाथों से मृत्यु की शंका कर धूप में भागे तो तृषा और धूप से व्याकुल हो मूर्छित हो गिर पड़े पसीना टपकने लगा केवल संज्ञामात्र शेष रह गई वैश्य प्राणों की रक्षा के निमित्त ऋषि को वहीं छोड़ भाग गया ॥४३-४४॥ तब तूने मार्ग में मूर्छित पड़े ब्राह्मण से पूछा धन कहां फेंका है

रक्षा के निमित्त ऋषि को वहीं छोड़ भाग गया ॥४३-४४॥

और वह वैश्य कितनी दूर गया है ॥४५॥ और थके हुए ब्राह्मण को उठाने का उद्योग करने लगा उसे चेत कराने के लिये तूने कानों में फूंक मारी ॥४६॥ तथा कृमि और कीचड़ मिले हुए गड्ढे के जल से उसके नेत्र धोए और पंखे से उसको पवन करने लगा ॥४७॥ इस प्रकार मुनि को चेत करा स्वस्थचित्त होजाने पर तू कहने लगा हे मुने! तुम शंका मत करो इस वनमें

दुद्रुवे च वैश्यो जीवनतत्परः ॥४४॥ त्वं तावनु द्रुतौ दृष्ट्वा मूर्छितं पथि भूसुरम्। पणं कुत्र विनिक्षिप्तं कियद्दूरं गतो वणिक् ॥४५॥ इति पृष्टं द्विजं श्रान्तमुज्जीवयितु मुद्यतः। फूत्कृत्य कर्णयोस्तस्य चकार स्मृतिकारिणम् ॥४६॥ पल्वलस्थोदकेनैव कृमिकर्दमसंयुजा। नेत्रे संमृज्य श्रान्तस्य पर्णैः संवीज्य तन्मुखे ॥४७॥ ससंज्ञं च नुनिं कृत्वा त्वमात्थ स्वस्थमानसः। मा शङ्का ते मुने कार्या मत्तः शस्त्रभृतो वने ॥४८॥ निष्किञ्चनः सुखी लोके कुतस्ते भयमुल्बणम्। भिक्षापात्रेण जीर्णेन न मे किंचिद्भविष्यति ॥४९॥ एतावद्वद मे विद्वन् वणिक्कुत्र पलायितः कुत्र गुल्मे धनं क्षिप्तं तेन शीघ्रं पलायता ॥५०॥ अन्यथा त्वां हनिष्यामि यदि मिथ्या वदिष्यसि ॥ कर्षण उवाच ॥ धर्म

जब तक मैं शस्त्र धारण किये हूँ तुम्हें किसी बात का डर नहीं ॥४८॥ निर्धन मनुष्य संसार में सदा सुखी रहते हैं फिर तुम क्यों डरते हो तुम्हारे टूटे पात्र और फटे वस्त्रों से मुझे क्या लाभ होगा ॥४९॥ हे मुने! तुम यह बताओ कि वह वैश्य कहां भाग गया और भागते समय अपने धन को किस जगह फेंक गया ॥५०॥ जो तुम ठीक न बताओगे तो मैं तुम्हें मार डालूंगा

कर्षण बोले—वह वैश्य धनको तो इन वृक्षों में फेंक गया है और स्वयं इधर भाग गया है ॥५१॥ अपने प्राणों की रक्षा के निमित्त ऋषिने डरके मारे कहा व्याध ने कहा हे विप्र ! तुम निडर हो सुखपूर्वक चले जाओ ॥५२॥ यहाँ से थोड़ी दूर पक्के तालाब में निर्मल जल है वहां जल पीकर परिश्रम दूर कर अपने गांव चले जाओ ॥५३॥ अभी राजा के कर्मचारी वणिक्

वै० गुल्मे विनिक्षिप्तं मार्गादस्मात्पलायितः ॥५१॥ इति प्राह भयात्सोऽपि पृष्टः प्राणपरीप्सया । गच्छ विप्र सुखं मार्गं मत्तो भीतिं विहाय च ॥५२॥ इतोऽविदुरे सलिलं तडागे वर्तते शुभम् । तत्पीत्वा सलीलं पुण्यं गच्छ ग्रामं गतश्रमः ॥५३॥ अधुनैवागमिष्यन्ति राजकीयः पथा जनाः । मत्पदा-न्वेषणे सक्ताः श्रुत्वा रावं वणिक्पतेः ॥५४॥ तृषार्तमनुगन्तुं मे न शक्यं त्वां ततो द्विज । वीज-यानेन पर्णेन धर्मः किंचिद्भविष्यति ॥५५॥ तस्मै दत्त्वा पलाशं च त्वमगा विपिनं पुनः । तेन पुण्य-प्रभावेन वैशाखे धर्मघर्घरे ॥५६॥ स्वकार्यार्तं कृतेनापि मुनेस्त्राणेन पद्धतौ । जन्मभीरा महापुण्ये

का रुदन सुनकर मेरे पांवों का खोज लगाते आवेंगे ॥५४॥ हे ब्राह्मण ! इस कारण मैं तुम्हारे साथ चलने में असमर्थ हूँ, इस पंखा से हवा करने पर कुछ गर्मी कम हो जायगी ॥५५॥ तू उस ब्राह्मण को पत्ते देकर गहन वनमें चला गया उसी पुण्य के प्रभाव से वैशाख की प्रचंड धूप में ॥५६॥ यद्यपि तूने अपनी कार्य सिद्धि के लिये मुनि की रक्षा की थी उसीके प्रभाव से तेरा जन्म महा पुण्यवान् विशाल राज वंश में हुआ ॥५७॥ अब यदि तेरी इच्छा सुख, राज्य, धन, लक्ष्मी, स्वर्ग, अपवर्ग

मा० टी० १४८ अ०

सायुज्यमुक्ति आदि प्राप्त करने कीहै ॥५८॥ तो तू वैशाखोक्त धर्मों को कर । सम्पूर्ण सुख प्राप्त हो जायंगे इस मास का नाम माधव मासहै और तृतीयाका नाम अक्षय तृतीयाहै इसके दिन तत्काल ब्याई गौ ब्राह्मण को दे इससे तेरे कोशादि की पूर्ति होगी शमीका दान कर इससे सुख प्राप्त होगा ॥५९॥६०॥ छत्री दान कर इससे साम्राज्य की प्राप्ति होगी,विधि पूर्वक स्नान

राजवंशेऽतिविस्तृते ॥५७॥ यदिच्छसि सुखं राज्यं धनधान्यादिसंपदः । स्वर्गापवर्गौ यदि वा सायुज्यं वा हरेः पदम् ॥५८॥ कुरु वैशाखधर्मांस्त्वं सर्वसौख्यमवाप्स्यसि । मासोऽयं माधवो नाम तृतीया चाक्षयाह्वया ॥५९॥ गां च सकृत्प्रसूताख्यांदेहि विप्राय सीदते । तेन ते कोशपूर्तिः स्याच्छमीं देहि सुखं भवेत् ॥६०॥ कुरु छत्रप्रदानं च साम्राज्यं ते भविष्यति । स्नानं कुरु यथान्यायं तथैवार्चय माधवम् ॥६१॥ देहि त्वं प्रतिमां दिव्यां कृत्वा तेन जयो भवेत् । आत्मतुल्यगुणान् पुत्रान् यदि कामयसे नृप ॥६२॥ सर्वभूतहितार्थाय प्रपादानं च तत्र कुरु । वैशाखोक्तानिमान् धर्मान् सम्यगाचर भूमिप ॥६३॥ तेन ते सकला लोका वशं यान्ति न संशयः । निष्कामकेन चित्तेन यदि धर्मान्

करके माधव भगवान की पूजाकर ॥६१॥ और दिव्य प्रतिमा का दान कर इससे तेरी विजय होगी और हे राजन् ! यदि तुझे अपने समान पुत्रों की इच्छाहै ॥६२॥ तो सम्पूर्ण प्राणियों के हित साधन के निमित्त प्याऊ लगा और हे राजन् ! वैशाखोक्त इन सम्पूर्ण धर्मों को कर ॥६३॥ इससे सब लोक तेरे वशमें होयंगे जो तू निष्काम होकर इन सम्पूर्ण धर्मोंको करेगा ॥६४॥

इस वैशाख के महीने में मधुसूदन भगवान की प्रसन्नता के लिये करेगा तो विष्णुभगवान साक्षात् दर्शन देंगे ॥६५॥ जो मनुष्य इन कल्याण कारी धर्मों को करता है उसे अक्षय लोक की प्राप्ति होती है यह सब बातें पुराणों में लिखी हैं ।६६। हमने जैसी कान से सुनी अथवा आंख से देखी हैं वह सब तुझको सुनाई ऐसे कुल पुरोहित दोनों ब्राह्मण याज और उपयाज राजा को

वैशाखे पुण्यमासेऽस्मिन् प्रीतये मधुघातिनः। प्रत्यक्षो भविता विष्णुस्तव करिष्यसि ॥६४॥ वैशाखे ... येन चाचरिताः पुंसा धर्मा ह्येते शुभावहाः। तेषां च ह्यक्षया लोकाः पुराणे निर्मलचेतसः ॥६५॥ ... एतत्सर्वं तव प्रोक्तं यथादृष्टं यथाश्रुतम्। इति राजानमामंत्र्य ब्राह्मणौ च कवयो विदुः ॥६६॥ ... पुरोधसौ ॥६७॥ याजोपयाजौ नाम जग्मतुस्तौ यथागतो। ततो राजा महावीर्यः पुरोधोभ्यां च बोधितः ॥६८॥ वैशाखधर्मान् सकलांश्चकार श्रद्धयान्वितः। मयोपदिष्टं च तथा मधुसूदनमार्चयत् ॥६९॥ ततो लब्धप्रभावः सन् बन्धुभिः सकलैर्वृतः। पाञ्चालनगरीं प्राप हतशेषबलान्वितः ॥७०॥ ततस्तु शत्रवो भूपा उपश्रुत्य च भूपतेः। प्रवेशं च पुरस्याथ पुनराजग्मुरुद्धाः ॥७१॥ तदा पाञ्चाल

समझा कर अपने २ घर चले गये । तब महा पराक्रमी राजा अपने पुरोहित की आज्ञा के अनुसार ॥६७-६८॥ श्रद्धा पूर्वक वैशाख के सब धर्मोंको करने लगा और उपदेश के अनुकूल ही मधुसूदन भगवान का पूजन करने लगा ।६९। जिसके प्रभाव से अपने सम्पूर्ण कुटुम्ब सहित बची हुई सेना को सङ्ग ले पांचाल नगरी में प्रवेश किया ॥७०॥ जब राजा के शत्रुओं ने सुना

ने अपने सम्पूर्ण कुटुम्ब सहित बची हुई सेना को सङ्ग ले पांचाल नगरी में प्रवेश किया ॥७०॥

कि राजा फिर आगया है तब मदोन्मत्त होकर पूरी चढ़ाई करने लगे ।७१। इस प्रकार पांचाल देश के राजा और इन शत्रुओं में सदैव संग्राम होता रहा परन्तु एक ही महारथी ने सबको जीत लिया॥७२॥ जो राजा अपने २ देश छोड़कर भाग गये उनके कोश हाथी घोड़े स्वयं वही राजा ले आया ॥७३॥ राजा दस अरब घोड़े,तीन कोटि हाथी,एक अरब रथ,दस सहस्र

भूपैन्नृपाणामभवद्रणम् । जिग्ये सर्वान्महाबहूनेका एव महारथः ॥७२॥ पालयितेषु भूतेषु नाना-देशागतेष्वपि । राज्ञां कोशं गजानश्वान् स्वयं जग्राह वीर्यवान् ॥७३॥ अश्वानां निर्बुदं चैव गजानां च त्रिकोटिकम् । रथानामर्बुदं चैव दीर्घग्रीवायुतं तथा ॥७४॥ रासभाणां त्रिलक्षाणि प्रापयामास तां पुरीम् । वैशाखधर्ममाहात्म्यात् क्षणात्सर्वे च भूभृतः ॥७५॥ करदा भग्नसंकल्पाः पादाक्रान्ता बभूविरे । सुभिक्षमतुलं चासीत् पाञ्चालविषयेषु च ॥७६॥ एकच्छत्रमभूद्राज्यं प्रसा-दान्मधुघातिनः । पुत्राः पञ्चापि तस्यासञ्छौर्यौदार्यगुणान्विताः ॥७७॥ धृष्टकीर्तिर्धृष्टद्युम्नस्तथा-

ऊंट ॥७४॥ तीनलाख गधे पुरी में लाया,वैशाखोक्त धर्म के प्रभाव से तत्क्षण ही सब राजा उसे ॥७५॥ कर देने लगे,उनके संकल्प जाते रहे चरणों में आपड़े और पांचाल देश में बड़ा सुभिक्ष हुआ ॥७६॥ मधुसूदन भगवान की कृपा से वह चक्रवर्ती राजा हुआ तथा उसके पांच पुत्र बड़े गुणवान् शूर वीर और उदार हुए ।७७। धृष्टकीर्ति,धृष्टकेतु,धृष्टद्युम्न,विजय,चित्रकेतु, मयूरध्वज के समान हुए ।७८। धर्म से प्रतिपालित संपूर्ण प्रजा राजा से अनुराग करने लगी और वैशाख के प्रताप से तत्क्षण

सब विश्वास करने लगे ।।७६।। फिर पांचाल देश का राजा निष्कामचित्त हो मधुसूदन भगवान की पूजा के लिये सभी धर्म करने लगा ।।८०।। जिनसे प्रसन्न हो मधुसूदन भगवान ने अक्षय तृतीया के दिन साक्षात् दर्शन दिया ।८१। अच्युत भगवान को देख राजा बड़ा विस्मित हुआ नारायण चतुर्भुजाधारी, शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये ।।८२।। पीताम्बर धारण किये, वन-

परे । विजयश्चित्रकेतुश्च मयूरध्वजसन्निभाः ।।७८।। अनुरक्ताः प्रजाश्चासन् धर्मेण प्रतिपालिताः । वैशाखस्य प्रतापेन प्रत्ययस्तत्क्षणादभूत् ।।७६।। पुनश्चकार तान् धर्मान् पाञ्चालनगरीश्वरः । अकामकेन चित्तेन प्रीतये मधुघातिनः ।।८०।। धर्मेणानेन संतुष्टो भगवान् मधुसूदनः । अक्षयायां तृतीयायां प्रत्यक्षः समजायत ।।८१।। तं दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा परमात्मानमच्युतम् । नारायणं चतुर्बाहुं शंखचक्रगदाधरम् ।।८२।। पीताम्बरधरं देवं वनमालाविभूषितम् । सलक्ष्मीकं सानुगं च गरुडोपरि संस्थितम् ।।८३।। निरीक्ष्य दुःसहं तेजः सद्यो मीलितलोचनः । उत्पतन् संपतन् हर्षान्मत्तोन्मत्त इव भ्रमन् ।।८४।। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो गलद्बाष्पाकुलेक्षणः । तुष्टाव परया भक्त्या प्राञ्जलिः

माला पहिरे, लक्ष्मी तथा अनुचरी सहित गरुड पर चढ़े हैं ।।८३।। उनके असहनीय तेज को देख राजा ने नेत्र बन्द कर लिये फिर उनके दर्शन कर हर्ष के मारे उन्मत्त सा होगया ।८४। सब देह पर रोमांच खड़े होगये, नेत्रों से आंसू गिरने लगे अत्यन्त

भक्ति पूर्वक हाथ जोड़ शिर झुका स्तुति करने लगा।।८५।। इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे पांचाल देशाधिपतेर्जयप्राप्तिर्दरिद्रनाशोनं नाम पंचदशोऽध्यायः ।। १५ ।।

श्रुतदेवजी कहने लगे-भगवान के दर्शन के आनन्द में मग्न हृदय वाले उस राजा ने तत्काल शीष झुका प्रणाम किया

प्रणतो भुवि ।।८५।। इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंबादे पाञ्चालदेशाधिपतेर्जयप्राप्तिर्दरिद्रनाशनं नाम पंचदशोऽध्यायः ।।१५।।

श्रुतदेव उवाच ।। तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुताशयः सद्यः समुत्थाय ननाम मूर्ध्ना । चिरं निरीक्ष्याकुललोचनोऽमुं विश्वात्मदेवं जगतामधीशम् ।।१।। दधार पादाववनिज्य तज्जलं यत्पादजाऽऽब्रह्म जगत्पुनाति । समर्चयामास महाविभूतिभिर्महार्हवस्त्राभरणानुलेपनैः ।।२।। स्रग्धूपदीपायमृतभक्षणादिभिस्स्वगात्रवित्तात्मसमर्पणेन । तुष्टाव विष्णुं पुरुषं पुराणं नारायणं निर्गुणमद्वितीयम् ।।३।।

और बहुत देर तक आकुल नेत्रों से विश्वात्मदेव जगदीश का दर्शन करता रहा ।।१।। फिर चरण धोकर जल शिर पर धारण किया,जिन चरणों से उत्पन्न होकर गङ्गा सारे संसार को पवित्र करती है और बहु मूल्यवान् वस्त्र आभूषण चंदनादि से पूजन करने लगा ।।२।। धूप, दीप, फूल-माला,नैवेद्य और आत्मसमर्पणादि से पुराण पुरुष नारायण, अद्वितीय, विष्णु भगवान को प्रसन्न किया ।।३।। भगवान, निरंजन, जगत् के रचने वालों के स्वामी, परात्पर, प्रभु, ब्रह्मादि से पूजित, जिनकी माया से बड़े

२ उत्तम तत्त्ववेत्ता मनुष्य भी मुग्ध हो रहे हैं, विश्वस्रष्टाओं के अधिपति ॥४॥ मूढ बुद्धि वाले लोग जिनकी माया से मोहित होते हैं भगवान की अनेक प्रकार की गुणमयी चेष्टा है, आप स्वयं जगत् का पालन पोषण और संहार करते हैं संपूर्ण देवता और असुरों के सुख दुःख की प्राप्ति के लिये आप लीन नहीं होते, आप पूर्ण मनोरथ हैं तो भी समय आनेपर आत्मीय जनों

निरञ्जनं विश्वसृजामधीशं परात्परं पद्मभवादिवन्दितम् । यन्मायया तत्त्वविदुत्तमा जना विमोहिता विश्वसृजामधीश्वरम् ॥४॥ मुह्यन्ति मायाचरितेषु मूढा गुणेषु चित्रं भगवद्विचेष्टितम् । अनीह एतद्बहुधैक आत्मना सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽप्यथ ॥५॥ समस्तदेवासुरसौख्यदुःखमाप्त्यै भवान् पूर्णमनोरथोऽपि ॥ तत्रापि काले स्वजनाभिगुप्त्यै बिभर्षि सत्त्वं खलनिग्रहाय ॥६॥ तमोगुणं राक्षसबन्धनाय रजोगुणं निर्गुणविश्वमूर्ते । दिष्ट्या त्वदङ्घ्रिप्रणताघनाशनं तीर्थास्पदं हृदि धृतं सुविपक्वयोगैः ॥७॥ उत्सिक्तभक्त्युपहताशयजीवभावाः । प्रापुर्गतिं तव पदस्मृतिमात्रतो ये । भवा-

की रक्षा के निमित्त सतो गुण धारण करते हैं ॥५॥६॥ दुष्टों को वश में करने को तमोगुण और राक्षसों को बन्धन में करने के लिये रजो गुण धारण करते हैं । हे निर्गुण विश्वमूर्ते ! आपके चरणारविंद को धन्य है ये चरण शरणागतों के पाप दूर करने वाले हैं जब कर्मों के योग से तीर्थ रूप आपके चरण हृदय में धारण किए जाते हैं ॥७॥ बढ़ी हुई भक्ति से उपहत आशय वाले जीव मात्र के द्वारा वे तुम्हारे चरणों के स्मरण मात्र से ही गति प्राप्ति करते हैं और सांसारिक काल रूपी सर्प

आश्रय वाले जीव मात्र के द्वारा व तुम्हारे चरणों के स्मरण मात्र से ही गति प्राप्त करते हैं और सांसारिक काल रूपी सर्प

के बन्धन में बंधा हुआ मैं जन्म जरादि दुःखों से व्याप्त तुम्हारे चरणारविंद को भूल बिल्ली की तरह तृषा से व्याकुल अनेक योनियों में भ्रमण करता हूं न मैंने दान किया न तेरी कथा सुनी न साधु सेवा की ।८-९। जिस अपराध से शत्रुओं ने मुझे पराजित कर दिया मेरा वैभव नष्ट होगया तब वन में गया जहां मैंने अपने गुरुओं का स्मरण किया स्मरण करते ही वे मेरे

ख्यकालोरगपाशबन्धः पुनः पुनर्जन्मजरादिदुःखैः ॥८॥ भ्रमामि योनिष्वहमाखुभक्षवत्प्रवृद्धतर्षस्तव पादविस्मृतेः । नूनं न दत्तं न च ते कथा श्रुता न साधवो जातु मयापि सेविताः ॥९॥ तेनारिभिर्ध्वस्तपरार्ध्यलक्ष्मीर्वनं प्रविष्टः स्वगुरू ह्यहं स्मरन् । स्मृतौ च तौ मां समुपेत्य दुःखात्सम्बोधयांचक्रतुरार्तं बन्धू ॥१०॥ वैशाखधर्मैः श्रुतिचोदितैः शुभैः स्वर्गापवर्गादिषुमर्थहेतुभिः । तद्बोधतेऽहं कृतवान्समस्ताञ्छुभावहान् माधवमासधर्मान् ॥११॥ तस्मादभून्मे परमः प्रसादस्तेनाखिलाः संपद ऊर्जिता इमाः नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका न भूर्जलं खं श्वसनाऽथ वाङ्मनः ॥१२॥ उपा-

पास आ मेरी दीन दशा पर दयाकर दुःख से छुड़ाने का उपाय बताया ।१०। वेदोक्त शुभ स्वर्गापवर्ग पुरुषार्थ चतुष्टय के देने वाले वैशाख के धर्म कार्य जैसे मेरे गुरुओं ने बताये वैसे ही मैं करने लगा माधव मास के ये धर्म बड़े शुभ फल देने वाले हैं ॥११॥ उन्हीं के प्रभाव से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूं,उन्हीं के प्रताप से मुझे संपूर्ण वैभव मिला है, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, तारागण, पृथ्वी, जल, आकाश,वायु,वाणी,और मन ॥१२॥ इनकी उपासना नहीं की क्योंकि ये उपासना करने पर भी बहुत

दिन में दुःख दूर करते हैं परन्तु सन्त तो क्षणभर में ही पाप नष्ट करदेते है ये महात्मा कैसे हैं इन्होंने सम्पूर्ण इच्छा त्याग दी हैं और तेरे ही में चित्त लगा रक्खा है ॥१३॥ हे स्वतन्त्र ! हे विचित्र कर्मों के कर्त्ता ! हे परमात्मन् ! हे सन्तों पर अनुग्रह करने वाले ! तुमको नमस्कार है । मैं आपकी माया में मोहित हो अनर्थ दुष्ट स्त्री धन आदि के गुणों में भ्रमता रहा

सितास्तेऽपि हरन्त्यघं चिराद्धिपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्त्तसेवया । यान्मन्यसे त्वं भवतोऽपि भूरिशःस्त्कृ षणांस्त्वत्पदन्यस्तचित्तान् ॥१३॥ नमः स्वतंत्राय विचित्रायकर्मणे नमः परस्मै सदनुग्रहाय । त्वन्मायया मोहितोऽहं गुणेषु दारार्थरूपेषु भ्रमाम्यनर्थहृक् ॥१४॥ यत्पादपद्मं सृतिमूलनाशनं समस्तपापहरं सुनिर्मलम् । सुखेच्छयानर्थनिदानभूतैः सुतात्मदारैर्ममता भियुक्तः ॥१५॥ न क्वापि निद्रां लभते न शर्म प्रवृद्धतर्षः पुनरेव तस्मिन् । लब्ध्वा दुरापं नरदेवजन्म त्वयरतनतः सर्वपुमर्थहेतु ॥१६॥ पादारविन्दं न भजामि देव संमूढचेता विषयेषु लालसः । करोमि कर्माणि सुनिष्ठितः सन्

हूँ ॥१४॥ आपके चरण कमल सन्सार रूपी दुःखों का जड़ से नाश करने वाले, संपूर्ण पापों के दूर करने वाले और निर्मल हैं इनको छोड़ सुख की इच्छासे अनर्थ के मूल कारण जो स्त्री पुत्रादि हैं उनकी ममता में पड़ मुझे न नींद आती है न चैन मिलता है क्योंकि इन्हीं में तृष्णा बढ़ रही है दुर्लभ राजा की देह पाकर, जो अर्थ धर्म काम मोक्ष का एक मात्र हेतु है,

प्रकार के कर्म करता हूँ इन विषयों में मेरी तृषा बढ़ रही है और रातदिन सैकड़ों प्रकार की ऐसी चिन्ताओं में मन लगा रहता
है कि आज मैं ऐसा होजाऊं हे दुरन्तशक्ते! हे विश्व मूर्ते! जब आपकी कृपा जीव पर होतीहै ॥१७-१८॥ तब महात्माओं
का सत्सङ्ग मिलताहै जिससे यह संसार रूपी समुद्र गौ के चरण के समान छोटा हो जाताहै हे देव! जब सन्तों का समागम

प्रवृद्धतर्षस्तदपेक्षया ददन् ॥१७॥ पुनश्च भूयामहमद्य भूयामित्येव चिन्ताशतलोलमानसः। तदेव
जीवस्य भवेत्कृपा विभो दुरन्तशक्तेस्तव विश्वमूर्तेः ॥१८॥ समागमः स्यान्महतां हि पुंसां भवां-
बुधिर्येन हि गोष्पदायते। सत्संगमो देव यदेव भूयात्तर्हीश देवे त्वयि जायते मतिः ॥१९॥ समस्त-
राज्यापगमं हि मन्ये ह्यनुग्रहं ते मयि जातमञ्जसा। यत्प्रार्थ्यते ब्रह्मसुरासुराद्यैर्निवृत्ततर्षैरपि
हंसयूथैः ॥२०॥ इतः स्मराम्यच्युतमेव सादरं भवापहं पादसरोरुहं विभो। अकिंचनप्रार्थ्यममन्द-
भाग्यदं न कामयेऽन्यत्तव पादपद्मात् ॥२१॥ अतो न राज्यं न सुतादि कोशं देहेन शश्वत् पतता

होताहै तब ही बुद्धि आप में प्रवृत होती है ॥१९॥ आपने मेरे ऊपर जो अनुग्रह किया है इसके आगे मैं अपने समस्त राज्य
को निष्फल ही मानता हूँ और समस्त सुरासुर तथा निवृत्त बुद्धि संन्यासिगण यही प्रार्थना करते हैं ॥२०॥ मैं अच्युत भगवान
का सादर स्मरण करता हूँ जिनके चरण कमल सांसारिक तापों को दूर करते हैं दरिद्रियों को प्रार्थना के द्वारा अमन्द सौभाग्य
के दाता हैं अतः मैं इन चरण कमलों को छोड़ किसी बात की कामना नहीं करता हूँ न मुझे राज्य की इच्छा है न पुत्र

पौत्रादि या धन की इच्छा है इस निरन्तर पतन होने वाली मिट्टी से उत्पन्न शरीर द्वारा उपासना के योग्य केवल आपके चरण कमलों का ध्यान करता हूँ क्योंकि मुनि लोग भी आपके इन चरणों का ही निरन्तर ध्यान करते हैं ।।२१-२२।। हे जगन्निवास ! हे देवेश ! आप प्रसन्न हो जाइये जिससे आपके चरण कमलों में मेरी स्मृति हो, हे प्रभो ! स्त्री पुत्र कोषादि

रजोभुवा । भजामि नित्यं तदुपासितव्यं पादारविन्दं मुनिभिर्विचिन्त्यम् ॥२२॥ प्रसीद देवेश जगन्निवास स्मृतिर्यथा स्यात्तव पादपद्मे । सक्तिः सदा गच्छतु दारकोशपुत्रात्मचिन्हेषु गुणेषु मे प्रभो ॥२३॥ भूयान्मनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि ते दिव्यकथानुवर्णने । नेत्रे मम स्तां तव विग्रहेक्षणे श्रोत्रे कथायां रसना त्वदर्पिता ॥२४॥ घ्राणं च त्वत्पादसरोजसौरभे त्वद्भक्तगन्धादिविलेपनेऽमकृत् । स्यतां च हस्तौ तव मन्दिरे विभो संमार्जनादौ मम नित्यदैव ॥२५॥ पादौ विभो क्षेत्रपथानुसर्पणे मूर्धा च मे स्यात्तव वन्दनेऽनिशम् । कामश्च मे स्तात्तव सत्कथायां बुद्धिश्च मे स्यात्तव चिन्तने-

में मेरी आसक्ति न हो ।।२३।। मेरा मन आपके चरणारविन्द में लगे, मेरी वाणी आपकी दिव्य कथा कहने में लगी रहे, मेरे नेत्र आपकी मूर्ति के दर्शन में लगें, कान कथा श्रवण में और जिह्वा आपके गुणानुवाद में अर्पित हो ।।२४।। नासिका आपके चरण कमल का मकरन्द सूंघने में प्रवृत्त हो और हाथ आपके भक्तों के सुगन्ध युक्त चन्दनादि लेपन में लगे रहें आपके मंदिर की सफाई करने में नित्य हाथ लगे रहें ।।२५।। मेरे पांव आपकी कथा जहां होती हो वहां मुझे ले जांय, मेरी मूर्धा [illegible]

की सफाई करने में नित्य हाथ लगे रहें ॥२५॥ मेरे पांव आपकी कथा जहां होती हो वहां मुझे ले जांय, मेरी सर्वाङ्ग मेरा आपकी बन्दना में लगी रहे, आपकी कथा में मेरी कामना और आपके विचार में मेरी बुद्धि दिन रात रहे ॥२६॥ घर आये हुये मुनियों के सङ्ग आपकी श्रेष्ठ कथाओं के गान में ही मेरे दिन बीतें। हे प्रभो! एक पल या आधा निमेष भी आपके प्रसङ्ग विना व्यतीत न हो ॥२७॥ हे विष्णो! मैं पारमेष्ठय अथवा संपूर्ण पृथ्वी का राज्य या धर्म अर्थादि अपवर्ग की इच्छा नहीं

ऽनिशम् ॥२६॥ दिनानि मे स्युस्तव सत्कथोदयैरुद्गीयमानैर्मुनिभिर्गृहागतैः। हीनप्रसंगैस्तव मे न भूयात् क्षणं निमेषार्द्धमथापि विष्णो ॥२७॥ न पारमेष्ठ्यं न च सार्वभौमं न चापवर्गं स्पृहयामि विष्णो त्वत्पादसेवां च सदैव कामये प्रार्थ्यां श्रिया ब्रह्मभवादिभिः सुरैः ॥२८॥ इति राज्ञा स्तुतो विष्णुः प्रसन्नः कमलेक्षणः। मेघगम्भीरया वाचा तमुवाच क्षितीश्वरम् ॥२९॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जाने त्वां दासवर्यंमे निष्कामुकमकल्मषम्। अथापि ते प्रदास्यामि वरं दैवतदुर्लभम् ॥३०॥ आयुष्यं चायुत दिव्यं संपदश्चनरेश्वर भक्तिर्मयि दृढा भूयादन्ते सायुज्यमेव च ॥३१॥ त्वया कृतेन स्तोत्रेण

करता हूँ मैं तो आपके चरण कमल की सेवा का इच्छुक हूँ इस चरण सेवा की इच्छा लक्ष्मी, ब्रह्मा, महादेवादि सब देवता करते हैं ॥२८॥ राजा की ऐसी स्तुति सुन कमल नयन भगवान अति प्रसन्न हो मेघ जैसी गम्भीर वाणी से बोले ॥२९॥ भगवान बोले-तुम पाप रहित, निष्काम, मेरे भक्तों में श्रेष्ठ हो तथापि देवताओं को दुर्लभ वर तुमको मैं देता हूं ॥३०॥ दस सहस्र वर्ष की तुम्हारी अवस्था, दिव्य धन संपत्ति, मेरी ओर दृढ़ भक्ति और अंत में मेरी सायुज्यता मुक्ति मिलेगी ॥३१॥

जो प्राणी तुम्हारी की हुई स्तुति को करेंगे मैं उन पर प्रसन्न होकर उन्हें निस्सन्देह भक्ति और मुक्ति दूंगा ॥३२॥ आज का दिन संसार में अक्षय तृतीया के नाम से प्रसिद्ध होगा जिसमें भुक्ति मुक्ति का देने वाला मैं प्रसन्न हुआ हूँ ॥३३॥ जो मूढ मनुष्य भी जान कर अथवा विना जाने स्नान दानादि करेंगे वे मेरे अक्षय पदको प्राप्त होंगे ॥३४॥ अक्षय तृतीया के दिन

मां स्तुवन्ति च ये भुवि । तेषां तुष्टः प्रदास्यामि भुक्तिं मुक्तिं न संशय ॥३२॥ तृतीयैषाक्षया नाम भुवि ख्याता भविष्यति । यस्यां तत्र प्रसन्नोऽहं भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥३३॥ ये कुर्वन्तिनरा मूढाः स्नानदानादिकाः क्रियाः । व्याजेनापि स्वभावाद्वा यान्ति मत्पदमव्ययम् ॥३४॥ ये चाक्षयतृतीयायां पितृनुद्दिश्य मानवाः । श्राद्धं कुर्वन्ति तेषां वै तदानन्त्याय कल्पते ॥३५॥ न चानया तिथिर्लोके समा वा नाधिका भुवि । अस्यां कृतं स्वल्पमपि तदक्षय्यफलं भवेत् ॥३६॥ यो गां दद्यान्नृपश्रेष्ठ ब्राह्मणाय कुटुम्बिने । सर्वसंपत्प्रवर्षाख्या भुक्तिमुक्तिः करे स्थिता ॥३७॥ योऽहि यो दद्यादनड्वाहं

जो मनुष्य पित्रीश्वरों के निमित्त श्राद्ध करतेहैं वह अक्षय होताहै ॥३५॥ इस संसार में इस तिथि के समान व अधिक कोई तिथि नहीं हुई अक्षय तृतीया के दिन किया हुआ थोड़ा सा कर्म भी अक्षय फल देता है ॥३६॥ हे राजन् ! जो कुटुम्बी ब्राह्मण को गौ का दान देता है उसे सम्पूर्ण संपत्ति मिलती है और भक्ति तथा मुक्ति दोनों मिल जाती हैं ॥३७॥ जो बैल दान करताहै उसके संपूर्ण पाप दूर होतेहैं काल (मृत्यु) जरा, जन्म, भय, पाप सबको नष्ट कर देता हैं ॥३८॥ मैं जितना

वैशाखोक्त धर्मों से प्रसन्न होता हूँ ।३६। उतना किसी अन्य धर्म से प्रसन्न नहीं होता मुझे सब मासों में वैशाख मास बहुत प्रिय है ।४०। जिसने सब धर्म त्याग दिये हैं जो ब्रह्मचर्य से रहित हैं वे भी वैशाखोक्त धर्मों में निरन्तर रहने से अव्यय पद प्राप्ति करते हैं ॥४१॥ जो तप सांख्य योग और यज्ञादि से भी मिलना दुर्लभ है उस धाम को वैशाखोक्त धर्मों का आचरण करने

सर्वपापविनाशनम् । कालमृत्युविमुक्तः सन् दीर्घायुष्यमवाप्नुयात् ॥३८॥ वैशाखमासे यो धर्मान् कुरुते मत्प्रियावहान् । तेषां मृत्युजराजन्मभय पापं हराम्यहम् ॥३६॥ यथा वैशाखधर्मैस्तु तुष्टः स्यां सकलैरपि । मासधर्मैर्न तुष्टः स्यां मासो मे माधवः प्रियः ॥४०॥ सर्वधर्मोज्झिता वापि ब्रह्म-चर्यविवर्जिताः । वैशाखमासनिरता यान्ति मत्पदमव्ययम् ॥४१॥ यद् दुरापं तपोभिश्च सांख्ययोगैर्म-खैरपि । तद्धाम परमं यान्ति वैशाखनिरता नराः ॥४२॥ अपि पापसहस्रं वा मासोऽयं हरतेऽनघ प्रायश्चित्तावहीनं वा मत्पादस्मरणं यथा ॥४३॥ गुरूपदिष्टः कान्तारे वैशाखे निरतो भवान् । समाराध्य जगन्नाथं तेनाप्तमखिलं नृप ॥४४॥ धर्मेणानेन संप्रीतः प्रत्यक्षोऽहं भवामि ते । भुक्त्वा

से मनुष्य प्राप्त कर लेते हैं ॥४२॥ यही वैशाख मास सहस्रों पापों को दूर कर देता है प्राणी यदि मेरे चरणों का स्मरण करे तो प्रायश्चित की भी कुछ आवश्यकता नहीं ॥४३॥ तुम गुरु के उपदेश से वन में आ वैशाख के धर्मों में तत्पर हुए और जगत् के नाथ भगवान की आराधना से तुम्हें सब वस्तु प्राप्त हो गई ॥४४॥ इस धर्म से प्रसन्न हो कर मैंने तुम्हें साक्षात्

दर्शन दिया है अब तू देवताओं को दुर्लभ इच्छित भोगो को भोग ॥ ४५ ॥ देव देव जनार्दन राजा को ऐसा वर दे सबके देखते २ वहीं अंतर्ध्यान होगये ॥४६॥ तब वह राजा अत्यन्त विस्मित हुआ और ऐसा प्रसन्न हुआ जैसे कोई खोये हुए धन को पुनः प्राप्त करने से होता है ॥४७॥ तदनन्तर भक्ति सहित पृथ्वी का शासन करते हुए बड़े बड़े महात्मा और गुरु से

भोगान् यथा कामान् दे वैरपि सुदुर्लभान् ॥४५॥ इति तस्मै वरं दत्त्वा देवदेवो जनार्दनः । पश्यतामेव सर्वेषां तत्रैवान्तरधीयत ॥४६॥ ततो भूपालवर्योऽसौ बभूवात्यन्तविस्मितः । हृष्टपुष्टतनुर्भूपो लब्धनष्टधनो यथा ॥४७॥ ततः शशास पृथिवीं तच्चित्तस्तत्परायणः । महद्भिर्बोधितो नित्यं गुरुभिश्चानिरन्तरम् ॥४८॥ नान्यं प्रियतत मेने वासुदेवमृते नृप । यत्संपर्कात्प्रिया आसन् दारामात्यसुतादयः ॥४९॥ सर्वान् धर्मांश्चकारासौ वैशाखोक्तान्पुनःपुनः । तेन पुण्यप्रभावेण पुत्रपौत्रादिभिर्वृत ॥५०॥ भुक्त्वा मनोरथान् सर्वान् देवानामपि दुर्लभान् । अन्ते जगाम सायुज्यं विष्णोर्देवस्य चक्रिणः ॥५१॥ य इदं परमाख्यानं शृण्वन्ति श्रावयन्ति च । ते सर्वपापनिर्मुक्ता यान्ति विष्णोः

नित्य प्रति ज्ञान प्राप्त करने लगा ॥४८॥ और वासुदेव भगवान के अतिरिक्त किसी को नहीं समझता था जिसके संपर्क से रानी, मन्त्री और पुत्रादि सब प्रिय हो गए ॥४९॥ वैशाखोक्त सब धर्मों को बारम्बार करने लगा जिनके प्रभाव से पुत्र पौत्रादि की वृद्धि हुई ॥५०॥ और देवताओं को भी दुर्लभ सम्पूर्ण मनोरथों को भोग अन्त में चक्रपाणि विष्णु भगवान की

... को सुनते सुनाते हैं वे सब पापों से छूटकर विष्णुभग-

सायुज्यता मुक्ति को प्राप्त हुआ ॥५१॥ जो इस परम सुन्दर आख्यान को सुनते सुनते हैं वे सब पापों से छूटकर विष्णुभगवान के परम पद को पाते हैं ॥५२॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे पांचालाधिपतेः सायुज्यप्राप्तिर्नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

परं पदम् ॥५२॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे पाञ्चालाधिपतेः सायुज्यप्राप्तिर्नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

श्रुतकीर्तिरुवाच ॥ वैशाखधर्मानखिलानिहामुत्र फलप्रदान् । भूयोऽपि शृण्वतश्चासीत् तृप्तिर्नाापि मानद ॥१॥ यत्र चाकैतवो धर्मो यत्र विष्णु कथाः शुभाः । तच्छास्त्र शृण्वतो नैव तृप्तिः कर्णरसायनम् ॥२॥ पूर्वजन्मकृत पुण्यं दिष्ट्या पाकमुपागतम् । आतिथ्यव्यपदेशेन यद्भवान् गृहमागतः ॥३॥ वचोऽमृतं मुखाम्भोजनिःसृत परमाद्भुतम् । पीत्वा तृप्तः पारमेष्ठ्यं मोक्षं वा च न

श्रुतिकीर्ति बोले-हे मुनिवर ! मैंने वैशाख के सब धर्म सुने जो लोक परलोक दोनों स्थानों में फलदायक है परन्तु सुनते सुनते अभी मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥१॥ क्योंकि जहां निष्कपट धर्म है जहाँ निर्मल विष्णु की कथा होती है उससे कानों को सुख दायक कथा को सुनने से तृप्ति नहीं होती है ॥२॥ मेरे पूर्व जन्म के किये हुए पुण्य उदय हो गये हैं जो आप आतिथ्य के उपदेश से मेरे घर पधारे हैं ॥३॥ आपके मुख से निकले परम अद्भुत अमृत रूपी बचनों को पान कर ऐसा तृप्त हुआ हूँ

कि अब मैं न पारमेष्ठ्य चाहता हूँ न मोक्ष ॥४॥ अतएव भुक्ति मुक्ति के दाता विष्णुभगवान को प्रसन्न करने वाले दिव्य धर्म का विस्तार पूर्वक वर्णन करिये ॥५॥ राजा के इन वचनों को सुन महायशस्वी श्रुतदेवजी अति प्रसन्न हो फिर शुभ धर्मों का वर्णन करने लगे ॥६॥ श्रुतदेव बोले हे राजन्! मैं पाप को नष्ट करने वाली एक कथा फिर कहता हूँ तू चित्त लगाकर सुन।

कामये ॥४॥ तस्मात्तानेव धर्मान्मे भुक्ति मुक्तिप्रदायकान् विष्णुप्रीतिकरान् दिव्यान् भूयो विस्तरतो वद ॥५॥ इत्युक्तस्तु पुरा राज्ञा श्रुतदेवो महायशाः । संहृष्टात्मा शुभान् धर्मान् पुनर्व्याहर्तुमारभे ॥६॥ श्रुतदेव उवाच ॥ शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् । वैशाखधर्मविषयां भावितां मुनिभिर्मुहुः ॥७॥ पम्पातीरे द्विजः कश्चिच्छङ्खो नाम महायशाः । गुरौ सिंहंगते चागान्नदीं गोदावरीं शुभाम् ॥८॥ तीर्त्वा भीमरथीं पुण्यां कान्तारे कण्टकाचले । निर्जले निर्जने घोरे वैशाखे तापकर्शितः ॥९॥ वृक्षे चोपविवेशासौ मध्याह्नसमये द्विजः । तदा कश्चिद्दुराचारो व्याधश्चापधरः

यह वैशाख के धर्म सम्बन्धी मुनियों द्वारा प्रसिद्ध है ॥७॥ पंपातीर पर एक शंखनाम का महायशस्वी ब्राह्मण सिंह के बृहस्पति में गोदावरी नदी के किनारे आया ।८। और भीमरथी के पास कंटक युक्त और पहाड़ी वन में गया जिसमें न जल था न कोई मनुष्य । ऐसे वैशाख के ताप से कठिन ।९। मध्याह्न के समय वह ब्राह्मण वृक्ष की छाया में बैठ गया उसी समय एक दुराचारी ... लेकर आया ॥१०॥ वह सब प्राणियों से घृणा करता था और साक्षात् दूसरे यमराज के समान था ...

व्याध धनुष लेकर आया ॥१०॥ वह सब प्राणियों से घृणा करता था और साक्षात् दूसरे यमराज के समान था इसने सूर्य के

समान चमकते हुए कुण्डल पहने हुये ब्राह्मण को ॥११॥ देखकर बांध लिया और उसके कुण्डल, जूता, छत्र, रुद्राक्ष की माला, कमण्डलु सब छीन लिये ॥१२॥ और फिर छोड़कर बोला कि जा चला जा ॥१३॥ इस प्रकार उस दुष्ट से छूटकर ब्राह्मण मार्ग में चलने लगा जहां सूर्य की किरणों से जलती हुई रेती बिछी थी जिस पर पांव जल जाते हैं, पीने को जल

शठः ॥१०॥ निर्घृणः सर्वभूतेषु कालान्तक इवापरः । तं कुण्डलधरं विप्रं दीप्तिं भास्करोपमम् ॥११॥ दृष्ट्वा बद्ध्वा स जग्राह कुण्डलादिकमुग्रधीः । उपानहौ च छत्रं च अक्षमालां कमण्डलुम् ॥१२॥ पश्चाद्विसृज्य तं विप्रं गच्छेत्याह विमूढधीः ॥१३॥ ततः स गच्छन् पथि शर्कराविले सूर्यांशुतप्ते जलवर्जिते खरे । सतप्तपादस्तृणछादिते स्थले क्वचिच्चचारोपविशन्नूर्ध्वरेताः ॥१४॥ स वै द्रुतं संपतन् क्वापि तिष्ठन् हाहेतिवादी च जगाम तूर्णम् । दृष्ट्वा मुनिं खिद्यमानं पृथिव्यां मध्यंगते पूषिणि दया बभूव ॥१५॥ व्याधस्य धर्मविमुखस्य च पापबुद्धेस्तस्मै ददामि सुखदां खलु पादरक्षाम् ॥१६॥ चौर्येणैव स्वधर्मेण यद्गृहीतं वनान्तरे । तदीयमेव तत्सर्वं व्याधानां धर्मनिर्णयः ॥१७॥

नहीं मिलता ऐसे कण्टकयुक्त वन में तिनकों की छांह किये वह ब्रह्मचारी कहीं बैठे कहीं ठहर जाय और व्याकुल होके हाय-हाय करता था। शब्द को सुनकर वह व्याध शीघ्र ही उसके पास गया और मुनिको दुपहरी के दुख से व्याकुल देख उसके हृदय में दया उत्पन्न हुई ॥१४-१५॥ यह व्याध धर्म विमुख और पापबुद्धि में रत था परन्तु दया करके मन ही मन

कहने लगा कि मैंने जो अपने चोर धर्म से दूसरे बन में इससे ले लिया है वह सब हमारी जाति का परम धर्म है ॥१६-१७॥ परन्तु इसके दुःख को दूर करने के निमित्त मैं इसे अपनी पुरानी जूती दे दूं जिन से उत्तम ब्राह्मण के पावों की रक्षा हो जायगी मेरे पांवों में तो नई जूती हैं अब पुरानी से कुछ भी प्रयोजन नहीं है इसलिये ये अवश्य ही दे देनी चाहिये

तस्मादुपानहौ दास्ये मुहुर्दुःखापानुत्तये । धर्मेणोत्तमविप्रस्य पादरक्षा भविष्यति ॥१८॥ जीर्णे चापानहौ दिव्ये वर्तेते पादयोर्मम । नाऽऽभ्यामस्ति च मे कृत्यं तस्माद्वै ददाम्यहम् ॥१९॥ इति निश्चित्य मनसि तूर्णं गत्वा ददौ च ते । शर्करातप्तपादाय द्विजवर्याय सीदते ॥२०॥ उपानहौ गृहीत्वा ते निर्वृतिं च परां ययौ । सुखी भवेति तं व्याधमाशीर्भिर्नन्द्य च ॥२१॥ नूनं सुपक्व-पुण्योऽयं वैशाखे दत्तवानमू । व्याधस्यापि च दुर्बुद्धेः प्रायो विष्णुः प्रसीदति ॥२२॥ सर्वस्यास्तथा च भूयोऽपि यत्सुखं तदभून्मम । ततोभिश्रुत्य तद्वाक्यं किमेतदिति विस्मितः ॥ २३ ॥ व्याजहार

॥१८-१९॥ मन में ऐसा विचार कर शीघ्र जा वे उपानह ब्राह्मण को जिसके पांव गरम बालू से जल रहे हैं दे दिया ॥२०॥ उन जूतों को ले ब्राह्मण अत्यन्त सुखी हो आशीर्वाद देने लगा कि सुखी हो ॥ २१ ॥ तैंने बैशाख में जो यह दान किया है इससे तेरे पुण्य उदय हो आये हैं इस दान के प्रभाव से विष्णु भगवान दुर्बुद्धि व्याध पर भी प्रसन्न हो जाते हैं ॥२२॥ जो सुख सब प्रकार की वस्तुओं के मिलने से होता है वही मुझे भी हुआ है । ऐसे वाक्य सुनकर व्याध अत्यन्त विस्मित

हो ॥२३॥ ब्रह्मिष्ठ ब्रह्मवादी ब्राह्मण से बोला हे महाराज ! मैंने आपकी ही वस्तु आपको दी हैं इसमें भला मेरा क्या पुण्य है ॥२४॥ और तुमने जो वैशाख की प्रशंसा की कि हरि भगवान प्रसन्न होंगे । हे ब्रह्मन् ! वह वैशाख कौन है ? और हरि कौन है ? ॥२५॥ यह सब मुझे बताइये धर्म क्या है और उसका फल क्या है हे दयानिधे ! मेरी इसे सुनने की इच्छा

पुनर्विप्रं ब्रह्मिष्ठं ब्रह्मवादिनम् । त्वदीयं तु मया दत्तं कथं पुण्यं भवेन्मम ॥२४॥ प्रशंससि च वैशाखं हरिस्तुष्टो भवेदिति । एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन् को वैशाखस्तु को हरिः ॥२५॥ को धर्मः किं फलं तस्य शुश्रूषोर्मे दयानिधे । इति व्याधवचः श्रुत्वा शंखस्तुष्टमना अभूत् ॥२६॥ प्रशंसन्स च वैशाखं पुनर्विस्मितमानसः । इदानीं दत्तवान् पादत्राणे मे लुब्धकः शठः ॥२७॥ यद् बुद्धेश्च वैषम्यं जातं चित्रमहो बत । सर्वेषामेव धर्माणां फलं जन्मान्तरेषु वै ॥२८॥ वैशाखमासधर्माणां फलं सद्यः क्षणं नृणाम् । पापाचारस्य दुर्बुद्धेर्व्याधस्यापि दुरात्मनः ॥२९॥ दैवादुपानहोर्दानात्सत्त्वशुद्धिरभूदहो ।

है व्याध के ऐसे वचन सुन शंख प्रसन्न हुए ॥२६॥ और मन में विस्मय कर वैशाख की प्रशंसा की इस लोभी मूर्ख ने मुझे अभी पादत्राण दे दिये ॥२७॥ इसकी दुर्बुद्धि में बड़ी विचित्र विषमता हुई सब धर्मों का फल जन्मान्तर में मिलता है ॥२८॥ परन्तु वैशाख के धर्मोंका फल तत्काल मिलता है क्योंकि पापाचारी दुर्बुद्धि दुरात्मा व्याध की भी दैवयोग से पादत्राण दान करने से सत्वबुद्धि हो गई जो काम विष्णु भगवान को प्रिय है और जिसमें निर्मल सन्तोष की प्राप्ति होती है

वही धर्म है मनु आदि से लेकर सब धर्मवेत्ता उसी को धर्म कहते हैं वैशाखमास विष्णु भगवान को अति प्रिय हैं ॥२९-३१॥ केशव भगवान जितने माधवमास के धर्मों से प्रसन्न होते हैं उतने संपूर्ण दान, तप और बड़े-बड़े यज्ञों से भी प्रसन्न नहीं होते ॥३२॥ धर्मों में इसके बराबर कोई धर्म नहीं गया मत जाओ, गङ्गा मत जाओ, प्रयाग और पुष्कर मत

वै० मा० टी०

यच्च विष्णोः प्रियं कर्म तत्तत्सन्तोषनिर्मलम् ॥३०॥ तदेव धर्ममित्याहुर्मन्वाद्या धर्मवित्तमाः । धर्मा माधवमासीयाः प्रिया विष्णोरतीव ते ॥३१॥ धर्मैर्माधवमासीयैर्यथा तुष्यति केशवः । न तथा सर्वदानैश्च तपोभिश्च महामुखैः ॥३२॥ नानेन सदृशो धर्म सर्वधर्मेषु विद्यते । मा गयां यातु मा गङ्गां मा प्रयागं तु पुष्करम् ॥३३॥ मा केदारं कुरुक्षेत्रं मा प्रभासं स्यमन्तकम् । मा गोदां मां च कृष्णां च मा सेतुं मा मरुद्वृधाम् ॥३४॥ वैशाखधर्ममाहात्म्यं शर्मनी कथापगा । तत्र स्नातस्य वै विष्णुः सद्यो हृद्यवरुद्धयते ॥३५॥ मासे माधवसंज्ञेऽस्मिन् यत्स्वल्पेनैव साध्यते । एतद्वहव्ययैर्दानैर्न

जाओ ॥३३॥ केदारनाथ कुरुक्षेत्र और प्रभासादि तीर्थों पर मत जाओ, गोदावरी, कृष्णा, सेतु-बन्ध रामेश्वर कावेरी आदि तीर्थों में जाने की भी कुछ आवश्यकता नहीं है ॥३४॥ वैशाख के धर्मों को निरूपण करने वाली कथा रूपी नदी में जो कोई स्नान करता है विष्णु भगवान उसके हृदय में विराजते हैं ॥३५॥ इस माधवमास में जो कृत्य थोड़े से धन से सिद्ध होते हैं वे बहुत खर्च करने अथवा दान या धर्म से अथवा यज्ञों से सिद्ध नहीं होते हैं ॥३६॥ हे व्याध ! यह वैशाख मास

होते हैं वे बहुत खर्च करने अथवा दान या धर्म से अथवा यज्ञों से सिद्ध नहीं होते हैं ॥३६॥ हे व्याध ! यह वैशाख मास पुण्यों का बढ़ाने वाला है इस मास में ताप के नाश करने वाली पादुका तूने मुझको दी है ॥३७॥ इससे तेरे पूर्व जन्म के किये हुए सुकृत उदय हो गए। हे व्याध ! तेरे ऊपर भगवान प्रसन्न हो गए अब तुझे कल्याण की प्राप्ति होगी ॥३८॥ नहीं तो तेरी ऐसी शुभ बुद्धि होनी कठिन थी। जब मुनीश्वर ऐसा कह रहे थे उसी समय मृत्यु द्वारा प्रेरित बड़ा बली।३९। सिंह

धर्मैर्नापि वै मखैः ॥३६॥ मासोऽयं माधवो नाम व्याध पुण्यविवर्धनः। तस्मिन् मह्यं त्वया दत्ते पादुके तापनाशने ॥३७॥ तेन ते पूर्वकालीनं पुण्यं पाकमुपागतम्। तुष्टस्तु भगवान् प्रायः श्रेयो व्याध भविष्यति ॥३८॥ अन्यथा ते कथं भूयाद्बुद्धिरेतादृशी शुभा। मुनावेवं ब्रुवाणे च मृत्युना प्रेरितो बली ॥३९॥ सिंहो व्याघ्रवधार्थाय प्राद्रवत्क्रोधविह्वलः। मध्ये दृष्ट्वा च मातङ्गं दैवाद्दैवेन कल्पितम् ॥४०॥ तं हन्तुमुद्यतो गच्छन् पदाक्रान्तं व्यवस्थितम्। तयोर्युद्धमभूद्राजन् सिंहमातङ्गयोर्वने ॥४१॥ श्रान्तौ युद्धाच्च विरतौ निरीक्षन्तौ च तस्थतुः। व्याधमुद्दिश्य यच्चोक्तं मुनिना

व्याध के वध के लिये क्रोध विह्वल हो दौड़ता आया बीच में दैवयोग से देवकल्पित हाथी को देख कर ॥४०॥ पहले उसके मारने का महान् उद्योग करने लगा। उस वनमें उन दोनों सिंह और हाथिओं का ऐसा घोर संग्राम हुआ ॥४१॥ कि दोनों थक कर गिर पड़े। युद्ध त्याग दिया और दोनों एक दूसरे को देखते पड़े रहे और इधर मुनीश्वर ने जो कथा व्याध को सुनाई ॥४२॥ जो सब पापों का नाश करने वाली है, दैवयोग से उन दोनों ने भी वही कथा सुनी। जिसके सुनने से ही इनके

शरीर निर्मल हो गए और सब पाप जाते रहे ।४३। पापों से छूट जाने के कारण तत्काल पशु योनि का त्यागकर वे स्वर्ग को गए दोनों को दिव्य देह मिली और सुन्दर सुगंधित चन्दनादि से लेपित ॥४४॥ दिव्य विमान में बैठे जिनमें देवियां सेवा करती जातीं थीं वे दोनों शिर झुका हाथ जोड़े खड़े हुए ॥४५॥ धर्मोपदेशक मुनिवर मार्ग में व्याध के लिये ऐसा वभव देख

वै०

च महात्मना ॥४२॥ समस्तपातकध्वंसि दैवाच्छुश्रुवतुश्च तौ । तेनैव मासमाहात्म्यश्रवणेनामलाशयौ ॥४३॥ शापान्मुक्तौ च तौ देहात् सद्यो मुक्तौ दिवं गतौ । दिव्यरूपधरौ दिव्यौ दिव्यगन्धानुलेपनौ ॥४४॥ दिव्यं विमानमारूढौ दिव्यनारीनिषेवितौ । सद्योऽवनतमूर्द्धानौ प्राञ्जली चोपतस्थतुः ॥४५॥ मुनीन्द्रो धर्मवक्ता च व्याधमुद्दिश्य वै पथि । तौ दृष्ट्वा विस्मितः प्राह: को युवामिति निश्चलः ॥४६॥ दुर्योनौ तु कुतो जन्म युवयोर्वा कथं मृतिः । अहेतुर्विपिनेचास्मिन् परस्परवधोद्यतौ ॥४७॥ एतत्सर्वं सविस्तार्य सम्यग्वदत मेऽनघो । इत्युक्तो मुनिना तेन वचः प्रत्यूचतुः पुनः ॥४८॥ मतङ्गस्य मुनेः

मा०

भा०

टी०

अ०

विस्मित हो पूछने लगे तुम कौन हो ॥४६॥ तुम्हारा जन्म दुष्ट योनि में क्यों हुआ है और अकारण हो इस वन में एक दूसरे को मारने को क्यों उद्यत हुए, तुम्हारी मृत्यु कैसे हुई ॥ ४७ ॥ हे निष्पापों ! सब कथा विस्तार पूर्वक मुझसे कहो, मुनि के ऐसा कहने पर वे कहने लगे ॥ ४८ ॥ मतङ्ग मुनि के दन्तिल और कोहल दो पुत्र हुए, भाग्य दोष से उनके ये नाम हुए ॥ ४६ ॥ रूप यौवन से सम्पन्न सम्पूर्ण विद्या विशारद इसमें

दो पुत्र हुए, शाप दोष से इनके ये नाम हुए ॥ ४६ ॥ रूप यौवन से सम्पन्न सम्पूर्ण विद्या विशारद हमसे

धर्म अर्थ में निपुण हमारे पिता ।५०। मतङ्ग ब्रह्मर्षि सम्पूर्ण धर्मों को जानने वाले कहने लगे हे पुत्रो ! मधुसूदन भगवान के प्रिय मास में ॥५१॥ मार्ग में प्याऊ लगाओ और मनुष्यों को पंखे से हवा करो, मार्ग में छाया के स्थान बनाओ अन्न और शीतल जलदान करो ॥५२॥ प्रातःकाल स्नान कर भगवान का पूजन करो कथा सुनो जिससे सन्सार बन्धन की निवृत्ति

पुत्रौ दन्तिलः कोहलोऽपरः । शापदोषेण तौ जातौ नाम्ना दन्तिकलकोहलो ॥४६॥ रूपयौवन-सम्पन्नौ सर्वविद्याविशारदौ आवामुद्दिश्य प्रोवाच पिता धर्मार्थकोविदः ॥५०॥ मतङ्गोनाम ब्रह्मर्षिः सर्वधर्मविदुत्तमः । वैशाखे मासि तनयौ मधुसूदनवल्लभे ॥५१॥ प्रपां च कुरुतं मार्गे जनान्वीजयतं व्रणम् । मार्गे छायां विधत्तं च भूयन्नं शीतलाम्बु च ॥५२॥ कुरुतं स्नानमुषसि तथैवार्चयतं विभुम् । कथां च शृणुत नित्यं यथा बन्धो निवर्तते ॥५३॥ एवं च बहुभिर्वाक्यैर्बोधितावापि दुर्मति । क्रुद्धोऽभवं दन्तिलोऽहं मत्तोहं कोहलाह्वयः ॥५४॥ क्रुद्धः शशाप तौ सद्यः पिता धर्मेषु लालसः । पुत्रं च धर्मविमुखं भार्यां चा प्रियवादिनीम् ॥५५॥ अब्रह्मण्यं च राजानं त्यजेत् सद्यो न चेत्पतेत् ।

हो ॥५३॥ इस तरह अनेकों प्रकार के वाक्यों से हमको समझाया परन्तु दुर्बुद्धि से हमारी समझ में कुछ भी नहीं आया पिता के वाक्य सुनकर मुझ दन्तिल को अत्यन्त क्रोध आया और कोहल मदोन्मत्त होगया ॥५४॥ तब धर्म की लालसा वाले हमारे पिता ने क्रोधित हो शाप दिया कि धर्म से विमुख पुत्र, कटु वाक्य कहने वाली स्त्री ॥५५॥ और अब्रह्मण्य राजा को तत्काल

त्याग दे, न त्यागें तो पापी हो जो दाक्षिण्य से अथवा लोभ के वशीभूत हो इनका संसर्ग करते हैं ॥५६॥ वे चौदह मन्वन्तर तक नरक भोगते हैं ऐसा विचार कर मद और क्रोध से परिप्लुत हम दोनों को शाप दिया कि ।५७। हे दन्तिल! तू अपने क्रोध के कारण सिंह की योनि प्राप्त करेगा और मदोन्मत्त कोलाहल को मतवाले हाथी की योनि मिलेगी ॥५८ तब हम बड़े

दाक्षिण्यादर्थलोभाद्वा संसर्गं ये प्रकुर्वते ॥॥५६॥ ते सर्वे नरकं यान्ति यावदिन्द्राश्चतुर्दश । इति ज्ञात्वा शशापावां मदक्रोधपरिप्लुतौ ॥५७॥ क्रुद्धोऽहं दन्तिलो भूयाः सिंहः क्रोधपरिप्लुतः । मत्तस्तु कोहलो भूयान्मत्तो मातङ्गयूथपः ॥५८॥ कृतानुतापौ पश्चात्तु प्रार्थयावो विमोचनम् । आवाभ्यां प्रार्थितो भूयो विशापं च ददौ पिता ॥५६॥ युवां प्राप्य च दुर्योनिं कियत्कालान्तरेऽपि च । सङ्गमी भविता तत्र परस्परवधैषिणौः ॥६०॥ तस्मिन्नेव हि समये संवादं व्याधशंखयोः । वैशाखधर्मविषयौ दैवाद्वां श्रवणस्य च ॥६१॥ गमिष्यति क्षणादेव तस्मान्मुक्तिर्भविष्यति । शापान्मुक्तौ पूर्वमेव

दुःखी हुए और शाप निवृत्ति के लिये प्रार्थना करने लगे । हमारी प्रार्थना सुन पिता ने शाप मोक्ष का उपाय हमें बताया ॥५६॥ तुम दोनों पशु योनि पाकर थोड़े दिन पीछे एक दूसरे को मारने के लिये उद्यत होगे ॥६०॥ उसी समय व्याध और शंख का वैशाख धर्म विषयक संवाद दैवयोग से तुम्हारे कानों में जायगा ॥६१॥ तब तत्क्षण तुम्हारी मुक्ति हो जायगी और शाप से छूट ... मेरे वचन मिथ्या नहीं पिता के इस शाप से हमको पशु

...॥६२॥ मेरे पास निवास करोगे। मेरा यह वचन मिथ्या नहीं पिता के इस शाप से हमको पशु

योनि मिली ॥६३॥ आपस में एक दूसरे को मारने की हमारी इच्छा थी दैवयोग से यहाँ चले आये और आप का दिव्य संवाद सुना ॥६४॥ उसी के प्रभाव से हमारी तत्काल मुक्ति होगई। सब कथा कह दोनों ने मुनिश्वर को नस्मकार कर ॥६५॥ मुझसे आज्ञा मांग अपने पिता के पास चले गये वह सब कथा दयानिधि मुनि ने व्याध को सुनाई ॥६६॥ देखो, वैशाख का

रूपमास्थाय पुत्रकौ ॥६२॥ मामेव प्राप्य वसतं नान्यथा मे वचो भवेत्। इति शप्तौ च गुरुणा दुर्योनिं प्राप्य दुर्मती ॥६३॥ प्राप्य दैवात्सङ्गतिं च परस्परवधैषिणौ। संवादं युवयोर्दिव्यं शुभं तं शुश्रुवावहे ॥६४॥ तेन सद्यो विमुक्तिश्च क्षणादेवावयोरभूत्। इति सर्वं समाख्याय प्रणम्य च मुनीश्वरम् ॥६५॥ समामंत्र्याभ्यनुज्ञातौ जग्मतुः पितुरन्तिकम्। तदेव संप्रहृश्याह मुनिर्व्याधं दयानिधिः ॥६६॥ पश्य वैशाखमाहात्म्यश्रवणस्य फलं महत्। मुहूर्तश्रवणादेव तयोर्मुक्तिः करे स्थिता ॥६७॥ इति ब्रुवाणं मुनिपुङ्गवं तं दयानिधिं निस्पृहमग्र्यबुद्धिम्। विशुद्धसत्त्वं सुकृतैकपात्रं संन्यस्तशस्त्रः पुनराह व्याधः ॥६८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे दन्तिलकोहलमुक्तिप्राप्तिर्नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

कैसा माहात्म्य है ! इसके श्रवण का बड़ा फल है कोई क्षण भर भी इसे सुनता है उसे तत्काल मुक्ति मिलती है ॥६७॥ जब मुनि ने इस प्रकार कहा तब व्याध अपने शस्त्र फेंक कृपालु, निस्पृह, प्रबलबुद्धि, विशुद्धसत्त्व और पुण्यपात्र ऋषि से कहने लगा ॥६८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे दन्तिलकोहलमुक्तिप्राप्तिर्नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

व्याध बोले-हे मुने ! मैं बड़ा पापी और दुष्टबुद्धि हूँ आपने मेरे ऊपर बड़ी दयाकी। साधुमहात्मा स्वाभाविक दयालु होते हैं ॥१॥ कहां मैं अकुलीन व्याध और कहाँ मेरी ऐसी बुद्धि, यह सब केवल आपकी कृपा का ही कारण है ॥२॥ हे साधो ! मैं आपका शिष्य हूँ आपका कृपा पात्र हूँ आप द्वारा अनुग्रह के योग्य पुत्र हूँ हे दयानिधे ! मेरे ऊपर ऐसो दया कीजिये

वै० भा०

व्याध उवाच ॥ भवतानुगृहीतोऽस्मि मुने पापोतिदुष्टधीः । दयालवो महान्तो हि स्वभावादेव साधवः ॥१॥ क्व व्याधश्चाकुलिनोहं क्व च मतिरीदृशी । वा केवल भवतामेव मन्येऽनुग्रहमुत्तमम् ॥२॥ अथ साधो च, शिष्योस्मि कृपापात्रोस्मि मानद । अनुग्राह्योऽस्मि पुत्रोस्मि कृपां कुरु दयानिधे ॥३॥ यथा मे न पुनर्भूयादमन्मतिरनर्थदा । सद्भिस्तु सङ्गतिः क्वापि न भूयो दुःखमश्नुते ॥४॥ तस्माद्बोधय मां विप्र सूक्तैरतैर्वृजिनापहैः । येन चाद्धा तरिष्यन्ति संसाराब्धि मुमुक्षवः॥५॥ साधूनां समचित्तानां तथा भूतयावताम् । हीनश्चोत्तमः क्वापि नात्मीयो हि परस्तथा ॥६॥ एकाग्रेण

जिससे फिर मेरी बुद्धि दुष्ट होकर अनर्थ कार्य करने में प्रवृत्त न हो । सत्संगति के पश्चात् फिर दुःख न भोगना पड़े ॥३॥ ॥४॥ इससे हे प्रभो ! मुझे ऐसे पाप नाशक मन्त्रों का उपदेश कीजिये जिससे मुमुक्षु जन इस संसार सागर से सहज ही पार लग जाते हैं ॥५॥ क्योंकि साधु महात्मा समद्रष्टा और प्राणी मात्र पर दया करते हैं उनकी दृष्टि में न कोई अधम है न उत्तम । न अपना है न पराया ॥६॥ जो एकाग्रता से विवेचना कर चित्त की शुद्धता से पूछें वे कैसे ही दोष युक्त हों कैसे ही

उत्तम । न अपना है न पराया ॥६॥ जो एकाग्रता से विवेचना कर चित्त की शुद्धता से पूछें वे कैसे ही दोष युक्त हों कैसे ही

धर्म हीन हों ॥७॥ परन्तु जब वे अपने किये दुष्कर्मों का पश्चात्ताप कर के गुरु से पूछते हैं तभी वे सन्सार बन्धन से छुड़ाने वाले ज्ञान का उपदेश करते हैं ॥८॥ जैसे गंगा स्वभाव से ही मनुष्यों के पापों को दूर करती है ऐसे ही दुर्बुद्धियों के उद्धार करने वाला स्वभाव माहात्माओं का होता है ॥६॥ हे भक्त वत्सल ! हे दयालो ! आपकी संगति से शुश्रूषा, नम्रता और चित्त

विचिन्वन्ति चित्तशुद्धिं च पृच्छति । सर्वदोषयुतो वापि सर्वधर्मोज्झितोपि वा ॥७॥ कृतानुतापश्च यदा यदा पृच्छति वै गुरुम् । तदैवोपदिशन्त्यद्धा ज्ञानं संसारमोचकम् ॥८॥ यथा गंगा मनुष्याणां पापनाशस्वभाविनी । तथा मन्दसमुद्धारस्वभावाः साधवः स्मृताः ॥६॥ मा विचारय मां बोद्धुं दयालो भक्तवत्सल । शुश्रूषुत्वान्नमतत्त्वाच्च शुद्धत्वात्तव संगतेः ॥१०॥ इति व्याधवचः श्रुत्वा पुनर्विस्मितमानसः । साधुसाध्विति संभाष्य धर्मानेतानुवाच ह ॥११॥ शंख उवाच ॥ विष्णुप्रीतिकरान् दिव्यान् संसाराब्धिवि मोचनकान् । कुरु धर्मांश्च वैशाखे यदि व्याध शमिच्छसि ॥१२॥ आतपो बाधते घोरो न च्छाया नाम्बु चात्र च । तस्मात् स्थलान्तरं यावो यत्र च्छाया तु वर्तते

की शुद्धि द्वारा मैं शुद्ध होगया हूँ मुझे उपदेश करिये ॥१०॥ व्याध की ऐसी बातें सुन बड़े विस्मय से मुनि ने कहा, धन्य है, धन्य है, हे व्याध ! कहते हुए धर्मोंपदेश करने लगे ॥११॥ शङ्ख मुनि बोले-हे व्याध ! जो तू शान्ति की इच्छा करता है तो वैशाख के धर्म कर, ये धर्म बड़े दिव्य और भव-बन्धन से छुड़ाने वाले हैं इनसे विष्णुभगवान् प्रसन्न होते हैं ॥१२॥ हे व्याध !

यहां धूप बहुत सताती है न यहाँ छाया है न पानी, चल, कहीं दूसरी जगह चलें जहां छाया हो ॥१३॥ वहां जल पीकर छाया में बैठ कर स्वस्थ चित्त से तेरे सामने पाप नाशक माहात्म्य वर्णन करूंगा ॥१४॥ विष्णुभगवान के माधव मास का माहात्म्य जैसा सुना और देखा गया है वह सब तेरे सामने वर्णन करूंगा। मुनि की यह बात सुन व्याध हाथजोड़कर कहने

॥१३॥ तत्र गत्वा जलं पीत्वा सुच्छायां च समाश्रितः। तत्र ते वर्णयिष्यामि माहात्म्यं पापनाशनम् ॥१४॥ विष्णोर्माधवमासस्य यथा दृष्टं यथाश्रुतम्। इत्युक्तो मुनिना तेन व्याधः प्राह कृताञ्जलिः ॥१५॥ इतोऽविदूरे सलिलं वर्तते च सरोवरे। कपित्थास्तत्र वै सन्ति फलभारेण पीडिताः ॥ १६ ॥ गच्छावस्तत्र संतुष्टिर्भविता नात्र संशयः। व्याधे नैवं समादिष्टस्तेन साकं ययौ मुनिः ॥१७॥ कियद्दूरं ततो गत्वा ददर्शाग्रे सरोवरम्। बककारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥१८॥ हंससारसक्रौञ्चाद्यैः समन्तात्परिशोभितम्। कीचवङ्कषाद्यैश्च कूजितं भ्रम-

लगा ॥१५॥ यहां से थोड़ी सी दूर पर एक निर्मल सरोवर है उसके किनारे पर कैथ के बहुत पेड़ हैं जो फलों के बोझ से नीचे झुक रहे हैं ॥१६॥ वहां चलिये, निश्चत ही वहां चित्त प्रसन्न हो जायगा। व्याध की यह बात सुन शङ्ख मुनि उसके साथ चले ॥१७॥ थोड़ी दूर चल कर देखते हैं कि एक निर्मल सरोवर है वहां बगुला, राजहन्स और चकवा चकवी शोभा दे रहे हैं ॥१८॥ [illegible]

॥१९॥ मगर, कछुआ, मीन आदि जल जीवों से परम मनोहर है कुमोदनी, उत्पल, कल्हार, पुंडरीक, शतपत्र, कोकनद आदि अनेक प्रकार के मल शोभा दे रहे हैं। पक्षियों के कलरव से कान पड़े शब्द सुनाई नहीं देते नेत्रों को बड़ा आनन्द होता है ॥२०॥२१॥ किनारे पर बाँस के वृक्ष चारों ओर अपूर्व शोभा दे रहे हैं बड़, कंजा, कदम्ब, इमली, नीम, पाकर, प्रियाल,

रैरपि ॥१९॥ नक्रकच्छपमीनाद्यैरगाह्यं सुमनोहरम्। कुमुदोत्पलकल्हारपुण्डरीकादिभिर्महत् ॥२०॥ शतपत्रैःकोकनदैः समन्तात्परिशोभितम्। पक्षिणां च कलारावैर्मुखरन्नयोत्सवम् ॥२१॥ तटे कीचकगुल्मैश्च तथा वृक्षैश्च शोभितम्। वटैः करञ्जैर्नीपैश्च चिञ्चिणीभिस्तथैव च ॥ २२ ॥ निम्बप्लक्षप्रियालैश्च चम्पकैर्बकुलैः शुभैः। पुन्नागैस्तुम्बरैश्चैव कपित्थामलकैरपि ॥२३॥ निष्पेष-एणैश्च जम्बूभिः समन्तात्परिशोभितम्। वन्यमातङ्गसारङ्गवराहमहिषादिभिः ॥ २४ ॥ शशैश्च शल्लकैश्चैव गवयैरुपशोभितम्। खङ्गनाभिमृगाद्यैश्च व्याघ्रैः सिंहैर्वृकैरपि ॥२५॥ खरान्तकैश्च शरभैश्चमरीभिः सुमण्डितम्। शाखाशाखान्तरं शीघ्रं प्लवमानैः प्लवंगमैः ॥२६॥ मार्जारैश्चैव

चम्पा, बकुल, पुन्नाग, तुंबर, कैथ, आवला और जामुन आदि चारों ओर सुशोभित हो रहे हैं। वनके हाथी, हिरन, सूकर और भैंस किलोल कर रहे हैं ॥२२-२३॥ ससक, सेही, रोझ, गेंडा, कस्तूरिया मृग, व्याघ्र, सिंह, भेड़िया, गधा, खच्चर, शरभ, सुर गाय आदि अनेक पशु विचर रहे हैं बन्दर लंगूर आदि छलांग मारने वाले जीव वृक्षों को शाखा शाखापर छलांग मार रहे

हैं ॥२५-२६॥ बिल्ली, रीछ और रुरू फिर रहे हैं, झिल्ली झंकारती हैं बांस शब्द करते हैं प्रचंड पवन के वेग से वृक्ष झुक रहे हैं ऐसा दिव्य सरोवर व्याध ने मुनि को दिखलाया ॥२७-२८॥ तृषा पीडित मुनि ने उस सरोवर को देखा और दोपहर को उस रमणीक सरोवर में स्नान किया, ॥२९॥ फिर वस्त्र धारण कर मध्याह्नकृत्य करके देवपूजन से निश्चिन्त हो फल

भल्लूकैर्भीषणं रुरुभिस्तथा । झिल्लीशब्दैश्च कंकारैः कीचकानां रवैस्तथा ॥२७॥ घोरवायुविनिर्घातदारुभारैः समन्वितम् । एतादृशं सरो दिव्यं व्याधे नैव प्रदर्शितम् ॥२८॥ ददर्श मुनिशार्दूलस्तृषया बाधितो भृशम् । स्नात्वा मध्याह्नवेलायां सरस्यस्मिन् मनोरमे ॥२९॥ वाससी परिधायाथ कृत्वा माध्याह्निकीः क्रियाः । देवपूजां ततः कृत्वा भुक्त्वा फलमतन्द्रितः ॥३०॥ व्याधोपनीतं सुस्वादु कपित्थं श्रमहारि च । सुखोपविष्टः पप्रच्छ व्याधं धर्मरतं पुनः ॥३१॥ किं वक्तव्यं मया ह्यद्य तवादौ धर्मतत्पर । धर्माश्च बहवः सन्ति नानामार्गाः पृथग्विधाः ॥३२॥ तत्र वैशाखमासोक्ताः

खाये ।३०। कैथ के फल बड़े मीठे और श्रमनाशक थे इन को व्याध लाया था तब शंखमुनि सुख पूर्वक बैठ व्याध से पूछने लगे ॥३१॥ हे धर्म श्रवण तत्पर व्याध ! तुम कौनसे धर्म को सुनने की इच्छा करते हो, धर्म बहुत हैं और उनके करने की विधि भी अलग २ हैं ॥३२॥ इनमें से वैशाखोक्त धर्म थोड़ा है और बहुत फलदायक है ये सब मनुष्यों को इस लोक और परलोक दोनों जगह फल देनेवाले हैं ।३३। तेरे मन में जो पूछने की इच्छा हो वही पूछ । तब मुनि की बात सुन हाथ जोड़

कर व्याध बोला ॥३४॥ हे महाराज ! मुझे कौन सा कर्म करने से तमोगुण मयी यह व्याध योनि मिली, किस कर्म से मेरी ऐसी बुद्धि होगई और महात्मा की संगति हुई ॥३५॥ हे प्रभो ! यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा है तो यह सब वृत्तान्त मुझसे कहिये । यह सुन, शङ्खमुनि हंसते हुए अपने मुख कमल से मेघ की सी वाणी द्वारा कहने लगे । हे व्याध ? तू शाकल नगर

सूक्ष्मा अपि महार्थदाः । सर्वेषामेव जन्मूनामिहामुत्र फलप्रदाः ॥३३॥ यत्प्रष्टव्यं मनसि ते यच्चादौ तच्च पृच्छताम् । इत्युक्तो मुनिना तेन व्याधः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥३४॥ व्याध उवाच ॥ केन वा कर्मणा चासीदुव्याधजन्म तमोमयम् । केना वा चेदृशी बुद्धिः सङ्गतिर्वा महात्मनः ॥३५॥ एतच्चान्यत्समाचक्ष्व यदि मां मन्यसे प्रभो । इत्युक्तः पुनरप्याह शङ्खो नाम महामुनिः ॥३६॥ मेघगंभीरया वाचा स्मयमानमुखाम्बुजः ॥ शङ्ख उवाच॥शाकले नगरे पूर्वं द्विजस्त्वं वेदपारगः ॥३७॥ स्तम्बो नाम महातेजास्तथा श्रीवत्सगोत्रजः । तवेष्टा गणिका काचिदासीत्तत्संगदोषतः ॥३८॥ त्यक्त्वा नित्यक्रिया नित्यं शूद्रवद्गृहमागतः । शून्याचारस्य दुष्टस्य परित्यक्तक्रियस्य च ॥३९॥ ब्राह्मणी

में पहिले वेदपाठी ब्राह्मण था ॥३६-३७॥ तेरा नाम स्तम्ब था और श्रीवत्सगोत्र में तेरा जन्म हुआ था एक वेश्या से तेरा प्रेम था उसी की संगति के दोष से ॥३८॥ तू नित्य कर्मों का परित्याग कर शूद्र के समान घर आता था इस प्रकार तुझ आचार हीन दुष्टने धर्म क्रिया त्याग दीं किन्तु तेरी स्त्री ब्राह्मणी बड़ी रूपवती थी । वह वेश्या सहित तुझ नीच की सेवा किया

करती थी ॥३९-४०॥ तेरे प्रियतमा तुम दोनों के चरण धोती थी तुम दोनों पलंग पर सोते वह नीचे सोती और तुम दोनों का आज्ञा में लगी रहती ॥४१॥ वेश्या के निषेध करने पर भी वह पतिव्रता अपने धर्म में लगी रही और वेश्या सहित स्वामी की सेवा करते २ ॥४२॥ तथा दुःख भोगते २ बहुत समय बीत गया। एक दिन उसके स्वामी ने भैंस का दूध और मूली

च तदा चासीद्भार्या कान्तिमती तव। सा त्वां हर्यचरत्सुभ्रूः सवेश्यं ब्राह्मणाधमम् ॥४०॥ उभयोः चालयन्ती च पादांस्त्वत्प्रियकारिणी। उभयोरप्यधः शेते उभयोर्वचने रता ॥४१॥ वेश्यया वार्यमाणापि पातिव्रत्यव्रतस्थिता। एवं शुश्रूषयन्त्या हि भर्त्तारं वेश्यया सह ॥४२॥ जगाम सुमहान् कालो दुःखिताया महीतले। अपरस्मिन् दिने भर्त्ता माहिष्यं मूलकान्वितम् ॥४३॥ अभक्षयच्छूद्रधर्मान्निष्पावांस्तिलमिश्रितान्। तदपथ्यमशित्वा तु वमंश्चैव विरेचयन् ॥४४॥ अपथ्याद्दारुणो रोगो व्यजायत भगंदरः। स दह्यमानो रोगेण दिवारात्रं तु भूरिशः ॥४५॥ यावदास्ते गृहं वित्तं तावद्वेश्या च संस्थिता। गृहीत्वा तस्य सा वित्तं पश्चान्नोवास मन्दिरे ॥४६॥ अन्यस्य पार्श्वमासाद्य

खाई ॥४३॥ तथा शूद्रों के भक्षण करने की वस्तु निष्पाव और तिल खाये इस अपथ्य भोजन से उसे दस्त और वमन होने लगी ॥४४॥ और दारुण भगंदर रोग होगया इस रोग से रात दिन उसे घोर वेदना होने लगी ॥४५॥ जब तक घर में धन रहा तब तक वेश्या भी रही ... धन को ले घर छोड़ कर चली गई तो इसे घोर घृणा उत्पन्न हुई और रोग से

अत्यन्त दुःखी हो दीन वाणी से व्याकुल चित्त रोता हुआ ब्राह्मणी से कहने लगा । हे देवी! मैं बहुत निष्ठुर और वेश्यासक्त हूँ,तू मेरी रक्षा कर ॥४७-४८॥ हे सुन्दरी! मुझ पापी ने तेरा कुछ भी उपकार नहीं किया है जो गर्हित प्राणी अपनी नम्र भार्या का मान नहीं करते ॥४६॥ वे पन्द्रह जन्मपर्यन्त नपुंसक होते हैं हे महाभागे ! रातदिन साधु महात्माओं से निंदित हो तेरा

गता घोरा सुनिर्घृणा । ततः सदीनवचनो व्याधिबाधाप्रपीडितः ॥४७॥ उक्तवान् स रुदन् भार्यां रुजा व्याकुलमानसः । परिपालय मां देवि वेश्यासक्तं सुनिष्ठुरम् ॥४८॥ न मयोपकृतं किंचित्त्वयि सुन्दरि पापिना । यो भार्यां प्रणतां पापो नाभ्नुमन्येत गर्हितः ॥४६॥ स षण्ढो भविता भद्रे दशजन्मसु पञ्चसु । दिवारात्रं महाभागे निन्दितः साधुभिर्जनैः ॥५०॥ पापयोनिमवाप्स्यामि त्वां साध्वामवमन्य वै । अहं क्रोधेन दग्धोऽस्मि तव श्रुनयनेन वै ॥५१॥ एवं ब्रुवाणं भर्तारं कृताञ्जलिपुटाब्रवीत् । न दैन्यं भवता कार्यं न ब्रीडा कान्त मां प्रति ॥५२॥ न चापि त्वयि मे क्रोधो येन दग्धोऽस्मि वक्ष्यसि । पुरा कृतानि पापानि दुःखानीह भवन्ति हि ॥५३॥ तानि या क्षमते साध्वी

अवज्ञा करने से मैं पाप योनि में पड़ूंगा । मैं तेरे विनीत भाव पर भी क्रोध के मारे जलता हूँ ॥५०-५१॥ जब स्वामी ने ऐसा कह तब वह हाथ जोड़ कर बोली-हे कान्त! तुम मेरे प्रति दीनता मत करो, लज्जा भी मत करो ॥५२॥ मैंने आपके ऊपर कभी क्रोध नहीं किया,जिससे आप जलते बताते हो मेरे पहिले किए हुए पाप ही यहां आकर उदय हुए हैं ॥५३॥ जो

इनको सहन करे, वही साध्वी स्त्री है और वही उत्तम पुरुष है मुझ पापिनी ने पूर्व जन्म में जो पाप किये उनके भोगने में मुझे कुछ दुःख या विषाद नहीं है ऐसा कह वह सुमुखी सेवा करने लगी ॥५४॥५५॥ अपने पिता और भाइयों से धन लाकर वह क्षीरशायी विष्णुभगवान और अपने पति की शुश्रूषा में लगी रही ॥५६॥ दिन रात मल मूत्र धोकर शुद्ध रक्खे और

पुरुषो वा स उत्तमः । यन्मया पापया पापं कृतं वै पूर्वजन्मनि ॥५४॥ तद्भुञ्जन्त्या न मे दुःखं न विषादः कथंचन । इत्येवमुक्त्वा भर्तारं सा शुभ्रूस्तमपालयत् ॥५५॥ आनीय जनकाद्वित्तं बन्धुभ्यो वरवर्णिनी । क्षीरोदवासिनं देवं भर्तारं चाप्यचिन्तयत् ॥५६॥ शोधयन्ती दिवारात्रौ पुरीषं मूत्रमेव च । नखेन कर्षती भर्तुः कृमीन् कष्टाच्छनैः शनैः ॥५७॥ न सा स्वपिति रात्रौ तु न दिवा वरवर्णिनी । भर्तुर्दुःखेन संतप्ता दुःखितेदमवोचत ॥५८॥ देवाश्च पान्तु भर्तारं पितरो ये च विश्रुताः । कुर्वन्तु रोगहीनं मे भर्तारं गतकल्मषम् ॥५९॥ चण्डिकायै प्रदास्यामि रक्तमांससमुद्भवम् । सुष्ठ्वन्नं महिषोपेतं भर्तुरारोग्यहेतवे ॥६०॥ मोदकान् कारयिष्यामि विघ्नेशाय महात्मने । मन्दवारे

अपने स्वामी के जो कीड़े पड़ गये थे उन्हें धीरे २ निकालती ॥५७॥ रात दिन नींद त्यागदी भर्त्ता के दुःख से दुखी हो कहने लगी ॥५८॥ हे पित्रीश्वरो ! तुम मेरे पति की रक्षा करो और मेरे स्वामी को रोग हीन और पाप रहित करो ॥५९॥ मैं रक्त मांस और भैंस के दूध से युक्त सुन्दर अन्न अपने पति की आरोग्यता के निमित्त चंडिका को अर्पण करूंगी ॥६०॥

में रक्त मांस और भैंस के दूध से युक्त सुन्दर अन्न अपने पति की आरोग्यता के निमित्त चंडिका को अर्पण करूंगी ॥६०॥

विघ्नविदारण श्रीगणेशजी के निमित्त मोदक दान करूंगी और दस शनिवार उपवास करूंगी ॥६१॥ मिष्ठान्न और घृत का भोजन नहीं करूंगी देह पर तेल मर्दन और उबटन लगाना छोड़ दूंगी किन्तु मेरा भर्त्ता निरोग होकर सौ वर्ष तक जीवित रहे । ऐसे वह देवी प्रति दिन कहती थी ।६२-६३। तब एक महात्मा देवल नाम के मुनि वैशाख में गर्मी के मारे संध्या समय

करिष्यामि चोपवासान् दशैव तु ॥६१॥ नोपभुञ्जामि मधुरं नोपभुञ्जामि वै घृतम् । तैलाभ्यंग-
विहीनाहं स्थास्ये नैवात्र संशयः ॥६२॥ जीवतां रोगहीनोऽयं भर्ता मे शरदां शतम् । एवं सा
व्याहरद्देवी वासरे वासरे गते ॥६३॥ तदा चागान्मुनिः कश्चिन्महात्मा देवलाह्वयः । वैशाखे मासि
घर्मार्तः सायाह्ने तस्य वै गृहम् ॥६४॥ तदा वै भार्यया चोक्तं भिषग्वै गृहमागतः । तेन वै रोग-
हानिः स्यात्तस्यातिथ्यं करोम्यहम् ॥६५॥ ज्ञात्वा त्वां धर्मविमुखं भिषग्व्याजेन वञ्चितः । पादावने-
जनं कृत्वा तज्जलं मूर्ध्नि साक्षिपत् ॥६६॥ पानकं च ददौ तस्मै धर्मार्ताय महात्मने । त्वयानुमोदिता
सायं घर्मतापनिवारकम् ॥६७॥ स प्रातरुदिते सूर्ये मुनिः प्रायाद्यथागतः । अथ चाल्पेन कालेन

उसके घर आये ॥६४॥ तो वह स्त्री कहने लगी यह वैद्य मेरे घर आये हैं इन्हीं के द्वारा रोगनाश हो जायगा। मैं इसकी सेवा करूंगी ॥६५॥ मुझे अब तक धर्मसे विमुख जान वैद्यों ने ठग लिया। उसके चरण धोकर जल शिर पर छिड़क लिया ।६६। और गर्मीसे व्याकुल महात्माको देख तेरी स्त्री ने आज्ञा लेकर शर्बत पिलाया जिससे उसे शान्ति मिली ॥६७॥ दिन निकलने

पर वह मुनि जसे आये वैसे ही चले गये थोड़े दिन पीछे तुझे सन्निपात होगया ॥६८॥ जब तेरी स्त्री तुझे त्रिकुटा पिलाने को लाई तो तूने उसकी उंगली काटली तभी तेरी दांती भिचगई ॥६९॥ उसकी कोमल उंगली का एक टुकड़ा तेरे मुख में रह गया और उसी अवस्था में तेरी मृत्यु हो गई ॥७०॥ तू अपनी सुन्दर शय्या पर उसी वेश्या का ध्यान करता हुआ मर गया

सन्निपातोऽभवत्तव॥६८॥ त्रिकटु नीयमानायां भर्ताङ्गुलिमखण्डयत्। उभयोर्दन्तयोः श्लेषः सहसा समपद्यतः ॥६९॥ तत्खण्डमङ्गुलेर्वक्के स्थितं भर्तुः सुकोमलम्। खण्डयित्वाङ्गुलिं भर्ता पञ्चत्वमगमत्तदा ॥७०॥ शय्यायां सुमनोज्ञायां स्मरंस्तां पुंश्चलीं शुभा। मृतं विज्ञाय भर्तारं भार्या कांतिमती तव ॥७१॥ विक्रीत्वा चापि वलयं गृहीत्वा चेन्धनं बहु। चक्रे चितिं तेन साध्वी मध्ये कृत्वा पतिं तदा ॥७२॥ अवगुह्य भुजाभ्यां च पादौ चाश्लिष्य पादयोः। मुखे मुखं विनिक्षिप्य हृदयं हृदये तथा ॥७३॥ जघने जघनं देवी ह्यात्मानं सन्निवेश्य च। दाहयामास कल्याणी भर्तृदेहं रुजान्वितम्। आत्मना सह कल्याणी ज्वलिते जातवेदसि ॥७४॥ विमुच्य देहं सहसा जगाम पतिं

तेरी रूपवती स्त्री यह देख ॥७१॥ अपना कंकण बेचकर बहुत सा ईंधन लई। बड़ी चिता बना कर बीच में पति को रख ॥७२॥ भुजा से भुजा मिला, पांव से पांव, मुख में मुख, और हृदय में हृदय लगा ॥७३॥ जंघा में जंघा करके आत्मा को सन्निवेशित कर उसने अपने स्वामी के रोग पीड़ित शरीर का अग्नि संस्कार किया इस प्रकार उस कल्याणी ने अपने को भी

जलती अग्नि में जला दिया ।७४। वह शरीर त्याग पति का आलिंगन कर तत्काल विष्णुलोक को चली गई वैशाख में पानी का दान करने से और चरण धोकर जल शिरपर छिड़कने से योगि दुर्लभ गति उसे मिल गई ॥७५॥ और तूने समस्त पापों से छूटने पर भी अंतकाल में वेश्या का स्मरण करने से देह त्यागकर घोर व्याध का जन्म धारण किया, तुझे सदा हिंसा प्यारी

समालिंग्य मुरारिलोकम् । पानीयदानेन च माधवेस्मिन्पादावनेजादपि योगिगम्यम् ॥७५॥ त्वमन्तकाले गणिकाविचिन्तया देहं त्यक्त्वा मुक्तसमस्तकिल्बिषः । जन्म व्याधं प्राप्तवान् घोररूपं हिंसासक्तः सर्वदोद्वेगकरी ॥७६॥ दत्तं त्वया पानकस्यापि दानं मासेनुज्ञां माधवे साध्वि जाने । व्याधो जातस्तेन जाता सुबुद्धिर्मर्मान् प्रष्टुं सर्वसौख्यैकहेतून् ॥७७॥ घृतं मूर्ध्ना पादशौचावशिष्टं जलं मुनेः सर्वपापापहारि । तेनेयं ते सङ्गतिर्मे वनेऽस्मिन्यया भूयात्सम्पदा सन्ततिश्च ॥७८॥ इत्येतत्सर्वमाख्यातं पूर्वजन्मनि यत्कृतम् । कर्म पुण्यं पापकं च दृष्टं दिव्येन चक्षुषा ॥७९॥ गोप्यं

है और चित्त को सदा उद्वेग रहता है ॥७६॥ तूने वैशाख में शर्बत पान कराने की आज्ञा दी इससे व्याध योनि पाकर भी तेरी ऐसी सुबुद्धि हुई है जिससे तूने संपूर्ण सुखों के हेतु धर्म पूछे ॥७७॥ और तूने मुनि के चरण धोने का पाप नाशक जल अपने मस्तक के ऊपर छिड़का, इसी से तुझे सत्संगति प्राप्त हुई है जिससे धन संतान की वृद्धि होती हैं ॥ ७८ ॥ इस प्रकार तूने पूर्व जन्म में जो-जो कर्म किये वे सब बतलाये, तेरे ये पाप और पुण्य कर्म मैंने दिव्य दृष्टि से देखे हैं ॥७९॥

अब जो कोई और गुप्त वार्ता पूछने की तुझे इच्छा हो वह तू पूछ । तेरा चित्त शुद्ध हो गया है हे महामते ! तेरा कल्याण हो ॥८०॥ इति श्रीस्कन्द पुराणे वैशाख माहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे व्याधस्य पूर्वजन्मकथनं नामाष्टदशोऽध्यायः ॥१८॥

व्याध बोला—हे ब्रह्मन् ! आपने समस्त शुभ फल दाता भागवत धर्म विष्णु के निमित्त बताये इनमें भी वैशाख-

वा ते प्रवक्ष्यामि यद्भवाञ्छ्रोतुमिच्छति । जाता ते चित्तशुद्धिर्वै स्वस्ति भूयान्महामते ॥८०॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्य नारदाम्बरीषसंवादे व्याधोपाख्याने व्याधस्य पूर्वजन्मकथन नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

व्याध उवाच ॥ विष्णुमुद्दिश्य कर्तव्या धर्मा भागवताः शुभाः । तत्रापि माधवीयाश्च इत्युक्तं तु त्वया पुरा ॥१॥ स विष्णुः कीदृशो ब्रह्मन् किं वा तस्य हि लक्षणम् । किं मानं तस्य सद्भावैः कैर्ज्ञेयो भगवान्विभुः ॥२॥ कीदृशा वैष्णवा धर्माः केनासौ प्रीयते हरिः । एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन् किंकराय महामते ॥३॥ इति पृष्टस्तु व्याधेन पुनः प्राह स वै द्विज । प्रणम्य जगतामीशं नारा-

मास के धर्म सबसे उत्तम हैं ॥१॥ तो हे प्रभो ! वह विष्णु कैसे हैं और उनके लक्षण क्या हैं उनका परिमाण क्या है और कौन लोग अपने सद्भावों से उन्हें जान सकते हैं ॥२॥ वैष्णव धर्म क्या है, जिनसे विष्णु भगवान प्रसन्न होते हैं हे महामते ! यह सब मुझ से बताइये मैं आपका सेवक हूँ ॥३॥ जब व्याध ने इस प्रकार पूछा तब वह मुनि जगदीश अनामय नारायण को

नमस्कार कर फिर कहने लगे ॥४॥ शंख बोले—हे व्याध ! सुन, मैं विष्णु के कल्मष रहित रूप का वर्णन करता हूँ यह रू। ब्रह्मा आदि से लेकर किसी मुनि तक के ध्यान में नहीं आता ॥५॥ विष्णु भगवान पूर्ण शक्तियुक्त, पूर्ण गुण विशिष्ट, सकलेश्वर, निर्गुण, निश्चेष्ट, अनन्त, सच्चिदानन्दरूप हैं ॥६॥ सम्पूर्ण चराचर विश्व के वही स्वामी है यह उन्हीं के आश्रय

यणमनामयम् ॥४॥ शङ्ख उवाच ॥ शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि विष्णुरूपमकल्मषम् । यदचिन्त्यं विरिञ्चाद्यैर्मुनिभिर्भावितात्मभिः ॥५॥ पूर्णशक्तिः पूर्णगुणो निर्दिष्टः सकलेश्वरः । निर्गुणो निष्कलोऽनन्तः सच्चिदानन्दविग्रहः ॥६॥ यदेतदखिलं विश्वं सचराचरमीदृम् । साधीशं साश्रयं यच्च यद्वशे नियतं स्थितम् ॥७॥ अथ ते लक्षणं वच्मि ब्रह्मणः परमात्मनः । उत्पत्तिस्थितिसंहारा ह्यावृत्तिर्नियमस्तथा ॥८॥ प्रकाशो बन्धमोक्षौ च वृत्तिर्यस्माद्भवन्त्यमी । स विष्णुर्ब्रह्मसंज्ञोऽसौ कवीनां संमतो विभुः ॥९॥ साक्षाद्ब्रह्मेति तं प्राहुः पश्चाद्ब्रह्मादिकानपि । ब्रह्मशब्दं सोपपदं ब्रह्मादिषु विदो विदुः ॥१०॥ नान्येषां ब्रह्मता क्वापि तच्छक्त्यैकांशभागिनाम् । तदेतच्छास्त्रगम्यं हि

और वश में है ॥७॥ अब मैं तुझे उसी परमात्मा ब्रह्म के लक्षण बताता हूँ जिससे उत्पत्ति, स्थिति, संहार, आवृत्ति, नियम ॥८॥ प्रकाश, बंध, मोक्ष और वृत्ति होती हैं पण्डित लोग उसी विष्णु को ब्रह्म कहते हैं ॥९॥ इसी को साक्षात् ब्रह्म कहते हैं पश्चात् ब्रह्मादि को भी उसके उप पद ब्रह्म शब्द की ज्ञानी जन व्युत्पत्ति कहते हैं ॥१०॥ एवं जो उसके एक-एक अन्श

संयुक्त हैं उनमें अज्ञत्व कहां, इस परमात्मा के जन्मादि तो केवल शास्त्र से जानने योग्य हैं ॥११॥ वेद, स्मृति, पुराण, इतिहास, पंचरात्र और महाभारत से विष्णु भगवान के आत्मास्वरूप हैं ॥१२॥ इन्हीं के ही द्वारा विष्णु भगवान जाने जाते हैं अन्य किसी प्रकार से नहीं जाने जाते ये विष्णु भगवान केवल वेद से ही जाने जाते हैं ॥१३॥ वेद वेद्य सनातन नारायण

वै०

जन्माद्यस्य महाविभोः ॥११॥ शास्त्रं च वेदाः स्मृतयः पुराणं वै तदात्मकम् । इतिहासः पञ्चरात्रं भारतं च महामते ॥१२॥ एतैरेव महाविष्णुर्ज्ञेयो नान्यैः कथंचन । नावेदविदमुं विष्णुं मनुते च नरः क्वचित् ॥१३॥ नैन्द्रियैर्नानुमानैश्च न तर्कैः शक्यते विभुम् । ज्ञातुं नारायणं देवं वेदवेद्यं सनातनम् ॥१४॥ अस्यैव जन्मकर्माणि गुणाञ्ज्ञात्वा यथामति । मुच्यते जीवसङ्घाश्च तदा तद्वश-वर्तिनः ॥१५॥ क्रमाद्विष्णोश्च महात्म्यं यथा सातिशयं भवेत् । एकैकस्मिन् स्थिता शक्तिर्देवर्षि-पितृमातृके ॥१६॥ प्रत्यक्षेणागमेनापि तथैवानुमयापि च । आदौ नरोत्तमं विद्याद्बले ज्ञाने सुखं तथा ॥१७॥ तस्माद्भूपं शतगुणं विद्याज्ज्ञानादिभिर्वृतम् । भूपान्मनुष्यगन्धर्वान् विद्याच्छतगुणा-

मा०

१८८

भगवान इन्द्रिय अनुमान और तर्क द्वारा नहीं जानने में आते हैं ॥१४॥ इनके जन्म कर्म और गुणों को जानकर प्राणी मोक्ष पाते हैं और सदा उसी के आधीन रहते हैं ॥१५॥ क्रम से विष्णु भगवान का माहात्म्य सातिशय होता है इसी प्रकार देव, ऋषि, पिता और माता प्रत्येक ... प्रत्यक्ष आगम या अनुमान द्वारा उत्तम और

सुख में प्रथम मनुष्य को उत्तम जानो ॥१७॥ फिर ज्ञानादि द्वारा आवृत राजा को सौगुना अधिक जानो ॥१८॥ इनसे तत्त्वाभिमानी देवताओं को शतगुणाधिक जाने, तत्त्वाभिमानी देवताओं से भी सप्तऋषि बड़े हैं । सप्तऋषियों से अग्नि, अग्नि से सूर्यादि, सूर्य से बृहस्पति, बृहस्पति से वायु, वायु से इन्द्र, इन्द्र से पार्वती, पार्वती से जगद्गुरु महादेव, शंभु से बुद्धि देवी और

धिकान् ॥१८॥ तत्त्वाभिमानिनो देवांस्तेभ्यो विद्याच्छताधिकान् तत्त्वाभिमानिदेवेभ्यः सप्तैवऋषयो वराः ॥१९॥ सप्तर्षिभ्यो वरो ह्यग्निरग्नेः सूर्यादयस्तथा । सूर्याद्गुरुर्गुरोः प्राणः प्राणादिन्द्रो महाबलः ॥२०॥ इन्द्राच्च गिरिजा देवी देव्याः शम्भुर्जगद्गुरु । शम्भोर्बुद्धिर्महादेवी बुद्धेः प्राणो बलात्मकः ॥२१॥ न प्राणात्परमं किंचित् प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् । प्राणाज्जातमिदं विश्वं प्राणात्मकमिदं जगत् ॥२२॥ प्राणे प्रोतमिदं सर्वं प्राणादेव हि चेष्टते सर्वाधारमिमं प्राहुः सूत्रं नीलाम्बुदप्रभम् ॥२३॥ लक्ष्मीकटाक्षमात्रेण प्राणस्यास्य स्थितिर्भवेत् ॥ व्याध उवाच ॥ सा लक्ष्मीर्देव-

बुद्धि से भी प्राण बलिष्ठहै ॥१९—२१॥ प्राण से अधिक कुछ नहीं प्राण में ही सबहैं प्राण से ही संसार स्थितहैं और यह सम्पूर्ण जगत् प्राणात्मकहै ॥२२॥ सब प्राण से प्रोत है और प्राण से ही सब जगत् चेष्टितहै नील मेघ के समान प्रभायुक्त सब का आधार भूत इसको सूत्र कहतेहैं ॥२३॥ लक्ष्मी के कटाक्ष मात्र से इनकी स्थितिहै । तब व्याध बोला-तो वह लक्ष्मी देव देव विष्णु भगवान की एक मात्र कृपा पात्र है ॥२४॥ विष्णु भगवान से अधिक या समान कोई नहींहै जीव में इस

प्राण नाम सूत्र कैसे हुआ ? हे ब्रह्मन् मेरे सामने इसका निर्णय कहो परमात्मा प्राण से अधिक कैसे हैं ॥२५-२६॥ शङ्ख बोले-हे व्याध ! जो निर्णय तू पूछता है वह सुन मैं सम्पूर्ण जीवों द्वारा प्राणाधिक्य के उद्देश से कहता हूँ ॥२७॥ प्राचीन काल में सनातन नारायण भगवान ने कमल योनि में ब्रह्मादि देवता रचकर कहा, मैं ब्रह्मा को तुम्हारा राजा बनाऊंगा और जो कोई

वै०

देवस्य कृपालेशैकभागिनी ॥२४॥ न विष्णोः परमं किंचिन्न समो वा कथंचन । कथं जीवेष्वयं प्राणः सूत्रनामाधिकोऽभवत् ॥२५॥ निर्णयो वा कथं ह्यस्य प्राणाधिक्यं कथं विभो । एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन् कथं प्राणाद्विभुस्सः परः ॥२६॥ शङ्ख उवाच ॥ शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि यत्पृष्टं निर्णयं त्वया । प्राणाधिक्यं समुद्दिश्य जीवैश्च सकलैरपि ॥२७॥ पुरा नारायणो देवः पद्मसृष्टौ सनातनः । सृष्ट्वा ब्रह्मादिकान् देवानिदं प्राह जनार्दनः ॥२८॥ साम्राज्येऽहं स्थापयेयं ब्रह्माणं वः पतिं प्रभुम् । यो युष्मास्वधिको देवो यौवराज्ये सुरेश्वरः ॥२९॥ त स्थापयत शीलाढ्यं शौर्यौदार्यगुणान्वितम् । इत्युक्ता विभुना देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः ॥३०॥ एवं विवदिरेऽन्योन्यमहं भूयामह त्विति । सर्वे

मा०

१९०

मा०

टी०

तुम में सर्व श्रेष्ठ हो उसे तुम युवराज बनाओ परन्तु वह शील, शौर्य और औदार्यादि गुणों से युक्त हो जब भगवान ने ऐसा कहा तो देवता इन्द्र के पास जा ॥२८॥ परस्पर विवाद करने लगे कि हम होंगे, सब विवाद करते थे कोई बोले सूर्य सर्वश्रेष्ठ हैं

के पास गये ॥३२॥ सब देवता नमस्कार कर हाथजोड़ उनसे कहने लगे हे महाराज ! हमने आपस में बहुत विचार किया ॥३३॥ परन्तु हम में कोई भी अधिक श्रेष्ठ नहीं दिखाई देता है अतः हे प्रभो ! आप ही इसका निर्णय करके महारे संशय को दूर करिये ॥३४॥ देवताओं ने जब यह प्रश्न किया तब भगवान हंस कर कहने लगे कि मेरे विराट् रूप शरीर में से

विवदमानाश्च सूर्यं केचित्परं विदुः ॥३१॥ शक्रं केचिपरं कामं केचित्तूष्णी तु तस्थिरे । ते निर्णय-मपश्यन्तः प्रष्टुं नारायणं ययुः ॥३२॥ नमस्कृत्य पुनः प्राहुः सर्वे प्राञ्जलयोऽमराः । विचारितं महाविष्णो सर्वैरस्माभिरञ्जसा ॥३३॥ अस्मासु देवमधिकं नैव विद्मः कथंचन । त्वमेव निर्णयं ब्रूहि देवाः संशयिनस्त्विमे ॥३४॥ इति पृष्टोऽमरैः सर्वैः प्रहसन्निमब्रवीत् । देहाद्यस्माच्च वैराजा-द्यस्मिन्निष्क्रामति ह्ययम् ॥३५॥ पतिष्यति प्रविष्टे तु यस्मिन्वै ह्युत्थितो भवेत् । स देवो ह्यधिको नूनं नापरस्तु कथंचन ॥३६॥ इत्युक्तास्ते ततः सर्वे तथास्त्विति वचोऽब्रुवन् । निश्चक्राम जयन्ताह्वः पादात्पूर्वं सुरेश्वरः ॥३७॥ तदा पंगुममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा । शृण्वन्पिबन् वदञ्जिघ्रन्

जिसके निकलने से शरीर गिर पड़े और फिर उसके प्रवेश होने से खड़ा हो जाय वह सब देवताओं में अधिक श्रेष्ठ है और कोई भी नहीं ॥३५॥३६॥ यह सुनकर सब देवताओं ने "तथास्तु" ऐसा ही हो, कहा । तब जयंत नामक देवता भगवान के पांवों में से निकल गया ॥३७॥ तो उसको पंगु कहने लगे, परन्तु शरीर नहीं गिरा वह तो सुनता है, पीता है, सूंघता है,

देखता है, चलता है ॥३८॥ फिर गुह्येन्द्रिय मेंसे दक्ष नाम प्रजा पति निकल गये तब उसे षंढ कहने लगे परन्तु देह न गिरा ॥३९॥ पूर्ववत् सुनता, पीता, बोलता, सूंघता, देखता और चलता रहा । फिर हाथों से सम्पूर्ण देवताओं का स्वामी इन्द्र निकला ॥४०॥ तो उसे हस्त हीन कहने लगे परन्तु शरीर नहीं गिरा, वह पहिले की तरह ही सुनता पीता बोलता सूंघता

पश्यन्नास्ते चलन्नपि ॥३८॥ पश्चाद्गुह्याद्विनिष्क्रान्तो दक्षो नाम प्रजापतिः । तथा षण्ढममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥३९॥ शृण्वन्पिबन् वदञ्जिघ्रन् पश्यन्नास्ते चलन्नपि । पश्चाद्धस्ताद्विनिष्क्रान्त इन्द्रः सर्वामरेश्वरः ॥४०॥ हस्तहीनममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा । शृण्वन्पिबन् वदञ्जि० न्नापि ॥४१॥ लोचनाभ्यां विनिष्क्रान्तः सूर्यस्तेजस्विनां वरः । तदा काणममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥४२॥ शृण्वन् पिबन् वदञ्जिघ्रन् पश्यन्नास्ते चलन्नपि । घ्राणात्पश्चाद्विनिष्क्रान्तौ नासत्यौ विश्वभेषजौ । अजिघ्राणममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥४३॥ शृण्वन् पिबन् वदञ्जि० न्नापि । श्रोत्राद्दिशो विनिष्क्रान्ता न देहः पतितस्तदा । तदामुं बधिरं प्राहुर्न मृतेति

रहा ॥४१॥ तत्पश्चात् नेत्रों से सब तेजस्वियों में श्रेष्ठ सूर्य निकला तब उसे काना कहने लगे परन्तु देह नहीं गिरा ॥४२॥ पूर्ववत् सुनता पीता बोलता रहा फिर नाक से अश्विनी कुमार निकल गये तब उसे नासिका रहित कहने लगे परन्तु देह नहीं

नहीं कहा ॥४३-४४॥ फिर जिह्वा से वरुण निकल गया तो उसे अरसज्ञ कहने लगे परन्तु देह न गिरी ॥४५॥ पूर्ववत् जीती, चलती, खाती, जानती और श्वांस लेता रहा फिर वाणी से वागीश्वर अग्नि निकला ॥४६॥ तब उसे गूंगा कहने लगे परन्तु देह न गिरी पूर्ववत् सब काम करती रही ॥४७॥ फिर मनको चैतन्य करने वाले रुद्र मन से निकल गये तो उसे जड़ता कहने

कथंचन ॥४४॥ शृण्वन् पिब० न्नापि । वरुणो रसनायास्तु विनिष्क्रान्तस्ततः परम् । तदा रसज्ञ-मेवाहुर्न देहः पतितस्तदा ॥४५॥ जीवंश्चन्नदन्नास्ते तथा जानन् श्वसन्नपि । ततो वाचो विनिष्क्रान्तो वाह्ववागीश्वरो विभुः ॥४६॥ तदा मूकममुं प्राहुर्नदेहः पतितस्तदा । जीवंश्चलन्नदन्नास्तेत० ॥४७॥ पश्चाद्रुद्रो विनिष्क्रान्तो मनसो बोधनात्मकः । तदा जडममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥४८॥ जीवश्चलन्नं० पश्चात्प्राणो विनिष्क्रान्तो मृतमेनः तदा विदुः पुनरेवं तदा प्राहुर्देवा विस्मितमानसाः ॥४९॥ देहमुत्थापयेद्यस्तु पुनरेवं व्यवस्थितः । स एव ह्यधिकोऽस्मासु युवराजो भविष्यति ॥५०॥ इत्येवं तु प्रतिश्रुत्य विविशुश्च यथाक्रमम् । जयन्तः प्राविशत्पादौ नौत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥५१॥ गुह्यं

लगे परन्तु देह न गिरी ॥४८॥ पूर्ववत चलती रही फिर प्राणों के निकलते ही उसे मृत कहने लगे तब देवता विस्मित हो कहने लगे ॥४९॥ जो कोई हम में से इस गिरी हुई देह के उठाने में समर्थ होगा वही सर्व श्रेष्ठ है और वही युवराज होगा ॥५०॥ ऐसी प्रतिज्ञा कर क्रम से प्रवेश करने लगे प्रथम जयन्त ही चरणों में प्रविष्ठ हुआ परन्तु देह नहीं उठी ॥५१॥ दक्ष

गुह्येन्द्रिय द्वारा प्रविष्ट हुआ परन्तु देह न उठी इन्द्र हाथों में प्रविष्ट हुआ परन्तु देह नहीं उठी ॥५२॥ सूर्य नारायण नेत्रों में प्रविष्ट हुए परन्तु देह ज्यों की त्यों पड़ी रही इसी तरहत दिशा नेत्रों में, वरुण जिह्वा में, अश्विनी कुमार नासिका में, अग्नि वाणी में, रुद्र मन में प्रविष्ट हुए परन्तु देह फिर भी न उठी ॥५३-५५॥ सबसे पीछे प्राण घुसे तो प्राणों के प्रवेश करते ही

वै०

च प्राविशद्धस्तो नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् । इन्द्रो हस्तौ विवेशाथ नोत्तस्थौ० ॥५३॥ चक्षुः सूर्यः प्रविष्टोऽभून्नोत्तस्थौ तत्क० । दिशः श्रोत्रे प्रविविशुर्नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥५३॥ वरुणः प्राविशज्जिह्वां नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् । नासां विविशतुर्दस्रौ नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥५४॥ वह्निश्च प्राविशद्वाचं नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् । मनश्च प्राविशद्रुद्रो नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥५५॥ पश्चात्प्राणो विवेशासीत्तदोत्तस्थौ कलेवरम् । तदा देवा विनिश्चित्य प्राणं देवाधिकं विभुम् ॥५६॥ बले ज्ञाने च धैर्ये च वैराग्ये प्राणनेऽपि च । तोऽभिषेचयांचक्रु र्यौवराज्ये महाप्रभुम् ॥५७॥ उत्कृष्टस्थितिहेतुत्वादुक्थमेकं तदा जगुः । तस्मात्प्राणात्मकं विश्वं सर्वं स्थावरजङ्गमम् ॥५८॥ अंशैः पूर्णैर्बला-

मा० टी०

शरीर उठ खड़ा हुआ तब देवताओं ने निश्चय किया कि प्राण ही समस्त देवताओं का आधीश्वर और व्यापक है ॥५६॥ तथा बल, ज्ञान, धैर्य, वैराग्य और जीवन में भी यह सब से अधिक है अतएव प्राण को ही युवराज बनाया ॥५७॥ और उसके सम्मानार्थ साम वेद का गान करते ... ॥५८॥ ...

और बलवान प्राण ही जगत् पति है प्राण हीन जगत् कुछ भी नहीं है क्योंकि विना प्राणों के वृद्धि भी नहीं होती ॥५९॥ विना प्राणों के कुछ स्थिति नहींहै न सन्सार में कुछ रहता हीहै इसी लिये प्राण सम्पूर्ण जीवों में अधिक बलवान और सब जीवोंका अन्तरात्माहै ॥६०॥ प्राणों से अधिक या समान न शास्त्रों में था न पहिले कभी कुछ देखा न सुनाहै भिन्न २

ढ्यैश्च पूर्णोऽयं जगतां पतिः । न प्राणहीनं जगदस्ति किंचित्प्राणेन हीनं न च वै समेधते ॥५९॥ प्राणेन हीनं । स्थितिमन्न किंचित्प्राणेन हीनं न च किंचिदस्ति । तस्मात् प्राणः सर्वजीवाधिको-ऽभूद्बलाधिकः सर्वजीवान्तरात्मा ॥६०॥ प्राणात्कोऽपि ह्यधिको वा समो वा शास्त्रे दृष्टः श्रुतपूर्वो न चास्ते तत्तत्कार्यानुग प्राणो ह्येको देवो ह्यनेकधा ॥६१॥ तस्मात् प्राणं वर प्राहुः प्राणोपास-नतत्पराः । लीलयैव जगत्स्रष्टुं हन्तुं पालयितुं प्रभुः ॥६२॥ शेषा हि शिवशक्राद्याश्चेतनाश्च जड़ा अपि । वासुदेवादृते कोऽपि नैनं परिभविष्यति ॥६३॥ सर्वदेवात्मकः प्राण सर्वदेवमयो विभुः । वासुदेवानुगो नित्यं तथा विष्णुवशे स्थितः ॥६४॥ वासुदेवप्रतीपं तु न शृणोति न

कार्यों को सम्पादन करने का साधन एक प्राण ही अनेक प्रकार से होताहै ॥६१॥ अतएव प्राण के उपासक प्राणों को ही सर्व श्रेष्ठ मानतेहैं यही अपनी लीला से सम्पूर्ण जगत् के रचने,संहार करने और पालन करने में समर्थहै ॥६२॥ शेष शिव और इन्द्रादि जड़ और चैतन्य कोई भी वासुदेव के अतिरिक्त भगवान का पराभव नहीं कर सकताहै ॥६३॥ यही प्राण सर्व-

देवात्मक और सर्वदेवमय व्यापक तथा वासुदेव भगवान का अनुवर्ती और विष्णु का वशीभूत है ॥६४॥ यह वासुदेव की प्रतिकूलता न कभी सुनता है न देखता है अन्य इन्द्रादि सब देवता प्रतिकूल करते भी हैं परन्तु सर्वांतर्यामी प्राण कभी भी प्रतिकूल नहीं करता है इसी से पंडित जन प्राण को ही विष्णु का बड़ा सहायक कहते हैं ॥६५-६६॥ विष्णु भगवान का

पश्यति । देवाः प्रतीपं कुर्वन्ति रुद्रेन्द्राद्याः सुरेश्वराः ॥६५॥ प्रतीपं क्वापि कुरुते न प्राणः सर्वगोचरः । तस्मात्प्राणो महाविष्णोर्बलमाहुर्मनीषिणः ॥६६॥ एवं ज्ञात्वा महाविष्णोर्माहात्म्यं लक्षणं तथा । पूर्वबन्धानुगं लिङ्गं जीर्णां त्वचमिवोरगः ॥६७॥ विसृज्य परमं याति नारायणमनामयम् । श्रुत्वा शङ्खोदितं वाक्यं पुनर्व्याधः प्रसन्नधीः ॥६८॥ प्रश्रयावनतो भूत्वा पुनः प्रपच्छ तं मुनिम् । ब्रह्मन् महानुभावस्य प्राणस्यास्य जगद्गुरोः ॥६९॥ न ख्यातो महिमा लोके कथं सर्वेश्वरस्य वै । देवानां च मुनीनां भूपानां च महात्मनाम् ॥७०॥ महिमा श्रूयते लोके पुराणेषु सहस्रशः ।

ऐसा माहात्म्य और लक्षण जानकर जैसे सर्प जीर्ण केंचुली को त्याग देता है उसी प्रकार पूर्वजन्मनुबंध शरीर त्याग कर नारायण के समीप परम धाम को जाता है, शङ्ख मुनि के ऐसे वाक्य सुन व्याध अत्यन्त प्रसन्न हुआ ॥६७-६८॥ और उसने विनती भाव से फिर पूछा—हे ब्रह्मन् ! जगद्गुरु महानुभाव सर्वेश्वर प्राण की महिमा सन्सार में कहीं भी विदित नहीं है, देवता, मुनि, राजा और महात्माओं की महिमा [illegible]

देवता, मुनि, राजा और महात्माओं की महिमा वो पुराण और लोक में बहुत ...

वै० मा०

सामने कहो। इस बात को जानने की मेरी बड़ी इच्छा है ॥६९-७१॥ शङ्ख बोले-प्राचीन काल में प्राण, देवाधिदेव अनामय नारायण भगवान का अश्वमेध द्वारा यजन करने के लिये गङ्गा तट पर गया ॥७२॥ वहां बहुत से मुनियों को सङ्ग ले हल से भूमि को शुद्ध करने लगा वहाँ एक पृथ्वी के नीचे गुफा में कण्वनाम के महात्मा समाधि लगाये हुए बैठे थे ॥७३॥ वह हल

एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मञ्छ्रोतुं कौतूहलं हि मे ॥७१॥ शङ्ख उवाच ॥ पुरा प्राणो हरिं देवं नारायणमनामयम्। अश्वमेधैर्यष्टुकामो गङ्गातीरं ययौ मुदा ॥७२॥ हलैश्चकार भूशुद्धिं नानामुनिगणैर्युतः। अन्तर्वल्मीकलीनस्तु कण्वो नाम समाधिगः ॥७३॥ हलोत्कृष्टो विनिष्क्रान्तः क्रोधादिदमुवाच ह। दृष्ट्वा पुरः स्थितं प्राणं शशाप ह महाविभुम् ॥७४॥ अद्यप्रभृति विख्यातिं महिमा भुवनत्रयम्। तव न प्राप्नोति देवेश भूलोके तु विशेषतः ॥७५॥ प्रख्यातास्ते भविष्यन्ति ह्यवतारा जगत्त्रये। इत्युक्तो मुनिना तेन वायुः क्रोधात्तथाब्रवीत् ॥७६॥ विनापराधं शप्तोऽसि तितिक्षुर्मां निरागसम्। तस्मात्कण्व महाबाहो गुरुद्रोही भवाशु च ॥७७॥ लोके निन्दितवृत्तिश्च भवेत्याह सदागतिः।

से बाहर खिंच आये तब क्रोध करके वह प्राण को अपने सामने स्थित देख शाप देते हुये बोले ॥७४॥ अब तेरी महिमा तीनों लोक से जाती रहेगी और विशेष करके भूलोक में तुझे कोई नहीं मानेगा ॥७५॥ त्रिलोकी में तेरे अवतार प्रख्यात होंगे जब उस मुनि ने ऐसा कहा तब पवन क्रोध कर बोला मैं निरपराधी हूँ ॥७६॥ और बिना अपराध तूने शाप दिया है इसलिये हे

कण्डव ! तू गुरुद्रोही हो ॥७७॥ और तेरी वृत्ति विश्व में निंदित हो तभी से सन्सार में और विशेष करके भूलोक में प्राण की महिमा प्रसिद्ध नहीं है और शाप के कारण कण्व गुरु को मार कर सूर्य का शिष्य हुआ ॥७८॥७९॥ हे व्याध ! जो कुछ तैंने पूछा सो सब तुझसे कहा। अब जो कुछ तुझे पूछना हो वह पूछ' कुछ विचार मत करे ॥८०॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाख माहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे वायुशापकथनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

वै०

ततःप्रभृति लोकेऽस्मिन् प्राणस्यास्य महाप्रभोः ॥७८॥ न ख्यातो महिमा लोके भूलोके तु विशेषतः। शापात्कण्वो गुरुं हत्वा सूर्यशिष्योऽभवदत्ता ॥७९॥ इत्येतत् कथितं सर्वं यत्पृष्टं तु त्वयाधुना। यच्छ्रोतव्यमिता व्याध पृच्छ मां मां विचारय ॥८०॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे वायुशापकथनं एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

मा० टी०

व्याध उवाच ॥ किं जीवा विभुना सृष्टाः कोटिशोऽथ सहस्रशः। दृश्यन्ते भिन्नकर्माणा नानामार्गाः सनातनाः ॥१॥ नैकस्वभावा एते हि कुत एव महामते। सर्वं तत्पृच्छते मह्यं विस्तरात्तत्त्वतो वद ॥२॥ शङ्ख उवाच ॥ त्रिविधा जीवसङ्घा हि रजः सत्त्वतमोगुणाः। राजसा राजसं

व्याध कहने लगा कि, हे ब्रह्मन् ! परमेश्वर ने करोड़ों हजारों जीव क्यों रचे हैं इनके भिन्न २ कर्म और अनेक सनातन मार्ग हैं ॥१॥ हे महामते ! इन सबके स्वभाव एक से क्यों नहीं यह जानने की मेरी इच्छा है आप विस्तार पूर्वक बताइये

॥२॥ यह सुन शङ्ख मुनि कहने लगे-रजोगुणी, सतोगुणी और तमोगुणी तीन प्रकार के जीव होते हैं इनमें रजोगुणी रजोगुण के कर्म करते हैं और तमोगुणी तमोगुण के ॥३॥ तथा सतोगुणी सतोगुण के कर्म करते हैं सन्सार में कभी २ इन गुणों में विषमता भी हो जाती है ॥४॥ उसी कारण ऊंचे नीचे कर्मों को कर के फल के भोगने वाले जीव कभी सुख कभी दुःख

कर्म तामसास्तामसं तथा ॥३॥ सात्त्विकाः सात्त्विकं कर्म कुर्वन्त्येते यथाक्रमम् । क्वचिच्च गुण-वैषम्यनेतेषां संसृतौ भवेत् ॥४॥ ते नैवोच्चावचं कर्म कुर्वतः फलभागिनः । क्वचित्सुखं क्वचिद् दुःखं क्वचिच्चाभयमेव च ॥५॥ गुणानामेव वैषम्यात् प्राप्नुवन्ति नरा इमे । प्रकृतिस्थता इमे जीवा बद्धा एतैर्गुणैस्त्रिभिः ॥६॥ गुणकर्मानुरूपेण कर्मणां व्यत्ययः फलम् । गुणानुगुण्यं भूयस्ते प्रकृतिं यान्त्यमी जनाः ॥७॥ प्रकृतिस्थाः प्राकृतिका गुणकर्माभिमूर्तिताः गतिं प्राकृतिकीं यान्ति व्यत्ययः प्रकृतेर्न हि ॥८॥ तामसा दुःखबहुलाः सदा तामसवृत्तयः । निर्दया निष्ठुरा लोके सदा द्वेषैक-

और कभी अभाव पाते हैं और प्रकृति के जीव इन्हीं तीनों गुणों से बंधे हुये हैं ।५-६। गुण और और कर्म के अनुसार ही कर्मों का नाश और फल होता हैं इन्हीं गुणों के अनुगुणी होकर मनुष्य प्रकृति को प्राप्त होते हैं ॥७॥ प्रकृतिस्थ मनुष्य प्राकृतिक गुण कर्मों से अभिमूर्तित हैं और वे प्राकृतिक गति प्राप्त करते हैं और प्रकृति का कभी नाश नहीं होता है ॥८॥ तमोगुणी बहुत दुःखी रहते हैं क्योंकि इनकी वृत्ति सदा तमोगुणी रहती है वे निष्ठुर निर्दय और सब से द्वेष रखते हैं ॥९॥ राक्षसों

से लेकर पिशाच तक सब तामसी गति को प्राप्त करते हैं । रजोगुणियों की बुद्धि पाप पुण्य मिश्रित होती है अतः ये पुण्य और पाप दोनों करते हैं ॥१०॥ इन्हें पुण्य से स्वर्ग और पाप से नरक मिलता है इससे ये मन्द भाग्य वाले संसार में बारबार जन्म लेते हैं ॥११॥ सतोगुणी धर्मशील, दयावान्, श्रद्धावान्, पराई निन्दा न करने वाले होते हैं इनकी वृत्ति सतोगुणी होते

वै० भा०

जीविनः ॥६॥ राक्षसाद्याः पिशाचान्ता स्तामसीं यान्ति वै गतिम् । राजसा मिश्रमतयः कर्तारः पुण्य पापयोः ॥१०॥ पुण्यात्स्वर्गं प्राप्नुवन्ति क्वचित्पापाच्च यातनाम् । अत एते मन्दभाग्या आवर्तन्ते पुनः पुनः ॥११॥ धर्मशीला दयावन्तः श्रद्धावन्तोऽनसूयकाः । सात्त्विकाः सात्त्विकी वृत्तिमनुतिष्ठन्त आसते ॥१२॥ के चोर्ध्वं यान्ति विमला गुणापाये महौजसः । अतो विभिन्न-कर्माणः पृथग्भावाः पृथग्धियः ॥१३॥ गुणकर्मानुरूपेण तेषां विष्णुर्महाप्रभुः । कर्माणि कारयत्यद्धा स्वस्वरूपाप्तये विभुः ॥१४॥ विष्णोर्वैषम्यनैघृण्ये पूर्णकामस्य वै न हि । सृष्टिं स्थितिं त्दृतिं चैव समामेव करोत्ययम् ॥१५॥ स्वगुणादेव ते सर्वे कर्मणः फलभागिनः । अरामोप्तान्यथा सर्वाव

मा० टी० अ० २००

है ॥१२॥ ये महा ओजस्वी, पाप रहित उर्ध्व-लोक को जाते हैं, अतएव ये भिन्न कर्म, भिन्न भाव और पृथक् बुद्धि वाले होते हैं ॥१३॥ इन्हीं के गुण और कर्मों के अनुसार विष्णु भगवान इनसे कर्म कराते हैं अपने स्वरूप की प्राप्ति के निमित्त ॥१४॥

है ॥१३॥ इन्हीं के गुण और कर्मों के अनुसार विष्णु भगवान इनसे कर्म कराते हैं अपने स्वरूप की प्राप्ति कामना...

अपने २ गुणों से कर्मों के फल भोगते हैं जैसे बगीचे में सब वृक्षों के ऊपर मेघ समान भाव से बरसता है और सम्पूर्ण वृक्ष एक ही मार्ग से सींचे जाते हैं परन्तु सब वृक्षों की प्रकृति भिन्न २ होती है यद्यपि बाग लगाने वाले को कुछ विषमता वा निर्घृणता नहीं रहती ॥१६॥१७॥ व्याध कहने लगा-हे मुने पूर्ण भोग वाले मनुष्यों की मुक्ति कब होती है, सृष्टिकाल

समं वर्षयति द्रुमान् ॥१६॥ एककुल्या जला ह्यङ्ग द्रुमाश्च प्रकृतिं गताः । नारोमोपरि वैषम्यं नैर्घृण्यं वा कथंचन ॥१७॥ व्याध उवाच ॥ जनानां पूर्णभोगानां कदा मुक्तिर्भवेन्मुने । सृष्टिकाले ऽथवा ह्यन्तकाले वा स्थापनस्य च ॥१८॥ क्वचिच्च सृष्टिकालस्य संहारस्यापि व स्थितेः । एतद्विस्तार्य मे ब्रह्मन् भगवच्चेष्टितं वद ॥१९॥ शङ्ख उवाच ॥ चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिनमुच्यते । रात्रिश्चैतावती तस्य ह्यहोरात्रं दिनं भवेत् ॥२०॥ दशपञ्च दिनान्याहुः पक्षं मासो द्वयात्मकः । मासद्वयं ऋतुं प्राहुरयनं च ऋतुत्रयम् ॥२१॥ अयने द्वे वत्सरः स्यात्तादृक्शतसमा । यदि गच्छन्ति

में या अन्तकाल में अथवा स्थितिकाल में ॥१८॥ और सृष्टि, स्थिति तथा संहार के काल की मर्यादा कितनी २ हैं हे ब्रह्मन् ! यह मेरे सामने आप विस्तार पूर्वक कहिये ॥१९॥ शङ्ख बोले—चार सहस्र युग का ब्रह्माजी का एक दिन और इतनी ही एक रात्रि होती है इस प्रकार दिन रात मिलकर ब्रह्मा का एक दिन होता है ॥२०॥ पन्द्रह दिन का एक पाख और दो पक्ष का एक महीना होता है दो मास की एक ऋतु और तीन ऋतुओं का एक अयन होता है ॥२१॥ दो अयन का एक वर्ष

होता है। इसी प्रकार से ब्रह्माजी के सौ वर्ष व्यतीत होने पर ब्रह्मकल्प पूरा होता है ॥२२॥ वही प्रलय का समय है ऐसा वेद वेत्ताओं का मत है, प्रलय तीन प्रकार की होती है, एक मानव प्रलय, जब मनुष्यों का अन्त होता है ॥२३॥ दूसरा ब्रह्माजी के दिन की समाप्ति के समय होती है वह दैनन्दिन प्रलय कहलाती है उसके पीछे ब्रह्माजी लय के समय जो प्रलय होती

ब्रह्मणो ह्यास्य ब्रह्मकल्पं तदा विदुः ॥२२॥ तावान् हि प्रलयः काल इति वेदविदां मतम् । प्रलयस्त्रिविधः प्रोक्तो मानवो मानवात्यये ॥२३॥ दैनन्दिनो द्वितीयो हि ब्रह्मणो दिनसात्यये । ब्रह्मणोऽथ लये पश्चाद्ब्रह्मं च प्रलयं विदुः ॥२४॥ ब्रह्मणस्तु मुहूर्ते तु मनोस्तु प्रलयं विदुः । प्रलयेषु व्यतीतेषु चतुर्दशसु वै क्रमात् ॥२५॥ दैनन्दिनलयं प्राहुः प्रलयानां स्थितिं पुनः । त्रयाणामेव लोकानां लयो मन्वन्तरे भवेत् ॥२६॥ चेतनानां तदा नाशो न लोकानां क्षयो भवेत् । उदकैरेव पूर्तिश्च यथा पूर्वं तथा पुनः ॥२७॥ मन्वन्तराते भूयात्तु चेतनानां पुनर्भवः । दैनन्दिनलये व्याथ सर्व-

हैं उसे ब्रह्म प्रलय कहते हैं ॥२४॥ ब्रह्माजी के एक मुहूर्त में एक मनु की प्रलय होती है। इसी तरह जब चौदह मनु के प्रलय हो जाते हैं ॥२५॥ तब एक दैनंदिन प्रलय होती है इन प्रलयों की उतनी ही अवधि पर्यन्त स्थिति रहती है मन्वन्तर प्रलय में भूर्भुवः स्वः तीनों लोकों का लय होजाता है ॥२६॥ किन्तु मन्वन्तर प्रलय में चेतन जीवों का ही नाश होता है परन्तु

में चेतन जीवों की पुनः उत्पत्ति होतीहै और हे व्याध ! दैनंदिन लय में लोक और लोकस्थ सबका नाश होताहै ॥२८॥ केवल सत्यलोक के अतिरिक्त और कोई लोक नहीं रहता, सब नष्ट हो जातेहैं और ब्रह्माजी के शयन करने पर चेतन अधिभूत जीवों सहित सब लोकों का नाश होजाताहै ॥२९॥ कोई-कोई तत्त्वाभिमानी देवता और मुनि ही बच रहते हैं और

स्यापि क्षयो भवेत् ॥२८॥ सत्यलोकं बिना सर्वे लोका नश्यन्ति साधिपाः । सचेतनाः साधिभूताः प्रसुप्ते चतुरानने ॥२९॥ तत्त्वाभिमानिनो देवाः केचिच्च मुनयस्तथा । शिष्यन्ति सुप्ताः सर्वेऽपि सत्यलोकव्यवस्थिताः ॥३०॥ तिष्ठन्ति सुप्तिमापन्ना यावत्कल्पमतीन्द्रियाः । पुनर्निशात्यये ब्रह्मा यथापूर्वमकल्पयत् ॥३१॥ ऋषीन् देवान् पितॄल्लोकान् धर्मान् वर्णान् पृथक् पृथक् । पुनर्दशावतारा हि विष्णोर्देवस्य चक्रिणः ॥३२॥ नियमेन भवन्त्येते तथान्येऽपि च भूरिशः । देवता ऋषयश्चैव आकल्पं च गिरां पतेः ॥३३॥ पुनरेवाभिवर्तन्ते ब्रह्मणा सह मुक्तिगाः । भूपाश्च साधवो ये च

सत्त्वलोक के शयन करने वाले भी बच रहतेहैं ॥३०॥ वे सब कल्पान्त तक सोते रहतेहैं फिर रात्रि के समाप्त होने पर पूर्व सृष्टि के अनुसार ब्रह्माजी सृष्टि की पुनः रचना करतेहैं ॥३१॥ ऋषि, देव, पितृ लोक और वर्णधर्मों सहित चारों वर्णों को अलग-अलग रचतेहैं तब चक्रधारी विष्णु के दशावतार पुनः नियम के अनुसार होतेहैं ॥३२॥ इसी तरह अन्यान्य अनेकों देवता ऋषि कल्प के पश्चात् ब्रह्माजी के द्वारा फिर से उत्पन्न होतेहैं ॥३३॥ और जो ब्रह्माजी के सङ्ग मुक्ति पाने वाले हैं

वे सब ब्रह्मलोक में ही रहते हैं और जो सिद्धि प्राप्त राजा, साधु और सिद्ध ब्रह्मलोक वासी हैं ॥३४॥ वे सब सत्यलोक ही में स्थित रहते हैं यहाँ नहीं आते तथा जो उस राशि पर जाने वाले उसी नाम से श्रुति में यथा रीति स्थित है वे फिर जाते हैं ॥३५॥ अपने अपने कर्म कर्त्ता अपने अपने गोत्रों में जन्म लेते हैं और जब कलियुग समाप्त होता है तब सब दैत्यों का

सिद्धिं प्राप्ताः परं गताः ॥३४॥ ते नैव चाभिवर्त्तन्ते सत्यलोकव्यवस्थिताः । तद्राशिगाः पुनर्यान्ति तन्नाम्ना श्रुतिसंस्थिताः ॥३५॥ तत्तद्गोत्रेषु जायन्ते तत्तत्कर्मरताः सदा । दैत्यानामपि सर्वेषां यदा कलियुगात्ययः ॥३६॥ कलिना सह गच्छन्ति स्वां गतिं निरयालयाः । तेषां च राशिसंस्था ये तन्नामानोऽपरेऽपि च ॥३७॥ जायन्ते कर्मणा स्वेन तत्तत्कर्मविधायकाः । सृष्टिकालं प्रवक्ष्यामि मुक्तिकालं तथैव च ॥३८॥ ब्रह्मादीनां च देवानां समाहितमना भव । निमेषो देवदेवस्य ब्रह्मकल्पसमो मतः ॥३९॥ तस्यावसाने चोन्मेषो देवदेवशिखामणेः । निमेषान्ते भवेदिच्छा स्रष्टुं लोकांश्च

नाश होता है तो वे भी सब कलियुग सहित अपनी गतिको जाते हैं उनका निरय स्थान होता है और उनके नाम के राशिस्थ और भी जो हैं ॥३६॥३७॥ वे अपने कर्म अनुसार वैसे ही कर्म करने वाले होते है अब मैं तेरे सामने सृष्टिकाल और मुक्तिकाल का वर्णन करूंगा ॥३८॥ सो सावधान होकर सुन । देवदेव भगवान का एक निमेष ब्रह्माजी के कल्प के बराबर [illegible] होता है ॥३९॥ निमेष के

मुक्तिकाल का वर्णन करूंगा ॥३८॥ सो सावधान होकर सुन । देवदेव भगवान का एक निमेष

अन्त में उन्हें अपने कुक्षिस्थ लोकों के सृजन की इच्छा होती है ॥४०॥ तब सब लोकों को और अनेकजीवसमूहों को अपने उदर में रखता है उन में कितने ही सृजन योग्य, कितने ही मुक्त और कितने ही ऐसे होते हैं जिनका लिंगदेह छूट गया है ॥४१॥ वे सुप्त हैं संसार में स्थित हैं और वे सब तमोगुण संम्बन्ध युक्त होते हैं कुछ ऐसे भी होते हैं जो पूर्व कल्प में विधि

कुक्षिगान् ॥४०॥ सोऽपश्यत्स्वोदरे सर्वान् जीवसङ्घाननेकशः । सृज्यान्मुक्तानमून् सर्वांल्लिङ्गभङ्गमुपागतान् ॥४१॥ सुप्ताः सृतिस्थाः सर्वेऽपि तमोगा अपि सर्वशः । पूर्वकल्पे लिङ्गभङ्गमापन्ना विधिपूर्वकम् ॥४२॥ मानवान्ता जीवकोशा जीवन्मुक्ताश्च मुक्तिगाः । पूर्वकल्पे विमुक्ताश्च ब्रह्माद्या मानवान्तकाः ॥४३॥ ध्यानसंस्था हि तिष्ठन्ति विष्णुकुक्षिगता अपि । उन्मेषप्रथमे भागे चतुर्व्यूहात्मको विभुः ॥४४॥ भूत्वा तु पूर्णषाड्गुण्याद्वासुदेवाच्च व्यूहगात । दत्त्वा तु ब्रह्मणे मुक्तिं सायुज्याख्यां महाविभुः ॥४५॥ दत्त्वा तदनु सायुज्यं तत्त्वज्ञानं महात्मनाम् । सारूप्यं चैव केषांचि-

पूर्वक लिंग भङ्ग को प्राप्त हुये हैं ॥४२॥ मानवपर्य्यन्त जीवकोश जीवन्मुक्त और मुक्ति गामी जो पूर्वकल्प में विमुक्त हो ब्रह्मा से लेकर मनुष्य तक ।४३। विष्णु की कुक्षि में गत होकर भी ध्यानावस्थित रहते हैं उन्मेष के प्रथम भाग में चतुर्व्यूहात्मक विभु षड् गुण्य होकर व्यूह में स्थित वासुदेव से ब्रह्मा को सायुज्य (मुक्ति) देकर महाविभु ॥४४॥४५॥ तत्पश्चात् महात्माओं को तत्वज्ञानरूपी सारूप्य मुक्ति देते हैं,किसी को सामीप्य मुक्ति देते हैं ॥४६॥ तथा देवाधिदेव जनार्दन अन्य मनुष्यों को

सालोक्य मुक्ति देकर अनिरुद्धरूप से सम्पूर्ण स्थित लोकों का अवलोकन करते हैं ॥४७॥ प्रद्युम्न से सृष्टि के रचने का विचार करके माया जया कृति और शांति से स्वयं हरि भगवान विवाह करते हैं ॥४८॥ वासुदेव आदि से लेकर पूर्ण गुणों से युक्त चतुर्व्यूह उन माया जया आदि शक्ति से युक्त चतुर्व्यूहात्मक हो महाविष्णु भगवान ॥४९॥ भिन्न कर्म और आशय वाले लोक

त्सामीप्य च तथा विभुः ॥४६॥ सालोक्यं च तथान्येषां दत्त्वा देवो जनार्दनः। अनिरुद्धवशो सर्वान् स्थितांल्लोकानलोकयत् ॥४७॥ प्रद्युम्नस्य वशो दत्त्वा सृष्टिं कर्तुं मनो दधे। मायां जयां कृतिं शान्तिमुपयेमे स्वयं हरिः ॥४८॥ चतुर्व्यूहैः पूर्णगुणैर्वासुदेवादिकैः क्रमात्। ताभियुक्तो महाविष्णुश्चतुर्व्यूहात्मको विभुः ॥४९॥ भिन्नाकर्माश्रयं लोकं पूर्णकामो व्यजीजनत्। उन्मेषान्ते पुनर्विष्णुर्योगमायां समाश्रितः ॥५०॥ संकर्षणव्यूहगाच्च हरत्येतच्चराचरम्। तदेतत्सर्वमाख्यातं कार्यं चिन्त्यं महात्मनः ॥५१॥ यदचिन्त्यं दुर्निवार्यं ब्रह्माद्यैरति योगिभिः। व्याध उवाच ॥ के वा

की रचना करते हुए स्वयं पूर्णकाम नेत्र खोलने के अन्तमें फिर विष्णु भगवान योगमाया का आश्रय लेते हैं।५०। व्यूहस्थ संकर्षण से चराचर का नाश करते हैं ये सब उस महात्मा का अवर्णनीय काम है ॥५१॥ यह कार्य ब्रह्मादिक और योगियों द्वारा भी अकथनीय है। यह सुन व्याध ने पूछा। हे महाराज! भागवत धर्म कौन से हैं और किन धर्मों से विष्णु भगवान प्रसन्न होते हैं ॥५२॥ उनको ... किस धर्म से किस ...

द्वारा भी अकथनीय है। यह सुन व्याध ने पूछा। हे महाराज! भागवत धर्म कौन से हैं और किन धर्मों से विष्णु भगवान
प्रसन्न होते हैं ॥५२॥ उनको सुनने की मेरा इच्छा है कृपाकर मुझसे कहिये। शङ्ख बोले जिस धर्म से चित्त शुद्ध हो और

सज्जनों को उपकार हो उसको सतो धर्म जानो तथा जिसकी कोई निन्दा न करे, जो धर्म श्रुति और स्मृति के अनुकूल हो तथा कामना रहित हो ॥५३॥५४॥ और लोक से विपरीत न हो उसे सात्त्विक धर्म जानना चाहिये वर्णाश्रम के विभाग से वह धर्म चार प्रकार का है ॥५५॥ और प्रत्येक धर्म तीन प्रकार का है, नित्य, नैमित्तिक और काम्य जब वे सब धर्म विष्णु

भागवता धर्माः कैर्विष्णुश्चप्रसीदति । तानहं श्रोतुमिच्छामि सांप्रतं वद नो मुने ॥५२॥ शङ्ख उवाच ॥ येन चित्तविशुद्धिः स्याद्यः सतामुपकारकः ॥५३॥ तं विद्धि सात्त्विकं धर्मं यश्च केनाप्यनिन्दितः । श्रुतिस्मृत्युदियो यस्तु यदि निष्कामिको भवेत् ॥५४॥ यस्तु लोकाविरुद्धोऽपि तं धर्मं सात्त्विकं विदुः । चतुर्विधा हि ते धर्मा वर्णाश्रमविभागतः ॥५५॥ नित्यनैमित्तिकाः काम्या इति ते च त्रिधा मताः । ते सर्वे स्वस्वधर्माश्च यदा विष्णोः समर्पिताः ॥५६॥ तदा वै सात्त्विका ज्ञेया धर्मा भागवताः शुभाः । देवतान्तरदैवत्याः सकामा राजसा मताः ॥५७॥ यक्षरक्षः पिशाचादिदैवत्या लोकनिष्ठुराः । हिंसात्मका निन्दिताश्च धर्मास्ते तामसाः स्मृताः ॥५८॥ सत्त्वस्थाः सात्त्विकान्

भगवान को समर्पण किए जांय ॥५६॥ तब उनको सतोगुण युक्त भागवत धर्म कहा जाता है जब किसी कामना के निमित्त अन्य देवता को समर्पण होते हैं तब रजोगुणी होते हैं ॥५७॥ और राक्षस, पिशाचादि लोक निष्ठुर देवताओं का पूजन करना, हिंसा करना ये सब निन्दित तमोगुणी कर्म हैं ॥५८॥ सतोगुणी मनुष्य जो विष्णु भगवान के प्रिय सात्त्विक धर्मों को करते

हैं वे धर्म भागवत धर्म कहाते हैं ॥५६॥ जिनका चित्त सदा विष्णु भगवान में रहता है और जिह्वा से भगवान के नाम रटते हैं और भगवान के चरणों को हृदय में रखते हैं वही भागवत धर्म है ॥६०॥ जो लोग सदाचारी, परोपकार करते हैं और सदा ममता हीन रहते हैं वही भागवत धर्म हैं ॥६१॥ जिनको शास्त्र,गुरु,साधु और कर्म में विश्वास है और जो सदा विष्णु

मर्धान् विष्णु प्रीति कराञ्छुभान् । कुर्वन्त्यनीहया नित्यं ते वै भागवताः स्मृताः ॥५६॥ येषां चित्तं सदा विष्णौ जिह्वायां नाम वै विभोः । पादौ च हृदये येषां ते वै भागवताः स्मृताः ॥६०॥ सदाचाररता ये च सर्वेषामुपकारकाः सदैव ममताहीनास्ते वै भागवताः स्मृताः ॥६१॥ येषां च शास्त्रे विश्वासो गुरौ साधुषु कर्मसु । ये विष्णुभक्ताः सततं ते वै भगवताः स्मृताः ॥६२॥ येषां हि संमता धर्माः शाश्वता विष्णुवल्लभः श्रुतिस्मृत्युदिता ये च ते धर्माः शाश्वता मताः ॥६३॥ अटनं सर्व देशेषु वीक्षण सर्वकर्मणाम् । श्रवणं सर्वधर्माणां विषयासक्तचेतसाम् ॥६४॥ अकिञ्चित्कर-मेतेषां षराढस्येव वरस्त्रियः । साधूनां दर्शनेनैव मनो द्रवति वै सताम् ॥६५॥ चन्द्रस्य कौमुदीसङ्गा-

भक्त हैं वे ही भागवत धर्म वाले हैं ।६२। जिन्हें विष्णु भगवान के प्रिय धर्म सदा मन्तव्य हैं और श्रुति तथा स्मृति में बताये हैं वही धर्म उत्तम हैं ॥६३॥ सब देशों में घूमना सब कर्मों को देखना सब धर्मों को सुनना परन्तु चित्त को विषयों में रखने वाले ।६४। कदापि नहीं कर सकते हैं जैसे [illegible] कदापि नहीं है सत्पुरुषों का मन साधुओं के दर्शन

पाते ।६४। कुछभी नहींकरसकते हैं जैसे उत्तम स्त्री नपुंसक मनुष्य के लिये कुछभी नहीं है सत्पुरुषोंका मन साधुओं के दर्शन

सेही द्रवीभूत हो जाता है ॥६५॥ जैसे चांदनी को देख चन्द्र कांतमणि स्वयं ही द्रवीभूत होती है उनके स्थिर मन सच्छास्त्रों के श्रवणमात्र सेही विषयों से अलग होकर पापरहित तेजोमय रहते हैं जैसे सूर्य कांतमणि रहती है।६६-६७। कामना रहित होकर श्रद्धा पूर्वक जो विष्णु सम्बन्धी धर्म किये जाते हैं वे ही भागवत धर्म हैं ॥६८॥ इस लोक और परलोक में सुख देने वाले

च्चन्द्रकान्तशिला यथा । क्वचित्सच्छास्त्रश्रवणाद्विषयेभ्यश्चलं मनः ॥६६॥ तिष्ठत्येव सतां पुंसां तेजोरूपं ह्यकल्मषम् । पद्मबन्धोः प्रभासङ्गात्सूर्यकान्तशिला यथा ॥६७॥ निष्कामैर्हि जनैर्यस्तु श्रद्धया समुपाश्रितः । यो विष्णु वल्लभो नित्यं धर्मो भागवतो मतः ॥६८॥ तैर्दृष्टा बहवो धर्मा इहामुत्र फलप्रदाः । विष्णुप्रीतिकराः सूक्ष्माः सर्वदुःखविमोचकाः ॥६९॥ दध्नः सारमिवोद्धृत्य धर्मं वैशाखसंभवम् । रमायै भगवानाह क्षीराब्धौ हितकाम्यया ॥७०॥ मार्गच्छायाविनिर्माणं प्रपादानं च वै तथा । व्यजनैर्वीजिनं चैव प्रश्रयाणां समर्पणम् ॥७१॥ छत्रस्योपानहोर्दानं दानं कर्पूरगन्धयोः । वापीकूपत-

बहुत से धर्म देखे हैं परन्तु विष्णुभगवान को प्रसन्न करने वाले धर्म सूक्ष्म और सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाले हैं।६९। क्षीरसागर में से सब की हित कामना से-जैसे दही में से मक्खन निकाल लेते हैं ऐसे वैशाख के धर्म भगवान ने लक्ष्मीजी को बताये हैं ॥७०॥ मार्ग में छाया करना, प्याऊ बनवाना, पङ्खा से हवा करना, सुपात्रों को दान करना ॥ ७१ ॥ छत्री, जूता, कपूर और सुगन्धित द्रव्यों का दान करना और धन पाकर बावड़ी कूआं सरोवर बनवाना ॥७२॥ सांयकाल के समय शर्बत

और फूल दान करना, तांबूल दान करना और गोरस दान तो सब दानों से उत्तम है ॥७३॥ रास्ते के थके हुए को नमक मिली छाछ दान करे, उबटन करना, थके हुए ब्राह्मण के चरण धोना ॥७४॥ चटाई, कम्बल, पलङ्ग का दान और गोदान तथा शहत और तिल का दान संपूर्ण पापों का नाश करने वाला है ॥७५॥ सांयकाल के समय ईख ककड़ी का दान करे

डागानां निर्माणं विभवे सति ॥७२॥ सयाह्ने पानस्यापि दानं तु कुसुमस्य च । ताम्बूलदानं पापघ्नं गोरसानां विशेषतः ॥७३॥ लवणान्विततक्रस्य दानं श्रान्ताय वै पथि । अभ्यङ्गकरणं चैव द्विजपादावनेजनम् ॥७४॥ कटकम्बलपर्यङ्कदानं गोदानमेव च । मधुयुक्तं तिलानां च दानं पापविनाशनम् ॥७५॥ सायाह्ने चेक्षुदण्डानां दानमुर्वारुकस्य च । रसायनप्रदानं च पितृनिर्वापणं तथा ॥७६॥ एते धर्मा विशिष्योक्ता मासेऽस्मिन् माधवप्रिये । प्रातः सूर्योदये स्नात्वा शृण्वन् द्विजकुलेरितम् ॥७७॥ नित्यकर्माणि कृत्वैवं मधुसूदनमर्चयेत् । कथां माधवमासीयां शृणुयाच्च समाहितः ॥७८॥ तैलाभ्यङ्गं वर्जयेच्च कांस्यपात्रे तु भोजनम् । निषिद्धभक्षणं चैव वृथालापं तु वर्जयेत् ।

तथा रसायन का दान और पित्रीश्वरों के निमित्त तर्पण करे ॥७६॥ ये सब वैशाख में करने योग्य धर्म हैं। प्रातःकाल उठ स्नान कर ब्राह्मण से कथा सुने फिर नित्य कर्म करके मधुसूदन भगवान का पूजन करे और वैशाख माहात्म्य की कथा मन लगा कर सुने ॥७७॥ तेल और [illegible] निषिद्ध भोजन और व्यर्थ विवाद न करे

...कर सुने ॥७७॥ तेल और उबटन छोड़ दे, कांसे के पात्र में भोजन न करे, निषिद्ध भोजन और व्यर्थ विवाद न करे

॥७६॥ घीया, गाजर, लहसन, तिलपिष्ठ, कांजी, फूट, घीया तोरई तथा पोई, कलिंदा, सहजना, चौलाई, कुलथी और मसूर त्याग दे । बैंगन, कलींदा, कोदो, चौलाई, कसूम, मूली, गूलर, बेल फल, ल्हिसोडा का सेवन वैशाख में भूलकर भी न करे ॥८०-८३॥ यदि इनमें से एक भी खाये तो चांडाल की योनि में जन्म लेकर वह सौ जन्मों तक पशु बने, इसमें सन्देह नहीं

॥७६॥ अलाबुं गृञ्जनं चैव लशुनं तिलपिष्टकम् । आरनालं भिस्सटं च घृतकोशातकी तथा ॥८०॥ उपोकीं कलिङ्गं च शिग्रुशाकं च वर्जयेत् । निष्पावानि कुलित्थानि मसूराणि च वर्जयेत् ॥८१॥ वृन्ताकानि कलिङ्गानि कोद्रवाणि च वर्जयेत् । तन्दुलीयकशाकं च कौसुम्भं मूलकं तथा ॥८२॥ औदुम्बरं विल्वफलं तथा श्लेष्मायकीफलम् । सर्वथा वर्जयेद्विद्वान् मासेऽस्मिन् माधवप्रिये ॥८३॥ एतेष्वन्यतमा भुक्त्वा स चाण्डालो भवेद्ध्रुवम् । तिर्यग्योनिशतं याति नात्र कार्या विचारणा ॥८४॥ एवं मासव्रतं कुर्यात् प्रीतये मधुघातिनः । एव व्रते समाप्ते तु प्रतिमां कारयेद्विभोः ॥८५॥ मधुसूदनदैवत्यां सवस्त्रां च सदक्षिणाम् । स्वर्चितां विभवैः सर्वैर्ब्राह्मणाय

॥८४॥ ऐसे मधुसूदन भगवान की प्रसन्नता के लिये व्रत करे और व्रत समाप्त होने पर विष्णु भगवान की प्रतिमा बनवा वस्त्र पहना कर दक्षिणा सहित ब्राह्मण को अर्पण करे ॥८५-८६॥ वैशाख सुदी द्वादशी के दिन दही और अन्न दान करे और जल का घड़ा, तांबूल, फल और दक्षिणा सहित दे ॥८७॥ पश्चात् जूता छत्री का दान कर ब्राह्मण भोजन कराये शीतल जल

दही,अन्न,तांदूल और दक्षिणा लेकर कहे कि यह मैं धर्मराज के निमित्त दान करता हूँ यमराज मेरे ऊपर प्रसन्न हों, अपसव्य हो गोत्र सहित इसका उच्चार करे ॥८८-८९॥ पहिले दही और अन्न पित्रीश्वरों की तृप्ति को अक्षत दे,फिर गुरु को, फिर विष्णु को दे ॥९०॥ शीतल जल और कांसे के पात्र में दही,अन्न,दक्षिणा, तांबूल और फल रख कर कहे हे विष्णो ! मैं

निवेदयेत् ॥८६॥ वैशाखसितद्वादश्यां दद्याद्दध्यन्नमञ्जसा । सोदकुम्भं सताम्बूलं सफलं च सदक्षिणम् ॥८७॥ दद्यादुपानहौ छत्रं ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः । शीतलोदकदध्यन्नं सताम्बूलं सदक्षिणम् ॥८८॥ ददामि धर्मराज तेन प्रीणातु वै यमः। अपसव्यात्समुच्चार्य नामगोत्रे पितुस्ततः ॥८९॥ दद्याद्दध्यन्नमक्षय्यं पितृणां तृप्तिहेतवे । गुरुभ्यश्च तथा दद्यात्पश्चाद्दद्याच्च विष्णवे ॥९०॥ सीतलोदकदध्यन्नं कांस्यपात्रस्थमुत्तमम् । सदक्षिणं सताम्बूलं समर्घ्यं च फलान्वितम् ॥९१॥ ददामि विष्णवे तुभ्यं विष्णुलोकजिगीषया । गोदानं च यथा शक्त्या ब्राह्मणं सकुटुम्बिनम् ॥९२॥ सर्वपाप विनिर्मुक्तो दम्भं त्यक्त्वा व्रतं कुरु । अयमेव व्रतं सर्वं कुलमुद्धृत्य वै शतम् ॥९३॥ पश्यतामेव

वैकुण्ठ प्राप्ति के निमित्त ये दान करता हूँ फिर कुटुम्बी ब्राह्मण को यथा शक्ति गोदान करे ॥९१-९२॥ इस प्रकार अभिमान छोड़ सदा व्रत करे तो वह सब पापों से छूट अपने सौ कुलों का उद्धार कर सबके देखते २ सूर्य मंडल को वेध कर योगियों को भी दुर्लभ विष्णु के परम धाम [illegible] मास के व्रतों की कथा व [illegible]

और सदा व्रत कर तो वह सब पापों से छूट अपने सौ कुलों का उद्धार कर सबके देखते २ सूर्य मंडल को बेध कर योगियों को भी दुर्लभ विष्णु के परम धाम को जाता है ॥९३-९४॥ जब व्याध के पूछने पर वैशाख मास के धर्मों की कथा श तदेव जी

कह रहे थे तभी सबके देखते वह पंचशाखी वृक्ष पृथ्वी पर गिर पड़ा और उस वृक्ष की कोटर में से एक बड़ा भयङ्कर सर्प तत्काल पाप रूपी देह को त्याग कर हाथ जोड़ शिर झुकाकर वहाँ बैठ गया ॥९५-९६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे भागवतधर्मकथनं नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥

भूतानां भित्त्वा वै सूर्यमण्डलम् । याति विष्णोः परं धाम योगिनामपि दुर्लभम् ॥९४॥ व्याख्यात्येवं द्विजकुलवरे माधवीयांश्च धर्मान्विष्णुत्रादिष्टानतिमहितरान् व्याधपृष्टान् समस्तान् । वृक्षः सद्यः पश्यतामेव भूमौ पपाताहो पञ्चशाखी द्रुमोऽयम् ॥९५॥ वृक्षात्तस्मात्कोटरे संस्थितो हि व्यालः कश्चिद्दीर्घदेही करालः हित्वा देहं पापयोनिं च सद्यः स वै तस्थौ प्राञ्जलिर्नम्रमूर्धा ॥९६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्य नारदाम्बरीषसंवादे भागवतधर्मकथनं नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥

श्रुतदेव उवाच ॥ ततस्तु विस्मितो भूत्वा शङ्खो व्याधसमन्वितः । को भवानिति तं प्राह दशैषा च कुतस्तव ॥१॥ केन वा कर्मणा सौम्य मतिस्तव शुभावहा । अकस्मात्ते कथं मुक्तिरेतदाचक्ष्व

तब श्रुतदेवजी कहने लगे—शङ्ख मुनि और व्याध दोनों बड़े विस्मित हुए तब शङ्ख मुनिने पूछा तुम कौन हो और तुम्हारी दशा ऐसी कैसे होगई थी ॥१॥ हे सौम्य ! किस कर्म से तेरी ऐसी शुभ बुद्धि होगई और अकस्मात् तेरी मुक्ति कैसे होगई यह सब तू विस्तार पूर्वक हमें बताओ ॥२॥ जब शङ्ख ने इस प्रकार पूछा तब वह दण्डवत् पृथ्वी पर गिर शिर झुका हाथ जोड़

कर कहने लगा ॥३॥ मैं प्रयागराज का निवासी एक ब्राह्मण था बहुत बोलता था मैं रूप यौवन संयुक्त विद्या मद से गर्वित धनवान् पुत्रवान् सदा अहङ्कार से दूषित,कुसीद मुनि का पुत्र और मेरा नाम रोचन था ।४-५। आसन,शयन,निद्रा,व्यवाय अक्षपरिक्रिया,लोकचर्या,ब्याज लेना यही मेरे व्यापार थे ॥६॥ लोक निन्दा से शङ्का रहित दंभयुक्त और क्रूर मेरी किसी के

वै० मा० टी०

विस्तरात् ॥२॥ शङ्खेनैवं तदा पृष्टो दण्डवत्पतितो भुवि । प्रश्रयावनतो भूत्वा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥३॥ अहं पुरा द्विजः कश्चित्प्रयागे बहुभाषकः । रूपयौवनसंपन्नो विद्यामदसुगर्वितः ॥४॥ धनाढ्यो बहुपुत्राढ्यः सदाहङ्कारदूषितः । कुसीदस्य मुनेः पुत्रो नाम्ना रोचन इत्यहम् ॥५॥ आसनशयनं निद्रा व्यवायोऽक्षपरिक्रियाः । लोकवार्ता कुसीदं वा व्यापारास्ते ममाभवन् ॥६॥ तन्तुमात्राणि कर्माणि लोकनिन्दाविशङ्कितः । सदंभश्च सदा क्रूरो न श्रद्धा मे कदाचन ॥७॥ दुर्बुद्धेर्मम दुष्टस्य कियान् कालो गतोऽभवत् । तदा वैशाखमासेऽस्मिञ्जयन्तो नाम वै द्विजः ॥८॥ श्रावयामास तन्मासधर्मान् भागवतप्रियान् । तत्क्षेत्रवासिनां पुण्यकर्मणां च द्विजन्मनाम् ॥९॥ नारी नराः

प्रति श्रद्धा नहीं थी ॥७॥ इस तरह मुझ दुष्ट दुर्बुद्धि का बहुत समय नष्ट होगया । तब वैशाख के महीने में जयन्त नाम के ब्राह्मण ।८। भगवान के प्यारे वैशाखमास के धर्म सुनाते हुए आया उस क्षेत्र के निवासी पुण्यकर्मा द्विज से ।९। हजारों

के ब्राह्मण ।८। भगवान के प्यारे वैशाखमास के धर्म सुनाते हुए आया उस चैत्र के निवासी पुण्यकर्मा द्विज से ।९। हमारे

जयन्त कथा कहता था सब लोग चुपचाप वासुदेव भगवान की कथा में मन लगा ॥१०-११॥ वैशाख धर्म में लगे हुए दम्भ और आलस्य छोड़ सब कथा सुनते थे । मैं उस सभा में कौतुक देखने की इच्छा से जाता था ॥१२॥ मेरे शिर पर पगड़ी बंधी रहती थी में सबको नमस्कार कर मुख में पान चबाते हुए चोगा पहिने हुए जाता ॥१३॥ इस प्रकार सभा में जा लोक

क्षत्रियाश्च वैश्याः शूद्राः सहस्रशः । प्रातः स्नात्वा समभ्यर्च्य मधुसूदनमव्ययम् ॥१०॥ कथां शृण्वन्ति सततं जयन्तेन समीरिताम् । शुचिभूता मौनधरा वासुदेवकथारताः ॥११॥ वैशाख-धर्मनिरता दम्भालस्यविवर्जिताः । तां सभां च प्रविष्टोऽहं कौतुकाच्च दिदृक्षया ॥१२॥ सोष्णीषेण मया मूर्ध्ना नमस्कारोर्पितो जने । ताम्बूलं च मुखे कृत्वा कञ्चुकं च मया धृतम् ॥१३॥ कथाविक्षे-पमकरवं लोकवार्ताभिरञ्जसा । सर्वेषां चित्तचाञ्चल्यमभूद्वै लोकवार्तया ॥१४॥ क्वचिद्वासः प्रसार्याहं क्वचिन्निन्दन्क्वचिद्धसन् । एवं कालो मया नीतः कथा यावत्समाप्यते ॥१५॥ पश्चात्तेनैव दोषेण सद्योल्पायुर्विनष्टधीः । सन्निपातेन पञ्चत्वं प्राप्तोहं च परे दिने ॥१६॥ यमदूतैश्च नीतोऽहं

चर्चा के द्वारा कथा में विक्षेप करने लगा मेरी लोकवार्ता से सब श्रोताओं का मन चलायमान होगया ॥१४॥ मैं कभी कपड़ा फैलाता कभी निन्दा करता कभी हंसता,जब तक कथा समाप्त होती मैं ऐसे ही करता रहता ॥१५॥ उसी दोष के कारण मेरी बुद्धि नष्ट होगई,अवस्था क्षीण होगई और सन्निपात रोग से मेरे प्राण जाते रहे ॥१६॥ और उसी समय यमदूत पकड़ कर

मुझे भयङ्कर नरक में ले गये वहां चौदह मन्वन्तर तक अनेक दुःख भोगे और क्रम से चौरासी लाख योनि भोगकर अब इस वृक्ष में निवास करता हूँ ॥१७-१८॥ यह वृक्ष दश योजन लम्बा चौड़ा और सौ योजन ऊँचा है इस में सात योजन की खोतर में मैं महा क्रूर सर्प की योनि पा निवास करता हूं ॥१९॥ हे विप्रर्षे ! ये मेरे प्राचीन का फल है इस प्रकार इस

नरके च भयङ्करे । घोरां च यातनां भुक्त्वा मन्वन्तानि चतुर्दश ॥१७॥ युगेष्वथ च लक्षेषु तथा चतुरशीताभ्यः । क्रमाद्योनिषु जातोऽहमिदानीं चावसं द्रुमे ॥१८॥ दशयोजनविस्तीर्णे शतयोजनमुन्नते । व्यालोहं तामसः क्रूरः सप्तयोजनकोटरे ॥१९॥ भूत्वा वसामि विप्रर्षे कर्मणा बाधितः पुरा । अयुतं च समायातं निराहारस्य कोटरे ॥२०॥ दैवात्तव मुखाम्भोजसमीरितकथामृतम् । श्रुत्वा च चक्षुश्चुलकैः सद्यो ध्वस्ताशुभो मुने ॥२१॥ व्यालयोनिं विसृज्याहं दिव्यरूपधरः पुमान् । प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा पादौ ते शरणं गतः ॥२२॥ कस्मिञ्जन्मनि त्वं बन्धुर्न जाने मुनिसत्तम । न मयोपकृतं क्वापि सानुबन्धः कुतः सताम् ॥२३॥ साधूनां तमचित्तातां सदा भूतदयावताम् ।

कोटर में निराहार निवास करते मुझे दश सहस्र वर्ष बीत गये हैं ॥२०॥ दैवयोग से आपके मुख कमल से निकली कथा को चक्षुगोलक से सुनने से मेरे सब पाप दूर होगये हैं ॥२१॥ और सर्प की योनि छोड़ दिव्य देह धारण कर हाथजोड़ नमस्कार कर आपकी शरण में आया हूँ ॥२२॥ ... जन्म के ... हैं मैंने ... की ...

चतुर्गालिक से सुनने से मेरे सब पाप दूर होगये हैं ॥२१॥ और सर्प की योनि छोड़ दिव्य देह धारण कर हाथजोड़ नमस्कार
कर आपकी शरण में आया हूँ ॥२२॥ हे मुनिसत्तम ! मैं नहीं जानता कि आप मेरे किस जन्म के [illegible]

समान चित्त वाले दयावान् साधु महात्माओं की प्रकृति सदा
कोई उपकार नहीं किया फिर सज्जनों का सङ्ग कैसे हुआ ॥२३॥ आप मेरे ऊपर आज अनुग्रह करो जिससे मेरी बुद्धि
परोपकार में लगी रहती है इनकी मति कभी अन्यथा नहीं होती ॥२४॥ सुदर्शन चक्रधारी विष्णु भगवान को कभी न
धर्ममयी हो जिससे गति मिले और विष्णु भगवान के प्रति प्रीति हो ॥२५॥

परोपकारप्रकृतिर्न चैषामन्यथा मतिः ॥२४॥ मामद्यानुगृहाण त्वं यथा धर्मे मतिर्भवेत् । यथा च सुगतिर्भूयाद्यथा विष्णौ रतिर्भवेत् ॥२५॥ न भूयाद्विस्मृतिः क्वापि विष्णोर्देवस्य चक्रिणः । महतां साधुवृत्तानां सङ्गतिश्च सदा भवेत् ॥२६॥ नाधर्मः क्वापि मे भूयान्नाहङ्कारो मदान्वितः । दारिद्र्यमेव मे भूयान्मदान्धानां यदञ्जनम् ॥२७॥ इति तं बहुधा स्तुत्वा प्रणम्य च पुनः पुनः । प्राञ्जलिः प्रणतस्तस्थौ तूष्णीमेव तदग्रतः ॥२८॥ शङ्खो दोर्भ्यां समुत्थाप्य पूर्णप्रेमपरिप्लुतः । पस्पर्श पाणिना चाङ्गं शन्तमेन गताध्वसः ॥२९॥ चक्रे सोऽनुग्रहं तस्मिन् दिव्यरूपधरे द्विजे ।

भूलूं और सदा सच्चरित्र साधु महात्माओं की संगति रहे ॥२६॥ मुझसे कभी अधर्म न हो अहङ्कार न हो, मैं सदा दरिद्री रहूं क्योंकि दरिद्र धनमदांधों के लिये अंजनरूप है ॥२७॥ इस प्रकार अनेकों स्तुति कर बारम्बर नमस्कार कर हाथ जोड़ शिर झुका मुनीश्वर के आगे चुपचाप खड़ा रहा ॥२८॥ शङ्ख मुनि पूर्ण प्रेम से भर गये और दोनों हाथों से उसे उठा उसके शरीर को अपने हाथ से स्पर्श करने लगे, जिससे सब पाप नष्ट होगये ॥२९॥ और उस दिव्य रूप धारी ब्राह्मण पर अनुग्रह

कर कृपालु हो भावी वृत्तांत कहने लगे ॥३०॥ हे द्विज ! वैशाखमास और विष्णु भगवान का माहात्म्य श्रवण करने से तेरे सारे पाप नष्ट होगये हैं ॥३१॥ तू क्रमसे अतिवाहिक लोकों को जाकर फिर दशार्ण देश में ब्राह्मण के घर जन्म लेगा ॥३२॥ और वेदशर्म्मानाम से प्रसिद्ध होकर सब विद्याओं में विशारद होगा । प्रत्येक जन्म में तेरी अत्यन्त जातिस्मृति होगी ।३३।

प्राह तं कृपयाविष्टो भाविवृत्तान्तमञ्जसा ॥३०॥ द्विजत्वं मासमाहात्म्यश्रवणाच्च हरेरपि । माहात्म्यश्रवणात्सद्यो ध्वस्तनष्टाखिलाशुभः ॥३१॥ अतिवाहिकलोकांश्च क्रामाद्गत्वा पुनर्भुवि । दशार्णे विषये पुण्ये भविता त्वं द्विजोत्तमः ॥३२॥ वेदशर्मेति विख्यातः सर्वविद्याविशारदः । तत्र ते भविता जातिस्मृतिरात्यन्तिकी शुभा ॥३३॥ तयास्मृतानुबन्धस्त्वं त्यक्तसर्वेषणः शुभः । करोषि सकलान् धर्मान् वैशाखोक्तान् हरिप्रियान् ॥३४॥ निर्द्वन्द्वो निःस्पृहोऽसङ्गो गुरुभक्तो जितेन्द्रियः । सदा विष्णुकथालापो भविता तत्र जन्मनि ॥३५॥ ततः सिद्धिं सम्यगाप्य विध्वस्ताखिलबन्धतः । प्राप्नोषि परमं धाम योगैरपि दुरासदम् ॥३६॥ मा भैषीः पुत्र भद्रं ते भविता मत्प्रसादतः । हास्या-

इसी स्मरण के अनुबन्ध से तू सम्पूर्ण इच्छाओं का त्याग कर वैशाखोक्त विष्णु के प्रिय धर्म करेगा ॥३४॥ निर्द्वन्द, निःस्पृह गुरुभक्त और जितेन्द्रिय होकर उस जन्म में तू सदा विष्णु भगवान की कथा में तत्पर रहेगा ।३५। तब तू सिद्धी प्राप्त करेगा और सम्पूर्ण बन्धनों से छूटकर [illegible]

गुरुभक्त और जितेन्द्रिय होकर उस जन्म में तू सदा विष्णु भगवान की कथा में तत्पर रहेगा।३५। तब तू सिद्धी प्राप्त करेगा

तेरा कल्याण होगा क्यों कि चाहे हंसी डर क्रोध द्वेष ॥३७॥ या स्नेह से विष्णु भगवान के नाम का उच्चारण करे तो पापी भी निर्मल हो विष्णुलोक को जाते हैं ॥३८॥ जो श्रद्धा पूर्वक क्रोध को जीतकर जितेन्द्रिय होकर सुनते हैं उनका तो कहना क्या जो दयावान् हो श्रवण करते हैं वे भी मोक्ष पाते हैं ॥३६॥ कोई केवल भक्ति से कथा लापमें तत्पर होगए हैं और

द्भयात्तथा क्रोधाद्द्वेषात्कामादथापि वा ॥३७॥ स्नेहाद्वा सकृदुच्चार्य विष्णोर्नामाघहारि च। पापिष्ठा अपि गच्छन्ति विष्णोर्धाम निरामयम् ॥३८॥ किमुत श्रद्धया युक्ता जितक्रोधा जितेन्द्रियाः। दयावन्तः कथां श्रुत्वा गच्छन्तीति द्विजोत्तम ॥३६॥ केचित्केवलया भक्त्या कथालापैकतत्पराः। सर्वधर्मोज्झिता वापि यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥४०॥ द्वेषादिनां च भक्त्या वा केचिद्विष्णुमुपासते। तेऽपि यान्ति परं धाम पूतनेवासुहारिणी ॥४१॥ महद्भिः संगतो नित्यत्राग्विसर्गस्तदाश्रयः। मुमुक्षूणां च कर्तव्यः स विधिः श्रुतिचोदितः ॥४२॥ स वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो यस्मिन्प्रति श्लोकमबद्धवत्यपि। नामान्यनन्तस्य यशोङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति

संपूर्ण धर्मों को त्याग देते हैं वे भी विष्णु के परम पदको पाते हैं ॥४०॥ जो कोई द्वेषादि से अथवा भक्ति से विष्णु की उपासना करते हैं वे भी विष्णु लोक को जाते हैं जैसे पूतना मुक्ति होगई ॥४१॥ महात्माओं की नित्य संगति बातचीत और उनका आश्रय मुमुक्षु पुरुषों का नित्य कर्त्तव्य है यही वेदोक्त विधि है ॥४२॥ यह वाग्विसर्ग जिसमें सम्पूर्ण पाप दूर होजाते

हैं भगवान के भिन्न यशसे अंकित जो अनेक नाम हैं उन्हें साधु महात्मा सुनते हैं गान करते और मनन करते हैं ऐसी जो
भगवान की सेवा है इसमें न कष्ट उठाने की आवश्यकता है न अधिक धन ही खर्च होता है भगवान रूप और यौवन पर
प्रसन्न नहीं होते हैं जिसके स्मरण मात्रसे प्रकाशमय धाम मिलता है उस दयालु परमात्मा की शरणमें ही हम जाते हैं ।४३।

साधवः ॥४३॥ यः कष्टसेवां न च कांक्षते विभुर्न वा धनं भूरि न रूपयौवने । स्मृतः सकृद्धाम्न्छति
धाम भास्वरं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥४४॥ तमेव शरणं याहि नारायणमनामयम् । भक्त-
वत्सलमव्यक्तं चेतोगम्यं दयानिधिम् ॥४५॥ कुरु सर्वानिमान् धर्मान् वैशाखोक्तान्महामते ।
तेन तुष्टो जगन्नाथः शर्म ते च विधास्यति ॥४६॥ इत्युक्त्वा विररामाथ व्याधं दृष्ट्वा सुविस्मितः ।
स दिव्यः पुरुषः प्राह पुनस्तं मुनिपुङ्गवम् ॥४७॥ दिव्यपुरुष उवाच ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि
त्वया शङ्ख दयालुना । दिष्ट्या गता मे दुर्योनिर्यामि चैव परां गतिम् ॥४८॥ इति तं च परिक्रम्य

॥४४॥ तू भी उसी अनामय नारायण की शरण जा, वह नारायण भक्तवत्सल अव्यक्त, मन द्वारा गम्य और दया के समुद्र
हैं ॥४५॥ हे महामते ! वैशाखोक्त इन संपूर्ण धर्मों को कर इनसे जगदीश्वर भगवान प्रसन्न होकर तुम्हारा सब तरह मङ्गल
करेंगे ॥४६॥ ऐसा कह मुनीश्वर चुप होगये । तब व्याध को देख विस्मित हो वह दिव्य पुरुष मुनीश्वर से कहने लगा ॥४७॥
दिव्य पुरुष बोला-हे महाराज ! मैं धन्य हूँ आपने कृपालु हो, मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया आपकी कृपा और मेरे पूर्व

भाग्योदय से मेरी दुष्टयोनि जाती रही और उत्तम गति मिली ॥४८॥ ऐसा कहकर वह परिक्रमा दे, आज्ञा ले, स्वर्ग लोक को गया हे राजन् ! तब संध्या हो गयी और शंखमुनी व्याध से संतुष्ट हो ॥४९॥ सायंकाल को संध्या कर राजा देवता और महात्माओं के अनेक इतिहास सुना तथा विष्णु भगवान के अवतारों की देखी और सुनी कथा सुना रात्रि के शेष भाग को

ह्यनुज्ञातो दिवं ययौ । ततः सायमभूद्राजञ्छङ्खो व्याधेन तोषितः ॥४९॥ सन्ध्यां सायन्तनीं कृत्वा रात्रिशेषं निनाय च । नानाख्यानैश्च भूपानां देवानां च महात्मनाम् ॥५०॥ लीलाभिवताराणां दृष्टगोष्ठिभिरेव च । ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय पादौ प्रक्षाल्य वाग्यतः ॥५१॥ ध्यायेच्च तारकं ब्रह्म कृत्वा शौचादिसत्क्रियाम् । वैशाखे मेषगे सूर्ये स्नात्वा प्राक् च भगोदयात् ॥५२॥ कृत्वा संध्यादिकं कर्म तथा संतर्प्य चाखिलान् । व्याधमाहूय हृष्टात्मा मूर्ध्नि प्रोक्ष्य निरीक्ष्य च ॥५३॥ रामेति व्यक्षरं नाम ददौ वेदाधिकं शुभम् । विष्णोरेकैकनामापि सर्व वेदाधिकं मतम् ॥५४॥ तेभ्यश्चान-

व्यतीत कर ब्राह्म मुहूर्त्त में उठे और चरण धो मौन साध ।५०-५१। तारक ब्रह्मका ध्यान कर शौचादि क्रियाओं से निश्चय हो सूर्योदय से पहिले स्नान कर ॥५२॥ सन्ध्यावन्दना करके सबका तर्पण कर प्रसन्न मन से व्याध को बुला उसके शिर पर प्रोक्षण कर ॥५३॥ वेद से भी अधिक शुभ फल दायक "राम" दो अक्षर का मन्त्र विष्णु भगवान का प्रत्येक नाम वेद से भी अधिक शुभ फल दायक है ॥५४॥ और ऐसे अनन्त नामोंसे अधिक विष्णु सहस्र नाम हैं उन सहस्र नामों से भी अधिक

वै० मा० २२२

राम नामहै ।५५। इससे हे व्याध! तू निरन्तर इस राम नाम का जप कर और हे व्याध! मरणपर्यन्त इन्हीं धर्मों को करता रह ॥५६॥ इससे तेरा जन्म वाल्मीक ऋषि के कुलमें होगा और तू वाल्मीकि नाम से संसार में प्रसिद्ध होगा ॥५७॥ व्याध को इस प्रकार समझा बुझा आप दक्षिण दिशा को चले गये । व्याध भी परिक्रमा दे बारम्बार नमस्कार कर ।५८। थोड़ी

न्तनामभ्योऽधिकं नाम्नां सहस्रकम् । तादृङ्नामसहस्रेण रामनामसमं मतम् ॥५५॥ तस्माद्रामेति तन्नाम जप व्याध निरन्तरम् । धर्मानेतान् कुरु व्याध यावदामरणान्तिकम् ॥५६॥ ततस्ते भविता जन्म वाल्मीकस्य ऋषेः कुले । वाल्मीकिरिति नाम्ना च भूमौ ख्यातिमवाप्स्यसि ॥५७॥ इति व्याधं समादिश्य प्रतस्थे दक्षिणं दिशम् । व्याधोऽपि तं परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः ॥५८॥ किंचिद्दूरानुगो भूत्वा स रुदन् विरहातुरः । यावद्दृष्टिपथं तावत्पश्यंस्तस्य गतिं पुनः ॥५९॥ पुनर्निवृत्ते कृच्छ्रात्तमेव हृदि चिन्तयन् । वनं निर्माय तन्मार्गे प्रपां कृत्वा सुनिर्मलाम् ॥६०॥ अतियोग्यानिमान् धर्मान्वैशाखोक्तांश्चकार ह । वन्यैः कपित्थपनसैर्जम्बुचूतादिभिः फलैः ॥६१॥ मार्गगानां

दूर तक पीछे गया, फिर उनके वियोग में हाय हाय कर रोने लगा । जब तक नेत्रों से ओझल न हुये तब तक शंखमुनि को देखता रहा ॥५९॥ फिर हृदय में उन्हीं का ध्यान करता हुआ कठिनता से रुका और वन को स्वच्छ कर उस मार्ग में प्याऊ लगा ॥६०॥ अत्यन्त उत्तम [illegible] धर्मों को करता रहा [illegible] कैथ पनस, जाम न आदि फल ॥६१॥ श्रमसे

भा० टी० अ० २[illegible]

को देखता रहा ।।५६।। फिर हृदय में ...
व्याकुल लगा ।।६०।। अत्यन्त उत्तम इन वैद्याखोक्त धर्मों को करता रहा, वन के कैथ, पनस, जामुन आदि फल ।।६१।। श्रमसे

थके पथिकों को भोजन कराता रहा, जूता चन्दन छत्री, पङ्खा ।।६२।। बालू का बिछौना और छाया आदि से मार्ग के श्रान्त पथिकों के श्रम को दूर करने लगा ।।६३।। प्रातःकाल स्नान कर रात दिन नाम जप करे ऐसे व्याध का जन्म पूर्ण कर उसने वाल्मीक ऋषि के घर जन्म लिया ।।६४।। उसी सरोवर में कृणु नाम के कोई मुनि दुस्तर तप करते थे जिन्होंने बाहरी सब

वै० भा०

श्रमार्तानामाहारं पर्यकल्पयत् । उपानद्भिश्चन्दनैश्च च्छत्रैश्च व्यजनैरपि ।।६२।। वालुकास्तरणोपेत-च्छायाभिश्च क्वचित्क्वचित् । आजहार च पान्थानां श्रमस्वेदोद्भवं तथा ।।६३।। प्रातः स्नात्वा दिवारात्रे जपम् रामेति वै मनुम् । व्याधजन्म निनायासौ वल्मीकस्य सुतोऽभवत् ।।६४।। कृणुर्नाम मुनिः कश्चित्तस्मिन्नेव सरोवरे तपो वै दुस्तरं तेपे बाह्यव्यापारवर्जितः ।।६५।। वल्मीकमभवद्देहे तस्य कालेन भूयसा । वाल्मीक इति तं प्राहुरतो वै मुनिपुङ्गवम् ।। ६६ ।। पश्चात्तपोविरामान्ते कृणौ स्मृतिपथं गते । स्त्रियो विरावतो राजन् स्खलितं चेन्द्रियं मुनेः ।।६७।। जग्राह शैलुषी काचित्तस्यां जज्ञे वनेचरः । वाल्मीकिरिति विख्यातो भुवनेषु महायशाः ।।६८।। यो वै रामकथां दिव्यां स्वैः

१० टी०

२२२ प्र०

२१

काम छोड़ दिये थे ।।६५।। उनके शरीर पर बहुत काल में सर्प की बांबी बन गई थी इसी हेतु से उन्हें वाल्मीक ऋषि कहने लगे ।।६६।। फिर तप के अन्त में जब कृणु ऋषि के कानों में स्त्रियों के प्रिय शब्द सुनाई देने लगे तब तो उनका चित्त चलायमान होने लगा और एक भील जाति की स्त्री को ला वाल्मीक नामक पुत्र उत्पन्न किया हे राजन् ! ये वाल्मीक सन्सार

में बड़े यशस्वी और विख्यात हुए। इन्होंने मनोहर छन्द में राम कथा रचकर संसार में प्रसिद्ध की। यह राम कथा सब कर्म बन्धनों को काटने वाली है ॥६७-६९॥ श्रुतदेवजी बोले—वैशाख के महात्म्य को देखो, थोड़ा देने पर बहुत फल मिलता है इसी प्रकार व्याध को जूतों का दान करने से दुर्लभ ऋषित्व प्राप्त हुआ ॥७०॥ जो कोई रोमांचोत्पादक इस पाप नाशक

प्रबन्धैर्मनोहरैः। लोके प्रख्यापयामास कर्मबन्धनिकृन्तनीम् ॥६९॥ श्रुतदेव उवाच ॥ पश्य वैशाख माहात्म्यं भूप लघ्वपि भूरिदम्। व्याधोऽप्युपानहौ दत्त्वा ऋषित्वं प्राप्य दुर्लभम् ॥७०॥ य इदं परमाख्यानं पापघ्नं रोमहर्षणम्। शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि न भूयः स्तनपो भवेत् ॥७१॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्बादे व्याधोपाख्याने वाल्मीकिजन्मकथनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

मैथिल उवाच ॥ का ह्यस्मिंस्तिथयः पुण्या मासे वैशाखसंज्ञके। कानि दानानि शस्तानि तासु तासु विशेषतः। कैः प्रख्याताश्च वै लोके एतदाचक्ष्व विस्तरात् ॥१॥ श्रुतदेव उवाच ॥

आख्यान को सुनेगा और औरों को सुनाएगा उसका जन्म संसार में फिर नहीं होगा ॥७१॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाख महात्म्ये नारदांबरीष संवादे व्याधोपाख्याने वाल्मीकजन्मकथनं नाम एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

मैथिल बोले-इस वैशाख मास में कौन सी तिथियां अत्यन्त पुण्य कारक हैं और उन तिथियों में क्या क्या दान विशेष रूप से उत्तम हैं और संसार में इन्हें ... ॥१॥ यह सुन श्रुतदेवजी कहने

मायल वोले-इस वैशाख मास में कौन सी तिथियां अत्यन्त पुण्य कारक है और उन तिथियों में क्या क्या दान विशेष रूप से उत्तम है और संसार में इन्हें किसने प्रख्यात किया है यह सब विस्तार पूर्वक बताइये ॥१॥ यह सुन श्रुतदेवजी कहने लगे, वैशाख में मेष के सूर्यकी तीसों तिथियां बड़ी उत्तम हैं ॥२॥ एक एक तिथि में जो दान किया जाता है उसका कोटि गुना फल मिलता है संपूर्ण तीर्थों के करने से जो फल मिलते हैं ॥३॥ वेही फल एक एक तिथि में स्नान दान तप होम देव पूजनादि कर्मों से प्राप्त होते हैं ॥४॥ कथा के सुनने से भी तत्काल मुक्ति मिलती है रोग अथवा दरिद्र से पीडित ॥५॥

त्रिंशच्च तिथयः पुण्या वैशाखे मेषगे रवौ ॥२॥ एकैकस्यां कृतं पुण्यं कोटिकोटिगुणं भवेत् । सर्वदानेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ॥३॥ तत्फल समवाप्नोति ह्येकैकस्यां जलाप्लुतः । स्नानं दानं तप होमो देवतार्चनसत्क्रियाः ॥४॥ कथायाः श्रवणं चैव सद्यो मुक्तिविधायकम् । रोगाद्यु पहतो यस्तु दरिद्रेणापि पीडितः ॥५॥ श्रुत्वा कथामिमां पुण्यां कृतकृत्यो भवेन्नरः । अस्नात्वा चाप्यदत्त्वा च येन नीता इमाः शुभाः ॥६॥ स गोघ्नश्च कृतघ्नश्च पितृघ्नश्चात्महा स्मृतः । जलाशयाश्च स्वाधीदाः स्वाधीनं च कलेवरम् ॥७॥ माधवो मनसा सेव्यः कालश्च सुगुणोत्तमः । साधवश्च

भी इस पुण्य कथा को श्रवण करके कृतकृत्य हो जाता है जो कोई बिना दान या बिना स्नान किये इन तिथियों को व्यतीत करता है ॥६॥ वह गौ घाती कृतघ्न पितृघाती और आत्मघाती होता है, जलाशय स्वाधीन है और देह भी स्वाधीन है ॥७॥ माधव भगवान मन द्वारा सेव्य हैं यह काल सर्वगुणयुक्त है साधु दयावान् होते हैं ऐसे अवसर पर माधव का अवश्य सेवन करना चाहिये ॥८॥ दरिद्री, धनवान्, लंगडा, अंधा, नपुंसक, विधवा स्त्री ॥९॥ बालक, वृद्ध, युवा सभीको इस माधव मास

का सेवन कर्त्तव्य है, वैशाखोक्त धर्म अत्यन्त सुख से साधने योग्य है ॥१०॥ वैशाख मासके आने पर इन सब शुभ धर्मों को करे ऐसे समय को पा कौन यत्न नहीं करता है इससे शुभ और कुछ नहीं है ॥११॥ जो कोई नीच नर इन अति सुलभ धर्मों को नहीं करता उसको नरक सहज ही मिल जाता है इस में कोई सन्देह नहीं ॥१२॥ हे राजन् ! जैसे दही को मथकर मक्खन

वै० मा०

दयावन्तः को न सेवेत माधवम् ॥८॥ दरिद्रैश्च धनाढ्यैश्च पंगुभिः श्चान्धकैस्तथा । पण्ढैश्च विधवाभिश्च नारीभिश्च नरैस्तथा ॥९॥ कुमारयुववृद्धैश्च रोगार्तैरपि भूमिप । अतीव सुखसाध्यो हि धर्मो वैशाखगोचरः ॥१०॥ माससेनमनुप्राप्य धर्मान् कुरु इमाञ्छुभान् । को न यत्नं च कुरुते यस्मात्कोन्यपरः शुभः ॥११॥ योऽतीव सुलभान् धर्मान्न करोति नराधमः । तस्यैव सुलभा लोका नरका नात्र संशयः ॥१२॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि तस्मिन्मासे नृपोत्तम । तां तिथिं सर्वपापघ्नीं दध्नः सारमिवोद्धृताम् ॥१३॥ चैत्रे मासि महापुण्ये मेषसंस्थे दिवाकरे । पापघ्नी पितृदैवत्या गया कोटिफलप्रदा ॥१४॥ अत्रैव श्रूयते पुण्या पितृगाथा पुरातनी । नरकपिसूनुद्दिश्य सावर्णौ शासति

अलग कर लेते हैं ऐसे ही अब इस मास में से उस तिथि को निकाल कर बताताहूँ ॥१३॥ चैत्र के महीने में जब मेष की संक्रांति हो, उसी समय पापों के नाश करने वाली अमावस्या कोटि गया करने के फल देती है ॥१४॥ यह एक पित्रीश्वरों के सम्बन्ध की पुरानी कथा चली ... मन्वन्तर का राज्य था ॥१५॥

संक्रांति हो, उसी समय पापों के नाश करने वाली अमावस्या कोटि गया करने के फल देती है ॥१४॥ यह एक पित्रीश्वर
के महत्त्व की पुरानी कथा चली आती है जो नर्क और पितरों की है । अब पृथ्वी पर सार्वभौम मन्वन्तर का राज्य था ॥१५॥

तीसवें कलियुग के अन्त में जब संपूर्ण धर्म नष्ट हो गये उस समय आनर्त देश में समीवर्णी नाम का कोई ब्राह्मण हुआ था ॥१६॥ उसने इस घोर कलियुग में मनुष्य को पापों से युक्त देखा । उसी कलियुग के प्रथमपाद में जब सब मनुष्य अपने२ वर्ण धर्मों से हीन होगये ॥१७॥ तब एक दिन वह मुनि महात्माओं के सत्र यज्ञ के दर्शन के निमित्त पुष्कर क्षेत्र गया ॥१८॥

क्षितिम् ॥१५॥ त्रिंशत्कलियुगस्यान्ते सर्वधर्मविवर्जिते । अनार्ते तु द्विजः कश्चिद्धर्मवर्ण इति श्रुतः ॥१६॥ दृष्ट्वा कलियुगे घोर जनान्पापरतान् मुनिः । तस्यैव प्रथमे पादे वर्णधर्मविवर्जिते ॥१७॥ स कदाचित्सत्त्रयागं मुनीनां तु महात्मनाम् । अगमत्पुष्करे क्षेत्रे कुर्वंतां मौनधारिणाम् ॥१८॥ तत्र चासन्पुण्यकथा ऋषीणां शास्त्रगोचराः । तत्र केचित्कलियुगं प्रशशंसुर्धृतव्रताः ॥१९॥ कृते यद्वत्सरात्साध्यं पुण्यं माधवतोषणम् । त्रेतायां मासतः साध्यं द्वापरे पक्षतो नृप ॥२०॥ तस्माद्दशगुणं पुण्यं कलौ विष्णुस्मृतेर्भवेत् । अत्यल्पमपि वै पुण्यं कलौ कोटिगुणं भवेत् ॥२१॥ दया-

वहां ऋषि मुनि लोग शास्त्रविहित पुण्य वर्द्धक कथाओं का वर्णन कर रहे थे उन में से कोई धृतव्रत कलियुग की प्रशंसा करने लगे ॥१९॥ कि सत्य युग में जो वर्ष भर में माधव भगवान् प्रसन्न होते हैं सो त्रेता में एक मास में और द्वापर में एक ही पक्ष में होते हैं ॥२०॥ उससे दशगुणा पुण्य कलियुग में विष्णुभगवान का स्मरण करने से होता है कलियुग में थोड़ा क्रिया पुण्य भी कोटि गुणित होता है ॥२१॥ जो दया, पुण्य, दान, धर्म, कुछ नहीं कर सकते हैं उनको केवल एक हरि नाम

उच्चारण करना ही उचित है ॥२२॥ जो अकाल में अन्नदान करते हैं वह वैकुण्ठ को जाते हैं जब यह प्रसङ्ग होरहा था तभी नारद मुनि आकर एक हाथ से शिश्न और एक हाथ से जिह्वा को पकड़ खूब हंसने लगे और उन्मत्त की तरह नाचने लगे ॥२३-२४॥ तब सभी लोग कहने लगे हे नारद ! कहो तो सही यह क्या बात है ? तब बुद्धिमान् नारद हंसते और नाचते

पुण्यविहीने तु दानधर्मविवर्जिते । दयादानं न कुरुते सकृदुच्चार्य वै हरिम् ॥२२॥ स एव चोर्ध्वगो नूनं दुर्भिक्षे चान्नदस्तथा । एतत्प्रसङ्गावसरे नारदोऽभ्येत्य वै मुनिः ॥२३॥ करेणैकेन शिश्नं च जिह्वां चैकेन वै हसन् । प्रगृह्योन्मत्तवत्तत्र ननर्त मुनिसत्तमः ॥२४॥ सभ्यास्तदा तमित्यूचुः किमेतदिति नारद । प्रत्युवाच च तान् सर्वान्नृत्यन्नृत्यन्हसन्सुधीः ॥२५॥ संतोषाद्यदिह प्रोक्तं नृत्यद्भिर्भावितात्मभिः । सिद्धा यूयं न सन्देहः पुण्योऽयं कलिरागतः ॥२६॥ तत्सत्यं न च सन्देहो बहु स्वल्पेन साध्यते । स्मरणात्तोषमायाति केशवो वः क्लेशनाशनः ॥२७॥ तथापि वः प्रवक्ष्यामि दुर्घटं च द्वयं

हुये कहने लगे ॥२५॥ नृत्य करते हुए भावितात्माओं ने जो सन्तोष पूर्वक कहा है उसी से हम सिद्ध हो गये हैं निःसन्देह यह कलियुग बड़ा पुण्य रूप आया है ॥२६॥ वह सत्य ही है इसमें सन्देह नहीं यह बहुत ही थोड़े परिश्रम से सिद्ध होजाता है केशव भगवान क्लेश नाश करने वाले स्मरणमात्र से ही प्रसन्न होते हैं ॥२७॥ तो भी मैं तुम से कहता हूँ हे पुत्रों ! शिश्न और जिह्वा इन दो का निग्रह करना ... वही जनार्दन के ...

और जिह्वा इन दो का निग्रह करना अति कठिन है ॥२८॥ जिसके वश में ये दोनों वस्तु हैं वही जनार्दन के तुल्य हैं अतः

कलियुग के आगमन में आप लोगों का ठहरना यहां उचित नहीं ॥२९॥ इस पाखंडमय भारत को छोड़कर सुख पूर्वक अन्यत्र जहाँ कहीं मन प्रसन्न हो, विचरो ॥३०॥ ऐसे व्रत धारी मुनि यह बचन सुन यज्ञ समाप्त कर शीघ्र ही सुख पूर्वक चले गये ॥३१॥ धर्मवर्णा ने भी यह सुन पृथ्वी त्यागने का विचार कर नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत को धारण कर दंड कमंडलु ले जटा

ध्रुवम् । शिश्नस्य निग्रहः पुत्रा जिह्वाया अपिः नित्यशः ॥ २८ ॥ द्वयं यस्य वशे भूयात्स एव स्याज्जनार्दनः । भवद्भिर्नात्र । स्थातव्यं तस्मात् कलियुगागमे ॥२९॥ पाखण्डं भारतं हित्वा संचरध्वं यथासुखम् । यत्र कुत्रापि देशेषु मनो यत्र प्रसीदति ॥३०॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा मुनयः शंसितव्रताः । सत्रं समाप्य सहसा ययुस्ते च यथासुखम् ॥३१॥ धर्मवर्णोऽपि तच्छ्रुत्वा त्यक्तुं भूमिं मनो दधे । स व्रतं चोर्ध्वतेजस्कं धृत्वा दण्डकमण्डलू ॥३२॥ जटावल्कलधारी च भूत्वा चैवं ययौ पुनः । कलौ युगे त्वनाचारान् द्रष्टुं विस्मितमानसः ॥३३॥ तत्रापश्यज्जनान् घोरान् पापाचाररतान् खलान् । पाखिण्डनो द्विजाः सर्वे शूद्राः प्रव्रजिनस्तथा ॥३४॥ भर्तारं द्वेष्टि भार्या च

और छाल के वस्त्र पहिन मन में आश्चर्य करते कलियुग में अनाचारों के देखने गये ॥३२-३३॥ वहाँ क्या देखते हैं कि, सम्पूर्ण मनुष्य जाति घोर पापों में मग्न हैं, ब्राह्मण शूद्र और संन्यासी पाखंडी होगये हैं ॥३४॥ पत्नी पति से विरोध रखती हैं, शिष्य अपने गुरु से द्रोह करता है, सेवक स्वामी को और पुत्र पिता को मारने को तैयार है ॥३५॥ सब ब्राह्मण शूद्रवत्

होगये हैं, गौ बकरी के समान होगई हैं, वेद कहानी कहानी मात्र हैं, वेद विहित कर्म साधारण काम होगये हैं ॥३६॥ भूत प्रेत पिशाचादि साक्षात् देवताओं का रूप धारण कर फल देते हैं तथा पापी मनुष्य श्रद्धापूर्वक इन का ही पूजन करते हैं सम्पूर्ण लोग कुकर्म में लगे हुये हैं और कुकर्म में ही अपने प्राण त्याग देते हैं, झूँठी गवाही देते हैं, मन में सदा कपट रखते

शिष्यो द्वेष्टि गुरुं तथा । भृत्यश्च स्वामिहन्ता च पुत्रः पितृवधे रतः ॥ ३५ ॥ शूद्रप्राया द्विजाः सर्वे बस्तप्रायाश्च धेनवः । गाथाप्रायास्तथा वेदाः क्रियासाम्यः शुभाः क्रियाः ॥३६॥ भूतप्रेतपिशाचाद्याः फलदास्तत्र देवताः । ता एव श्रद्धयार्चन्ति जनाः पापरताः खलाः ॥ ३७ ॥ सर्वे व्यवायनिरतास्तदर्थे त्यक्तजीविताः । कूटसाक्षिप्रवक्तारः । सदा कैतवमानसाः ॥३८॥ मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं सदा कलौ । सर्वेषां हैतुकी विद्या सा पूज्या नृपमन्दिरे ॥३९॥ गीताद्याश्च कलाविद्या नृपाणां च प्रियावहाः । हीनाश्च पूज्यतां यान्ति नोत्तमाश्च कलौ युगे ॥४०॥ श्रोत्रियाश्च द्विजाः सर्वे दरिद्राः स्युः कलौ युगे । विष्णुभक्तिर्नराणां तु प्रायशो नैव वर्तते ॥४१॥ प्रायः

हैं ॥३७-३८॥ कलियुग मनुष्यों के मन में एक विचार है, वाणी में एक दूसरा है, कर्म कुछ और ही है, ऐसे सब की पाखंड भरी विद्या ही राज भवन में प्रतिष्ठा पाती है, नाचना गाना राजाओं को प्रिय लगता है, अधम और नीच लोग पूज्य होगये हैं, और उत्तम अधम हो गये हैं ॥३९-४०॥ कलियुग में ... मनुष्यों में से विष्णु भक्ति जाती रही है

भरी विद्या ही राज भवन में प्रतिष्ठा पाती है, नाचना गाना राजाओं को प्रिय लगता है, अधम और नीच लोग पूज्य हो गये हैं, और उत्तम अधम हो गये हैं ॥३९॥४०॥ कलियुग में वेद पाठी ब्राह्मण दरिद्री हैं, मनुष्यों में से निरन्तर भक्ति जाती रहेगी

॥४१॥ लोग अल्प आयु वाले प्रायः पाखंडी निर्दय और मूर्ख हैं, इस पर भी शूद्र तक धर्म का उपदेश करते हैं, जिसने जटा बढ़ाली है वही तपस्वी हैं ॥४२॥ सम्पूर्ण मनुष्य अल्पायू दयाहीन और शठ हो गये हैं, सभी धर्मोपदेशक बन गये हैं, सभी उत्साह हीन हैं ॥४३॥ व्यर्थ ही पराई निन्दा कर के अपनी ही पूजा कराने की इच्छा करते हैं, अपने स्वामी को घर चले

पाखण्डभूयिष्ठं पुण्यक्षेत्रं भविष्यति । शूद्रा धर्मप्रवक्तारो जटिलास्तापसाः कलौ ॥४२॥ सर्वे चाल्पायुषो मर्त्या दयाहीनाः शठा जनाः । सर्वे धर्मप्रवक्तारः सर्वे चैव हतोत्सवाः ॥४३॥ स्वार्चनं चापि हीच्छन्ति वृथा निन्दापरायणाः असूयानिरताः सर्वे प्रभौ सति गृहं गते ॥४४॥ भ्राता च भगिनीं गन्ता पिता पुत्रीं च वै कलौ । सर्वेऽपि शूद्रीनिरताः सर्वे वाराङ्गनारताः ॥४५॥ साधून्नैवावजानन्ति बहुपापांश्च मन्वते । व्यक्तीकुर्वन्ति साधूनां दोषमेकं दुराग्रहाः ॥ ४६ ॥ पापानां दोषजातानि गुणत्वेन वदन्ति हि । दोषमेव प्रगृह्णन्ति कलौ तु विगुणा जनाः ॥४७॥ जलूकः

जाने पर निन्दा करते हैं ॥४४॥ इस कलियुग में भ्राता भगिनी से और पिता पुत्री तक से सङ्गम करते हैं, सभी शूद्र और वेश्याओं में रत रहते हैं ॥४५॥ साधु महात्माओं का अपमान करते हैं, बड़े बड़े पापियों का सत्कार करते हैं, तथा साधुओं में एक भी दोष हो तो उसे दुराग्रह से प्रगट करते हैं ॥४६॥ पापियों के दोषों को गुण समझ उनका वर्णन करते हैं और निर्गुणी लोग इस कलियुग में केवल दोष को ही ग्रहण करते हैं, जैसे स्तन में लगी हुई जोंक केवल रुधिर का ही पान

वै० मा० २३१ मा० टी० अ० २२

करती है, सब औषधी प्रभाव हीन होगई हैं, ऋतुओं में विपरीतता आगई है ॥४७-४८॥ राज्य भर में घोर दुर्भिक्ष पड़ते हैं,कन्याओं से गर्भ की उत्पत्ति होती है, कलियुग में सब मनुष्य नट और नर्तकों से प्रेम रखते हैं ॥४९॥ जो वेद और वेदान्त के ज्ञाता हैं उन्हें मूढ लोग सेवक मानते हैं, ये मूढ सब आचारादि से भ्रष्ट हो ॥५०॥ श्राद्धादि सब कर्म और वेदोक्त

स्तनसंयुक्तो रक्तं पिबति नो पयः । ओषध्यः सत्त्वहीना हि ऋतूनां व्यत्ययस्था ॥४८॥ दुर्भिक्षं सर्वराष्ट्रेषु कन्याकालेन सूयते । नटनर्तकविद्यासु प्रीतिमन्तो नराः कलौ ॥४९॥ वेदवेदान्तविद्यासु निरता ये गुणाधिकाः । भृत्यान्पश्यन्ति तान्मूढास्ते भ्रष्टाश्चाखिलाशिषः ॥५०॥ त्यक्तश्राद्धक्रियाः सर्वे त्यक्तवेदादितक्रियाः । जिह्वायां विष्णुनामानि न वर्तन्ते कदाचन ॥५१॥ शृङ्गाररसनिर्वाणास्तद्गीतान्येव ते जगुः । न विष्णुसेवा न च शास्त्रवार्ता न योगदीक्षा न विचारलेशः ॥५२॥ न तीर्थयात्रा न च दानधर्माः कलौ जने क्वापि बभूव चित्रम् । तान्दृष्ट्वा धर्मवर्णोऽपि सुभीतोऽ-

सब कर्म का परित्याग कर बैठे हैं,उनकी जिह्वा पर कभी विष्णु का नाम भी नहीं आता है ॥५१॥ सदा शृंगार रस के गीत गाते हैं,जिन्होंने न विष्णु की सेवा की है न शास्त्र की चर्चा और न योग की दीक्षा ली है, उनमें विचार का तो लेशमात्र भी नहीं है ॥५२॥ न तीर्थ यात्रा करते हैं न दान धर्म कलियुग के मनुष्यों की ऐसी विचित्र दशा देखकर वर्ण धर्म बहुत भय भीत और चकित होगया है ।५३॥ ... संपूर्ण लोकों में घूमता आश्चर्य

युक्त हो पितृ लोक को गया वहां अपने पितृगणों को बड़े बड़े घोर कर्मों द्वारा भ्रमण करते हुए, दौड़ते रोते और गिरते हुये तथा अन्ध कूप में पड़े हुए देखता है ॥५४-५६॥ उनमें कोई एक दूब के ही सहारे खड़े हैं और दूब के उखडने अथवा टूटने के डर से शंकित हो रहे हैं और उनको आश्रय देने वाली उस दूब की जड़ को चूहे कतरते हैं ॥५७॥ उस दूब के तीन भाग

त्यन्तविस्मितः ॥५३॥ वंशं पापात्क्षयं यातं दृष्ट्वा द्वीपान्तरं ययौ । सञ्चरन् सर्वद्वीपेषु लोकेष्वेव तु सर्वशः ॥५४॥ पितृलोकं ययौ धीमान् कदाचित्कौतुकान्वितः । तत्रापश्यन्महाघोरान् भ्राम्यमाणांश्च कर्मभिः ॥५५॥ धावतो रुदमानांश्च पततः पातितानपि । तत्रापश्यच्चांधकूपे पतितान् स्वान् पितृनधः ॥५६॥ दूर्वाग्रलम्बिनो दीनान् दूर्वाच्छेदे हि शङ्किताः । तदाखुः खादयत्यद्धा दूर्वामूलं तदाश्रयम् ॥५७॥ तेन भागत्रयं चात्तमेको भागोऽवशेषितः । तं दृष्ट्वा ते क्षीयमाणं मूलं दुःखेन कर्शिताः ॥५८॥ अधो दृष्ट्वा चान्धकूपं तटपातादिभीषणम् । दुरुत्तारं महाघोरं कर्मणाप्तं सुदुःखिताः ॥५९॥ अग्रे चापि दुरुत्तारमवलम्बविवर्जितम् । तान् दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा दयालुर्वाक्यमब्रवीत्

तो चूहे ने कतर दिये अब एक शेष है उसे वे दुःख से कर्षित हो रहे हैं ॥५८॥ कोई नीचे अन्ध कूप में पड़े हैं जो अत्यन्त भयङ्कर, दुर्गम और महाघोर हैं, जिसमें कर्म से अभिभूत दुःखी होकर पड़े हैं ॥५९॥ यह कूप आगे और भी दुर्गम है जिस में किसी प्रकार का सहारा नहीं है, उन्हें देख बहुत विस्मित हुआ और दयालु होकर बोला ॥६०॥ तुम कौन हो, तुमने ऐसे

कौन से घोर दुष्कर्म किये, जिनसे तुम यहां पड़े हो, तुम किस गोत्र में उत्पन्न हुए हो, और तुम्हारा उद्धार कैसे होगा ।६१। यह तुम सब मेरे सामने कहो, तुम्हारा आज ही कल्याण हो जायगा, उसके ऐसे वाक्य सुन दुःख से व्याकुल पित्रीश्वर प्रसन्न हो धर्म और वेद को आगे कर के दीन वाणी से कहने लगे, हम श्रीवत्स गोत्री हैं हमारे सन्तान नहीं है इस लिये

॥६०॥ के यूयं पतिता ह्यस्मिन् केन दुस्तरकर्मणा । कस्य गोत्रे समुत्पन्नाः कथं वो मुक्तिरूर्जिता ॥६१॥ एतद्यूयं वदध्वं मे शर्म वोऽद्य भविष्यति । इत्येवमुदितास्ते पितरोऽथ सुदुःखिताः । तमूचुः करुणां वाचं धर्मश्रुतिपुरःसरा ॥६२॥ पितर ऊचुः ॥ वयं श्रीवत्सगोत्रीया भुवि सन्तान-वर्जिताः ॥६३॥ पिण्डश्राद्धविहीनाश्च तेन पच्यामहे वयम् । निःसन्तोऽपि नो वंशो जातः पापैः कलौ युगे ॥६४॥ नास्माकं पिण्डदश्चास्ति वंशे पापात्क्षयं गते । तेनान्धकूपे पतनं निस्तूनां दुरात्ममाम् ॥६५॥ एको हि वर्तते वंशे धर्मवर्णो महायशाः । स विरक्तश्चरन्नेको न गार्हस्थ्यमुपेयि-

कोई हमारे पिण्डदान और श्राद्धादिक नहीं करते हैं इस से हम यह दुःख भोग रहे हैं कलियुग में पापों के कारण हमारा वन्श निःसन्तान होगया ॥६२-६४॥ हमारा वंश पाप से क्षीण है जिससे हमारे लिये कोई पिण्ड देने वाला नहींहै इसी से हम दुरात्मा अन्ध कूप में पड़े हैं ॥६५॥ हमारे कुल में एक धर्म वर्णा ही बड़ा यशस्वी है, वह सबको छोड़ अकेला ही विचरताहै उसने गृहस्थी धारण नहीं की ॥६६॥ वही दूर्वाका तंतुरूपहै जिसे पकड़ कर हम लोग लटक रहेहैं वह तंतुहीन

विचरता है उसने गृहस्थी धारण नहीं की ॥६६॥ वही दूर्वा का वंतुरूप है जिसे पकड़ कर हम लोग लटक रहे हैं

है इसी से उसकी जड़ को नित्य चूहा भक्षण करता है ॥६७॥ वह केवल एक ही शेष रहा है इसी से थोड़ी सी जड़ बची है
देखो उसे भी मूषक भक्षण करते हैं ॥६७॥ धर्म वर्ण की आयु क्षीण होने पर दूर्वा के शेष भाग को मूषक भक्षण कर लेगा
और हम इस अंधतामिस्रा दुर्गम कूप में गिर पड़ेंगे ॥६९॥ इससे हे तात ! तुम पृथ्वी पर जाकर धर्म वर्ण (गृहस्थी से विमुख

वै० मा० २३५

वाच ॥६६॥ तन्तुना तेन बभ्रामो दूर्वानालावलम्बिताः । निस्तन्तुत्वाच्च तन्मूलमाखुः खादति प्रत्यहम् ॥६७॥ एकस्यैवावशिष्टत्वात किंचिन्मूलावशेषितः । आखुना खाद्यमानश्च वर्तते सौम्य पश्यताम् ॥६८॥ तस्य चायुःक्षये तात शेषमाखुर्हरिष्यति । पश्चात्कूपे पतिष्यामो दुरुत्तारेऽन्धतामसे ॥६९॥ तस्मात्त्वं च भुवं गत्वा धर्मवर्णं प्रबोधय । अस्मद्वाक्यैर्दयापात्रैर्गार्हस्थ्ये विमुखं मुनिम् ॥७०॥ पितरस्ते भृशार्ता हि नरके पतिता मया । अन्धकूपे दुरुत्तारे दृष्टा दूर्वावलम्बिताः ॥७१॥ सा दूर्वा वंशरूपा हि तन्मूलं सततं मुने । कालाख्यो मूषकस्तस्य मूलं खादति प्रत्यहम् ॥७२॥ वंशनाशोऽनुक्रमत एकस्त्वं त्ववशेषितः । तेन मूलस्य दूर्वाया नष्टं भागत्रयं मुने ॥७३॥ एको भागोऽवशिष्टोऽत्र

अ०१० टी० अ० २२

उस मुनि) को हमारी दीनता दिखाकर समझाओ कि ॥७०॥ तेरे पित्रीश्वर दुःख से पीडित दुर्गम अंधकूप नरक में पड़े मैंने
देखे हैं, वे केवल एक दूब के सहारे लटक रहे हैं ॥७१॥ हे मुने ! यही वन्श रूपी दूब है इसकी जड़ों को काल रूपी मूषक
प्रति दिन भक्षण करते हैं ॥७२॥ इस प्रकार क्रम से सब वन्श क्षीण हो गया है केवल एक तू ही शेष है इस से दूब के

तीन भाग नष्ट हो गये हैं ॥७३॥ जो तू पृथ्वी पर बचा है वही एक भाग शेष रहा है उस में से भी प्रति दिन थोड़ा थोड़ा चूहा भक्षण करता है जिससे तेरी आयु प्रति दिन क्षीण हो रही है ॥७४॥ तेरे मरने पर और सन्तान न होने पर हम और तू सब अंधतामिस्र कूप में पड़ेंगे ॥७५॥ इस लिये गृहस्थी धर्म ग्रहण कर के सन्तान वृद्धि कर इससे तुझको और हमको

यतस्त्वं वर्तसे भुवि । किंचित्खादति वै त्वाखुस्तव चायुः क्षयः क्रमात् ॥७४॥ परेते त्वयि चास्माकं तवापि पतनं भवेत् । कूप एवान्धतामिस्रे सन्तानेऽपि क्षयं गते ॥७५॥ तस्माद्गार्हस्थ्यमासाद्य कुरु सन्ततिवर्द्धनम् । तेनास्माकं तवापि स्याद्गतिरूर्ध्वा न संशयः ॥७६॥ एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् । यजेत् वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥७७॥ यद्येकोऽपि च वैशाखे माघे वा कार्तिकेऽपि वा । अस्मानुद्दिश्य वै स्नानं श्राद्धं दानं करिष्यति ॥७८॥ तेन चोर्ध्वगतिर्भूयान्नर-कादुद्धृतिश्च नः । एको वा विष्णुभक्तः स्यादेकः स्याद्धरिवासरो ॥७९॥ एको वा शृणुयाद्विष्णोः

उर्ध्वगति प्राप्त होगी ॥७६॥ इस लिये बहुत से पुत्रों की इच्छा करनी चाहिये क्योंकि यदि उनमें से एक भी गया को गया या अश्वमेध यज्ञ करे अथवा नीलेरंग का सांड छोड़े ॥७७॥ यदि कोई वैशाख माघ व कार्तिक में स्नान दान करे तो ।७८। निश्चय ही हमको उर्ध्वगति मिलेगी और नरकोंसे उद्धार होगा या कोई एक विष्णु भक्त हो अथवा या कोई एक भी एकादशी व्रत करे या पापों के नाश करने वाली विष्णु कथा सुने तो उसकी सौ पीढ़ी की और सौ आगे की पीढ़ी आगे की चाहे पापा-

चारी ही हो तो भी नरक का दर्शन नहीं करेगी दया और धर्म से हीन अनेक पुत्रों से क्या है ।।७८—८१।। जो कुल में उत्पन्न हो विष्णु भगवान की पूजा नहीं करते हैं उन पुत्र हीनों के लिये यह लोक कुछ भी नहीं है ।।८२।। इस पर भी दया युक्त संतान दुर्लभ है तुम ऐसे सत्य वाक्यों से समझा कर विरक्त और उर्ध्वरेता धर्मवर्ण को गृहस्थ धर्म में प्रवृत्त करो ।।८३।।

वै० मा० २७

कथां पापविनाशिनीम् । तस्यातीतं कुलशतं भावि चापि कुलं शतम् ।।८०।। अपि पापवृतं क्वापि नरकं नैव पश्यति । किमन्यैर्बहुभिः पुत्रैर्दयाधर्मविवर्जितैः ।।८१।। ये जीवा नार्चयन्त्यद्धा विष्णुं नारायणं कुले । नापुत्रस्य हि लोकोऽस्ति सर्वमेतज्जना विदुः ।।८२।। तत्रापि च दयायुक्तं तत्सन्तानं च दुर्लभम् । इति तं बोधयित्वा तु वाक्यैरेतैश्च सूनृतैः ।।८३।। विरक्तस्योर्ध्वरेतस्य गार्हस्थ्ये त्वं मतिं कुरु । पितृणां वचनं श्रुत्वा धर्मवर्णोऽतिविस्मितः ।।८४।। प्रणम्य प्राञ्जलिः प्राह रुदन् वै जातवेपथुः । नाम्नाहं धर्मवर्णश्च युष्मद्वंश्यो दुराग्रही ।।८५।। सत्त्रे श्रुत्वा तु वचनं नारदस्य महात्मनः । जिह्वादाढर्यं गुह्यदाढर्यं न कस्यापि कलौ युगे ।।८६।। दृष्ट्वा भुवि च पापिष्ठांस्तान्

भा० टी० अ० २२

पित्रीश्वरों के ऐसे वचन सुन धर्मवर्ण बड़े अचंभे में पड़ गया ।८४। धर्म वर्ण कांपने लगा और रोता हुआ हाथ जोड़ नमस्कार कर कहने लगा-हे महाराज ! मैं ही दुराग्रही तुम्हारा वंशधर धर्म वर्ण हूँ ।।८५।। मैंने यज्ञ में महात्मा नारदजी के वचन सुने कि कलियुग में किसी की भी जिह्वा और शिश्न वश में नहीं रहते हैं ।।८६।। पृथ्वी पर बहुत से पापी मनुष्यों को देख कुसं-

गति के डर के मारे द्वीपांतरों में विचरता रहा ॥८७॥ इस प्रकार तीन पाद तो बीत गये और हे पितरो इस कलि के अंतिम पाद में भी साढ़े तीन भाग व्यतीत होगये ॥८८॥ मैंने अब तक आपका दुःख नहीं जाना मेरा जीवन वृथा ही गया कि मैं आपके कुल में उत्पन्न हुआ और आपका ऋण दूर नहीं किया ॥८९॥ तो पृथ्वी भार के रूप, अन्न के शत्रु मेरे जन्म से क्या

जनानापि शङ्कितः । भीतो दुर्जनसङ्गत्या चरन् द्वीपान्तरे वसन् ॥८७॥ पादास्त्रयो गता ह्यस्य कलेः पादेऽन्तिमेऽपि च । गताः सार्द्धत्रयो भागा इदानीं जनका इमे ॥८८॥ नाहं वेद्मि भवद् ुःखं वृथा जन्म गतं मम । यास्मन् कुले त्वहं जात ऋणं पित्रोर्न वै ह्रतम् ॥८९॥ किं तेन जातमात्रेण भूभारेणान्नशत्रुणा । यो जातो नार्चयेद्विष्णुं पितॄन् देवानृषींस्तथा ॥९०॥ युष्मदाज्ञां करिष्यामि मामाज्ञपयत च्चितौ । यथा न कलिबाधा स्यात्तत्र संसारतोऽपि वा ॥९१॥ कर्तव्यान्यपि कृत्यानि मया पुत्रेध भूतले । इत्युक्तास्तेन वंश्येन धर्मवर्णेन धीमता ॥९२॥ किंचिदाश्वस्तमनस इदमूचुर्म-

हुआ जो भगवान विष्णु, पित्रीश्वर, देवता और ऋषियों का पूजन नहीं करता तो उसका जन्म वृथा है ॥९०॥ मैं अब आपकी आज्ञा का पालन करूंगा परन्तु यह आशिर्वाद दो कि पृथ्वी पर संसारी कर्त्तव्य करने पर भी मुझे कलियुग की बाधा न हो, जब बुद्धिमान् धर्म वर्ण ने ऐसा कहा तब ॥९१-९२॥ हे राजन् ! मन में कुछ सन्तोष कर पित्रीश्वर बोले—हे पुत्र ! तू अपने महात्मा पितरों की यह दशा देख ॥९३॥ वे संतान के अभाव से गिर रहे हैं केवल एक तृण के सहारे ठहरे हुए हैं अतः तू

गृहस्थ धर्म में प्रवृत्त हो संतान उत्पन्न करके हमारा उद्धार कर ॥६४॥ क्योंकि जो विष्णु भगवान की कथा में तत्पर हैं जो रात्रि दिन हरि स्मरण करते हैं तथा सदाचार में निरत हैं उनको कलियुग बाधा नहीं देता है ॥६५॥ हे मानद ! जिसके घर में शालिग्राम की मूर्ति है अथवा महाभारत है उसे कलियुग बाधा नहीं पहुंचाता ॥६६॥ जिसके उदर में विष्णु भगवान का

हीयते । पुत्र पश्य दशामेतां पितॄणां ते महात्मनाम् ॥६३॥ सन्तत्यभावात्पततां दूर्वामात्रावलम्बिनाम् । त्वं गार्हस्थ्यमुपालभ्य संतत्यास्मान् समुद्धर ॥६४॥ ये च विष्णुकथारक्ता ये स्मरन्त्यनिशं हरिम् । ये सदाचारनिरता न तान् वै बाधते कलिः ॥६५॥ शालिग्रामशिला यस्य गृहे तिष्ठति मानद । अथवा भारतं गेहे न तं वै बाधते कलिः ॥६६॥ विष्णोर्निवेदितान्नं च वर्तते यस्य चोदरे । कर्णे वा तुलसीपत्रं न तं वै बाधते कलिः ॥६७॥ यत्करे तुलसीमाला यद्धस्ते च पवित्रकम् । यज्जिह्वायां हरेर्नाम न तं वै बाधते कलिः ॥ ६८ ॥ यश्च वैशाखनिरतो माघस्नानपरश्च यः । कार्तिके दीपदाता यो न त वै बाधते कलिः ॥६९॥ प्रत्यहं

निवेदन किया हुआ अन्न और कान में तुलसी पात्र है, उसे कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता है ॥६७॥ जिसके हाथ में तुलसी की माला, जिह्वा पर हरि नाम है उसे कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता है ॥६८॥ जो वैशाख और माघ में स्नान करते हैं, कार्तिक में दीपक जलाते हैं उन्हें कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता है ॥६९॥ जो विष्णु भगवान की कथा नित्य प्रति सुनता है जो पाप

नाशिनी मोक्ष देने वाली और दिव्य है, उसे कलियुग बाधा नहीं पहुंचाता है ॥१००॥ जिसके घर में वैश्वदेव होता है जिनके आंगन में सुन्दर तुलसी है शुभ गौ है उसे कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता है ॥१०१॥ हे पुत्र! इस लिये तू पापात्मक युग की चिन्ता मत कर, शीघ्र घर जा यह माधव मास है ॥१०२॥ सब के उपकार के लिये मेष की संक्रान्ति की ये तीस तिथियां

शृणु याद्यास्तु कथां विष्णोर्महात्मनः। पापघ्नी मोक्षदां दिव्यां न तं वै बाधते कलिः। १००। यद्गृहे वैश्वदेवश्च यद्गृहे तुलसी शुभा यदङ्गणे शुभागौश्च न तं वै बाधते कलिः॥१०१॥ तस्मान्मा वस पुत्र त्वं युगे पापात्मकेऽपि च शीघ्रं गच्छ भुवं पुत्र मासोऽयं माधवाह्वयः॥१०२॥ सर्वेषामुपकाराय मेषसंस्थे दिवाकरे। त्रिंशच्च तिथयः पुण्या महापुण्यप्रदायकाः ॥१०३॥ एकैकस्यां कृत पुण्यं कोटिकोटिगुणं भवेत्। तत्रापि चैत्रबहुलो दर्शो नृणां च मुक्तिदः ॥१०४॥ प्रियश्च पितृदेवानां सद्यो मुक्तिविधायकः। ये वै पितृन् समुद्दिश्य श्राद्धं कुर्वन्ति तद्दिने ॥१०५॥ सोदकुम्भं पिण्डदानं तदक्षय्यफलं भवेत। ये च कुर्वन्ति वै श्राद्धममायां च मधौ सुत ॥१०६॥ तैः कृतं तु गयाक्षेत्रे श्राद्धं कोटिगुणं भवेत्। यदि श्राद्धं मधौ

बड़ी उत्तम हैं। इन में जो पुण्य किया जाता है उनका बहुत सा फल मिलता है ॥ १०३ ॥ एक तिथि में जो पुण्य किया जाता है उसका करोड़ गुना फल मिलता है। इन में भी चैत्र की अमावस्या तो साक्षात् मुक्ति दायिनी है॥१०४॥ यह पितृगण और देवताओं की प्यारी तत्काल मुक्ति की देने वाली हैं इस दिन जो पित्रीश्वरों के निमित्त श्राद्धादि करते हैं ॥१०५॥

जलका घड़ा या पिंडदान कर उन्हें अक्षय फल मिलताहै जो चैत्र मास में गया में जाकर श्राद्ध करतेहैं उनको कोटि श्राद्ध करनेसे
श्राद्धों के समान होताहै जो मधुमास की अमावस्या के दिन शाक से भी श्राद्ध करतेहैं उनको गया में कोटि श्राद्ध करने का फल मिलताहै इस में सन्देह नहीं। जल से भरा घट, जिस में कपूर और अगरु की वासना ॥१०६-१०८॥ ऐसा घट दान

दर्शे शाकेनापि करोति च॥१०७॥ कोटिश्राद्धं गयायां तु कृतं तेन न संशयः। कुम्भं च पानकैः पूर्णं कर्पूरागरुवासितम् ॥१०८॥ यो न दद्यान्मधौ दर्शे स पितृघ्नो न संशयः। यो दद्याच्च मधौ दर्शे सपानीयं करीरम् ॥१०९॥ श्राद्धं च भक्तिसंयुक्तः कुरुते च कुलोद्धृत्तिम्। पितृणां च तदा लोके नदी चामृतवर्षिणी ॥११०॥ कुम्भदानात्प्रसरति श्राद्धदानादिदायिनी। अन्नसूपघृतापूपलेह्यपायसकर्दमान् ॥१११॥ तस्माज्झटितित्वं गच्छ यदा चामा भविष्यति। कुरु श्राद्धं पिण्डदानं सोदकुम्भं महामते ॥११२॥ सर्वेषामुपकाराय गार्हस्थ्यं च समाश्रय। धर्मार्थकामैः सन्तुष्टः प्राप्य सन्तान-

जो मधुमास की अमावस्या को न करे, वह पितृ घाती होताहै इसमें सन्देह नहीं। जो मधुमास में पानी सहित करीर का दान करे ॥१०९॥ और भक्ति पूर्वक श्राद्ध करे वह अपने कुलका उद्धार करता है पितृ लोक में कुंभ दान से अमृत की नदी बहतीहै जो श्राद्ध दान के देंने वालीहै अन्न, दाल, घृत, अपूप, लेह्य,खीर आदि का प्रसार करते हैं ॥११०॥१११॥ अतएव तू अमावस्या से पहिले शीघ्र जा और श्राद्ध, पिंडदान तथा घट दान कर॥ ११२॥ तथा सबके उपकार के लिये

गृहस्थी बन कर फिर धर्म, अर्थ और काम से सन्तुष्ट हो उत्तम सन्तान प्राप्त कर पीछे मुनि की वृत्ति धारण कर सुख पूर्वक द्वीपों में विचरना जब पित्रीश्वरों ने ऐसी आज्ञा दी तब धर्म वर्ण शीघ्र ही पृथ्वी पर आया ११३-११४॥ और चैत्र मास में मेष की संक्रान्ति के दिन प्रातःकाल स्नान कर पित्रीश्वर, देवता और ऋषियों का तर्पण कर ॥११५॥ जल भरा घड़ा और पाप का

मुत्तमम् ॥११३॥ पुनश्च मुनिवृत्तिस्त्वं सुखं द्वीपे सुसञ्चर । इत्यादिष्टः पितृभिश्च तूर्णं भूमिं ययौ मुनिः ॥११४॥ चैत्रे मासि मेषसंस्थे पुण्ये तस्मिन् दिवाकरे । प्रातः स्नात्वा संतर्प्य पितृन् देवा-नृषींस्तथा ॥११५॥ सोदकुम्भं तथा श्राद्धं कृत्वा पापविनाशनम् । तेन पितृणां च मुक्तिक्रमम् वृत्तिवर्जिताम् ॥११६॥ स्वयं विवाहमकरोत्संततिं प्राप्य वै सतीम् । लोके प्रख्यापयामास तां तिथिं पापनाशिनीम् ॥११७॥ स्वयं पुनर्मुदा भक्त्या गन्धमादनमाययौ । तस्मात्पुण्यतमश्चैष मधोर्दर्शः

नाश करने वाला श्राद्ध करके अपने पितृवर्ग को ऐसी मुक्ति दी जिससे आवागमन छूट जाय ॥११६॥ फि अपना विवाह किया जिससे सुन्दर सन्तान हुई और सन्सार में इस पाप नाशिनी तिथि को प्रख्यात किया ॥११७॥ तत्पश्चात् स्वयं प्रसन्न हो गंधमादन पर गया इस लिये यह मधुमास की अमावस्या बड़ी शुभ है ॥११८॥ इसके समान सन्सार में कोई तिथि न देखी है न सुनी है ॥ ११९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाख माहात्म्ये ... कलिधर्मनिरूपणं पितृमुक्तिर्नाम

हो गंधमादन पर गया इस लिये यह मधुमास की अमावस्या बड़ी शुभ है ॥ ११८ ॥ इसके समान संसार में कोई तिथि न देखी है न सुनी है ॥ ११९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाख महात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे कलिधर्मनिरूपणे पितृमुक्तिनाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

श्री श्रुतदेवजी बोले अब मैं इस पाप नाशक माहात्म्य का वर्णन करता हूँ, माधव मास में शुक्लपक्ष की अक्षय तृतीया के

शुभावहः ॥११८॥ नानेन सदृशी लोके तिथिर्दृष्टा श्रुतापि वा ॥११९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे कलिधर्मनिरूपणे पितृमुक्तिर्नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

श्रुतदेव उवाच॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि माहात्म्यं पापनाशनम् । अक्षय्यायास्तृतीयायाः सिते पक्षे च माधवे ॥१॥ ये कुर्वन्ति च तस्यां वै प्रातः स्नानं भगोदये । ते सर्वे पापनिर्मुक्ता यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥२॥ देवान् पितृन्मुनीन् यस्तु कुर्यादुद्दिश्य तर्पणम् । तेनाधीतं च तेनेष्टं तेन श्राद्धशतं कृतम् ॥३॥ मधुसूदनमभ्यर्च्य कथां शृण्वन्ति ये नराः । अक्षय्यायां तृतीयायां ते नरा मुक्तिभोगिनः ॥४॥ ये दानं तत्र कुर्वन्ति मधुद्विट्प्रीतये शुभम् । तदक्षय्यं फलत्येव मधुशासन-

दिन जो सूर्योदय में प्रातःकाल स्नान करते हैं वे सम्पूर्ण पापों से छूटकर विष्णु लोक को जाते हैं ॥१॥२॥ जो देवता पितृश्वर और ऋषियों के निमित्त तर्पण करे उसने सम्पूर्ण वेदादि शास्त्र पढ़ लिये सब यज्ञ कर लिये,और सौ श्राद्ध कर लिये ॥३॥ जो मधुसूदन भगवान का पूजन कर अक्षय तृतीया के दिन, कथा सुनते हैं, वे मुक्ति पाते हैं ॥४॥ जो मधुसूदन भग-

वान् की प्रसन्नता के लिये दान करते हैं वे मधुसूदन भगवान की आज्ञा से अक्षय फल देने वाले होते हैं ॥५॥ यह तिथि देवता ऋषि पित्रीश्वरों की है इसमें सनातन धर्म करने पर देवता पित्रीश्वर और ऋषियों की तृप्ति होती है ॥६॥ इस तिथि की प्रख्याति कैसे हुई वह भी मैं बताता हूँ हे राजन् ! तू सावधान होकर सुन ॥७॥ प्राचीन समय में राजा बलि के सङ्ग इन्द्र का युद्ध हुआ और देवता और दैत्यों का भी आपस में द्वन्द्व युद्ध हुआ ॥८॥ इन्द्र पातालवासी बलि को जीतकर फिर

वै० मा० २४४

शासनात् ॥५॥ देवर्षिपितृदैवत्या तिथिरेषां महाशुभा । त्रयाणां तृप्तिदात्री च कृते धर्मे सनातने ॥६॥ प्रख्यातिश्च तिथेरस्याः केन चासीत्तदप्यहम् । वक्ष्यामि नृपशार्दूल सावधानमनाः शृणु ॥७॥ पुरा पुरन्दरस्यासीद्युद्धं च बलिना सह । देवानां चैव दैत्यानां द्वंद्वयुद्धमभूत्ततः ॥८॥ स निर्जित्य बलिं दैत्यं पातालतलवासिनम् । पुनर्भुवं समासाद्य चोतथ्यस्याश्रमं ययौ ॥९॥ तत्रापश्यच्च तत्पत्नीं गुर्विणीं मन्दगामिनीम् । चलच्छ्रोणितटाबद्धकाञ्चीदाम्ना सुमण्डिताम् ॥१०॥ क्वणत्कङ्कण-निर्घोषजितमत्तालिकोकिलाम् । वल्गुचित्राम्बरां रामां मञ्जुवाचा शुचिस्मिताम् ॥११॥ लसत्कुम्भ-

भा० टी० अ० २

पृथ्वी पर उतथ्य के आश्रम में गया ॥९॥ वहां जाकर उसकी मन्द गामिनी गर्भिणी पत्नी को देखा, जिसकी कमर में सुवर्ण सूत्र में बद्ध किंकिणी शोभा दे रही थी ॥१०॥ उसके कंकणों की झनकार ने मदोन्मत्त भ्रमर और कोकिलाओं के शब्दों को जीत लिया था । अनेक प्रकार के वस्त्र धारण किए वह मधुर भाषिनी और मन्द मन्द हास्य युक्ता शोभा दे रही थी ॥११॥

उसके कुंभ सदृश पीन कुचों से अपूर्व शोभा हो रही थी । विकसित कमल के समान उसका मुख और नीलकमल समान

जात किया था। अनेक प्रकार के वस्त्र धारण किये वह मधुर भावना और मन्द मन्द हास्य युक्त शोभा दे रही थी ॥११॥

उसके कुम्भ सदृश पीना कुचों से अपूर्व शोभा हो रही थी। विकसित कमल के समान उसका मुख और नील कमल समान नेत्र थे ॥१२॥ केतकी के उदर के समान पीत और मनोहर गालों वाली परिश्रम से श्वांस भरती हुई दीनाक्षी पर्ण कुटी की ओर मुख किये थी ॥१३॥ उसे पर्यंक पर शयन करती हुई देख इन्द्र को मोह उत्पन्न हुआ और वह बल पूर्वक उस गर्भिणी

स्थलाभ्यां च कुचाभ्यामुपशोभितम् । हसत्पद्ममुखां दिव्यां नीलोत्पलसुलोचनाम् ॥१२॥ केतक्यु-
दरपाण्डुभ्यां गण्डाभ्यां च मनोरमाम् । श्रमोच्छ्वसन्तीं दीनाक्षीं पर्णशालामुखे स्थिताम् ॥१३॥
स्वपन्तीं शयने क्वापि तां दृष्ट्वा मोहमागतः । बलात्कारेण बुभुजे गुर्विणीं पाकशासनः ॥१४॥
गर्भस्थस्तु तदा पिण्डः स्वस्य पातविशङ्कया । छादयामास वै योनिद्वारं पादेन दुःखितः ॥१५॥
ततश्चस्कन्द वीर्यं तद्भूमामेव बलद्विषः । गर्भस्थाय चुकोपासौ भगवान् पाकशासनः ॥१६॥ तं
शशाप च गर्भस्थं रुषा ताम्रान्तलोचनः । जात्यन्धो भव दुर्बुद्धे मावमंस्था यतः पदा ॥१७॥

स्त्री से भोग करने लगा ॥१४॥ तब गर्भस्थ पिंड ने अपने गिरने के भय से दुःखी होकर अपने पांव से योनि मार्ग को ढक दिया ॥१५॥ जिससे इन्द्र का वीर्य पृथ्वी पर ही गिर पड़ा तब गर्भस्थ शिशु पर इन्द्र को महा क्रोध हुआ ॥१६॥ और रोष के मारे तांबे जैसे लाल नेत्र करके शाप दिया कि हे दुर्बुद्धे! तूने पांव से योनि द्वार को रोका है इससे तू जन्मांध हो, तब दीर्घतमाह्व पांवों से वीर्य संचालन से जयन्त के समान हुआ ॥१७-१८॥ इन्द्र ऋषि के शाप के भय से शीघ्र ही भागा।

उसे भागते हुए देख संपूर्ण शिष्य हंसने लगे ॥१६॥ तब वह लज्जा के मारे पहाड़ की कन्दरा में जा घुसा और वहां बैठकर उग्र तप करने लगा ॥२०॥ जब इन्द्र लज्जा के मारे कन्दरा में जा घुसा तो राजा बलि और उसके साथी दैत्यगण गुप्त दूतों द्वारा भेद लेकर ॥२१॥ देवताओं पर आक्रमण करके अमरावती पुरी दिक्पालों की विभूति और शंबरादि तथा स्वामी रहित

प्रच्छाद्य योनिद्वारं च ततो दीर्घतमाह्वयः । पदा प्रस्कन्दिन्ताद्वीर्याज्जयन्तेन समोऽभवत् ॥१८॥
पश्चादिन्द्रो ययौ शीघ्रमृषेः शापविशङ्कितः । पलायन्तं हरिं दृष्ट्वा जहसुर्बटवोऽखिलाः ॥१६॥
ततस्तु व्रीडितो भूत्वा ययौ मेरोर्गुहां शुभाम् । तत्र लीनश्चचारासौ दुस्तरं वै तपो महत् ॥२०॥
मेरौ विलीय वसति देवेन्द्रे लज्जयान्विते । गूढैर्विज्ञाय तां वार्तां दैतेया बलिपूर्वकाः ॥२१॥
सुरानाक्रम्य बुभुजुर्बलीन्द्राश्चामरावतीम् । दिक्पालानां विभूतीश्च शम्बराद्या बलीयसः ॥२२॥
बलाद्बुभुजिरे हीननाथराष्ट्रं दिवौकसाम् । रक्षितारमजानन्तो देवाश्चाग्निपुरोगमाः ॥२३॥ गत्वा
तु धिषणं देवं देवाचार्यमकल्मषम् । पप्रच्छुरिन्द्रवृत्तान्तं क्व च तिष्ठति नः प्रभुः ॥२४॥ दैत्या-

देवताओं के राज्य का बलपूर्वक भोग करने लगे तो अग्नि आदि सब देवता अपने रक्षक को न देख बृहस्पति के पास जा इन्द्र का वृत्तान्त पूछने लगे कि हमारा स्वामी कहां है ॥२२-२४॥ स्वामी के विना हमारे राज्य पर दैत्यों ने आक्रमण किया है हे विभो ! बहुत दिन बीत गये, इन्द्र क्यों नहीं आते हैं ॥२५॥ हे महाराज ! हमें बताओ, जहां इन्द्र हो हम वहीं जाकर

हे विभो ! बहुत दिन बीत गये, इन्द्र क्यों नहीं आते हैं ॥२५॥ हे महाराज ! हम बताओ, जहां इन्द्र हो हम वहां जाकर
प्रार्थना करें । इस प्रकार जब देवताओं ने पूछा तब बृहस्पति बोले ॥२६॥ रसातल में बलिको जीतकर इन्द्र उतथ्य के आश्रम में गया और वहां जा उतथ्य की स्त्री से बल पूर्वक संभोग किया इस पर उसके शिष्यों ने बड़ी निन्दा की ॥२७॥ इससे लज्जा के मारे वह स्वर्ग में नहीं आया और पर्वत की गुफा में घुस गया । वहीं पर शची सहित निवास करता है और अपने किये

क्रान्तमिदं राष्ट्रं हीनाथं दिवौकसाम् । कुतो नायाति देवोऽसौ भूयान् कालो गतो विभो ॥२५॥
तं यामो यत्र मघवा प्रार्थयामश्च तं विभुम् । इति पृष्टस्तदा देवैर्धिषणस्तानुवाच ह ॥२६॥ रसा-
तले बलिं जित्वा चोतथ्यस्याश्रमं ययौ । भुक्त्वा पत्नीं च धाष्टर्येन तच्छिष्यैरेव निन्दितः ॥२७॥
व्रीडितस्तु दिवं यातुं गुहां मेरोर्विवेश ह । तत्रैवास्ते शचीयुक्तः स्वकृतं चिन्तयन्विभुः ॥२८॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा देवा अग्निपुरागमाः । गुहां मेरोर्ययुः शीघ्रं दृष्ट्वा प्रार्थयितुं विभुम् ॥२९॥
तत्र दृष्ट्वा गुहालीनं देवेन्द्रं पाकशासनम् । तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैस्तद्वीर्यैर्लोकविश्रुतैः ॥३०॥ इन्द्र
तुभ्यं नमस्तेऽस्तु सर्वदेवाधिपाय ते । वयं दैत्यैरर्दिताश्च त्वया हीना भृशार्दिताः ॥३१॥ स्थान-

हुए कर्म पर चिन्ता कर रहा है ॥२८॥ बृहस्पति के ऐसे वाक्यों को सुन कर अग्नि आदि सब देवता इन्द्र को ढूँढ़ने और प्रार्थना करने के लिये मेरु पर्वत की कन्दरा में पहुंचे ॥ २९ ॥ कन्दरा में बैठे हुए इन्द्र को देख उसके बल वीर्य का प्रकाश करने वाले लोकविख्यात स्तोत्रों से उसे प्रसन्न करने लगे ॥३०॥ हे इन्द्र ! हे सब देवताओं के स्वामी ! तुमको नम-

स्कार है तुम्हारे बिना हमको दैत्यों ने बड़ा क्लेश दिया है ॥३१॥ जिससे हम स्थान भ्रष्ट होकर दुःख के मारे जगह जगह घूम रहे हैं अतः तुम चलकर शत्रुओं का दमन करो ॥३२॥ ऐसी स्तुति सुन इन्द्र गुफा से बाहर आया, लज्जा के मारे नेत्र पृथ्वी की ओर कर कमर झुका कर देखने लगा ॥३३॥ दुःख के मारे कंठ भर आया जिससे मुखसे कुछ भी न कह सका यह

भ्रष्टाश्चरामोऽङ्ग नानादेशेषु दुःखिताः । तस्मादागत्य देवेन्द्र जहि शत्रूनरिन्दम ॥ ३२ ॥ इति स्तुतस्तदा देवैर्निश्चक्राम गुहामुखात् । लज्जयावनतो भूत्वा पश्यन् भूमिं च चक्षुषा ॥ ३३ ॥ किञ्चिदपि चोवाच दुःखाद्गद्गदभाष । तज्ज्ञात्वा धिषणः प्राह तं सुरेन्द्रं भयानतम् ॥३४॥ मा शङ्कां ते सुरपते कर्माधीनमिदं जगत् । मानामानौ सुखं दुःखं लाभालाभौ जयाजयौ ॥३५॥ पूर्वकर्मानुरोधेन भवन्त्येव न संशयः । जीवः कर्मानुगो दुःखं दिष्टं दैवेन कालतः ॥३६॥ प्राज्ञाः प्राप्य न शोचन्ति न प्रहृष्यन्ति वै सुखात् । तस्मात्प्रारब्धतः प्राप्तं दुःखं चेदं तव प्रभो ॥३७॥ तत्प्राप्य

दशा देख बृहस्पति जी बोले ॥३४॥ हे इन्द्र ! तू शङ्का क्यों करता है सम्पूर्ण जगत् कर्माधीन है । मान, अपमान, सुख, दुख, लाभ, हानि, हार, जीत ॥३५॥ सब पूर्वजन्मार्जित कर्मों के अनुरोध से होता हैं प्राणी कर्मों के अनुसार चलते हैं दैवयोग से काल पाकर दुःख अपने आप उपस्थित होता है ॥३६॥ बुद्धिमान् मनुष्य दुःख पड़ने पर कुछ चिन्ता नहीं करते हैं और सुख से प्रसन्न नहीं होते हैं इस लिये तुमको यह दुःख प्रारब्ध से ही मिला है ॥३७॥ हे इन्द्र ! इस दुःख को पाकर तुम्हें शोच

से प्रसन्न नहीं होते हैं इस लिये तुमको यह दुःख प्रारब्ध से ही मिला है ॥३७॥ हे इन्द्र ! इस दुःख का सोच करना उचित नहीं । गुरु की बात सुन इन्द्र ने कहा ॥३८॥ हे मानद ! पर स्त्री संग के दोष से मेरा बल, वीर्य, यश, मंत्र-शक्ति, शास्त्रशक्ति, विद्याशक्ति, ॥३९॥ सब नष्ट होगई इन सबको खोकर मैं यहाँ गुप्त निवास कर रहा हूँ इन्द्र की यह बात सुन बृहस्पति सहित ॥४०॥ सब आपस में उसको फिर बल देने का विचार करने लगे । तब बृहस्पतिजी कहने लगे कि मधु-

मघवन् दुःखं नैव शोचितुमर्हसि । इत्युक्तो गुरुणा चाह मघवानमराधिपः ॥३८॥ इन्द्र उवाच ॥ परस्त्रीसङ्गदोषेण बलं वीर्यं यशो मम । मंत्रशक्तिः शास्त्रशक्तिर्विद्याशक्तिश्च मानद ॥३९॥ अभवं नष्टवीर्योऽहं तूष्णीं तेन वसाम्यहम् । पाकशासनवाक्यं तु श्रुत्वा स्वाचार्यसंयुताः ॥४०॥ मन्त्रयामासुरेकान्ते पुनस्तस्य बलाप्तये । तदा गुरुश्चतान् प्राह करुणं च विदुत्तमः ॥४१॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ मासो वैशाखनामायं प्रियो वै मधुघातिनः। सर्वाश्च तिथयः पुण्या मासेऽस्मिन् माधवप्रिये ।४२। तत्रापि च सिते पक्षे तृतीया चाक्षयाह्वया । यस्तस्यां स्नानदानादि श्रद्धया च करोति वै ॥४३॥ तस्य पाप सहस्राणि नश्यन्त्येव न संशयः । अनवद्य तथैश्वर्यं बलं धैर्यं भवन्ति च ॥४४॥ तस्मात्तस्यां

सूदन भगवान के प्रिय वैशाखमास में सभी तिथियां बड़ी पुण्यरूप हैं ॥४१-४२॥ इस में शुक्लपक्ष की तृतीया अक्षयतृतीया है जो इस तिथि में श्रद्धा पूर्वक स्नान दानादि करता है ॥४३॥ निस्सन्देह उसके सहस्रों पाप नष्ट होजाते हैं तथा बल वीर्य और ऐश्वर्य अत्यन्त बढ़ते हैं ॥४४॥ अतएव अक्षयतृतीया के दिन बलि के वैरी इन्द्र द्वारा स्नान दानादि सद्धर्म कराने चाहिये

जिससे उसका हित साधन हो ॥४५॥ जिसके प्रताप से इन्द्र में विद्या और मंत्र शास्त्र में पूर्ववत् शक्ति हो जायगी बल वीर्य और यश भी पूर्ववत् बढ़ जायगा ॥४६॥ देवताओं समेत बृहस्पति ने ऐसा विचार कर इन्द्र से वैशाख के धर्म कराये।४७। अक्षय तृतीया के दिन भुक्ति और मुक्ति देने वाले धर्मों से पूर्ववत् बल और वीर्यादि बढ़ गये ॥४८॥ तथा पर स्त्री गमन का

वै० मा० ५०

तृतीयायां हरिणा बलिविद्विषा । स्नानदानादिसद्धर्मान् कारयामो हिताप्तये ॥४५॥ भविष्यति च सा शक्तिर्विद्यायां मन्त्रशास्त्रयोः । बलं धैर्यं यशश्चैव यथापूर्वं भविष्यति ॥४६॥ इत्येवं तु विचार्याथ गुरुर्देवैः समाहिताः । इन्द्रेण कारयामास धर्मानेतान् हरिप्रियान् ॥४७॥ अक्षयायां तृतीयायां भुक्तिमुक्तिफलप्रदान् । तेन पूर्ववदेवासीद्बलं धैर्यादिकं विभोः ॥४८॥ परस्त्रीसङ्गदोषोऽपि सद्य एव व्यलीयत । पश्चाद्धताशुभः शक्रो राहोर्मुक्त इवोडुपः ॥४९॥ देवतानां तथा मध्ये शुशुभे च हरिर्यथा । पश्चाद्देवैः समायुक्तो विनीर्जित्य तथासुरान् ॥५०॥ तृतीयायाश्च माहात्म्याद्भाग्ययुक्तोऽमरावतीम् । विवेश विभवैः सार्द्धं शङ्खतूर्यादिनिः स्वनैः ॥५१॥ अनुज्ञाताश्च शक्रेण स्व-

मा० टी० अ० २३

दोष भी तत्काल नष्ट होगया इस कर्म से इन्द्र अपने पाप कर्मों से इस प्रकार छूटगया जैसे चन्द्रमा राहु से छूटता है ॥४९॥ और वह देवताओं के मध्य पूर्ववत् शोभाको प्राप्त हुआ। इन्द्र ने देवताओं को सङ्ग ले, असुरों को जीत ॥५०॥ अक्षय तृतीया के माहात्म्य से सब वैभवों से युक्त हो अमरावती पुरी में प्रवेश किया। आगे शङ्ख तूर्यादि बाजे बजने लगे ॥५१॥ फिर इन्द्र की आज्ञा से सब देवता अपने २ घर गये और पूर्ववत् यज्ञादि में अपना अपना भाग लेने लगे ॥५२॥ पितृीश्वर पूर्ववत् पिंड

माहात्म्य से सब वैभवों से युक्त हो अमरावती पुरी में प्रवेश किया। आगे शङ्ख तूर्यादि बाजे बजने लगे ॥५१॥ फिर इन्द्र की आज्ञा से सब देवता अपने २ घर गये और पूर्ववत् यज्ञादि में अपना अपना भाग लेने लगे ॥५२॥ पित्रीश्वर पूर्ववत् पिंड भाग प्राप्त करने लगे, राक्षसों के हारजाने पर मुनि स्वाध्याय में तुष्ट हुए ।५३। तभी से संसार में यह अक्षय तृतीया प्रख्यात है यह देवता, ऋषि, पितृगण, सबको संतोष देने वाली है अतः यह सब कर्मों को काटने वाली सब से पुण्यतम है यह

धामानि ययुः सुराः । ततस्ते यज्ञभागांश्च लेभिरे च यथापुरा ॥ ५२ ॥ पिण्डभागांश्च पितरो यथापूर्वं प्रपेदिरे । स्वाध्याये मुनयस्तुष्टा दैत्यानां च पराजये ॥ ५३ ॥ तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन् तृतीया चाक्षयाह्वया । प्रख्याता सर्वलोकेषु देवार्षिपितृष्टिदा ॥ ५४ ॥ तस्मात्पुण्यतमा चैषा सर्वकर्मनिकृन्तनी । भुक्तिमुक्तिप्रदा नृणां तृतीया चाक्षयाह्वया ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे अक्षयतृतीयायाः श्रेष्ठत्वकथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

श्रुतदेव उवाच ॥ तिथिष्वेतासु पुण्यासु द्वादशी सितपक्षिणी वैशाखमासे राजेन्द्र सर्वाघौघविनाशिनी ॥१॥ किं दानैः किं तपोभिश्च किमुपोष्यैर्व्रतैश्च किम् किमिष्टैश्चैव पूर्तैश्च द्वादशी

अक्षय तृतीया मनुष्यों को भक्ति और मुक्ति देने वाली है ॥५४-५५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे अक्षय तृतीयाः श्रेष्ठत्व कथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

श्रुतदेवजी बोले—हे राजन् ! इन सब पुण्यवर्द्धिनी तिथियों में शुक्लपक्ष की द्वादशी सम्पूर्ण पाप नाश करने वाली है ॥१॥

जिसने इस द्वादशी का सेवन नहीं किया उसके दान, तप और उपोषण व्रतादि करने से क्या फल है इष्टापूर्त से क्या फल है ॥२॥ जो फल गङ्गा पर ग्रहण के समय सहस्र गौदान करने से मिलता है वही वैशाखमास में द्वादशी के दिन योग्य ब्राह्मण को अर्पण करने से होता है ॥३॥ गङ्गा में दुर्भिक्ष के समय प्रति दिन करोड़ों मनुष्यों को भोजन कराने से जो फल मिलता

यैर्न सेविता ॥२॥ गङ्गायामुपरागे तु यो दद्याद्गोसहस्रकम् । द्वादश्यां माधवे मासि योग्याय ब्रह्मणेऽर्पणात् ॥३॥ गङ्गायां चैव दुर्भिक्षे प्रत्यहं कोटिभोजनात् । तत्फलं समवाप्नोति द्वादश्यामेक-भोजनात् ॥४॥ यद्दत्तं चार्हते चान्नं द्वादश्यां च सिते शुभे । सिक्थे सिक्थे भवेत्तस्य कोटिब्राह्मण भोजनम् ॥५॥ यो दद्यात्तिलपात्रं तु द्वादश्यां मधुसंयुतम् । निर्धूताखिलबन्धस्तु विष्णुलोके महीपते ॥६॥ एकादश्यां सिते पक्षे कुर्याज्जागरणं हरेः । स जीवन्नेव मुक्तः स्यात्तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥७॥ कोटीन्दुसूर्यग्रहणे तीर्थान्युत्प्लाव्य यत्फलम् । तत्फलं समवाप्नोति प्रातः स्नात्वा

है वही द्वादशी के दिन एक ब्राह्मण को भोजन देने से मिलता है ॥४॥ जो शुक्लपक्ष की द्वादशी के दिन एक चुटकी अन्न भी सुपात्र ब्राह्मण को देता है उसे कोटि ब्राह्मण भोजन का फल मिलता है ॥५॥ जो मधु सहित तिल के पात्र का दान द्वादशी के दिन करता है वह सम्पूर्ण बन्धनों से छूट विष्णु लोक को चला जाता है ॥६॥ शुक्लपक्ष की एकादशी के दिन जो रात्रि में जागरण करता है वह जीते जी ही मुक्ति पाता है और उससे सब देवता प्रसन्न रहते हैं ॥७॥ करोड़ों सूर्यग्रहण और चन्द्र

जागरण करता है वह जीते जी ही मुक्ति पाता है और उससे सब देवता प्रसन्न रहते हैं ॥७॥ करोड़ों सूर्यग्रहण और चन्द्र
ग्रहणों में जो तीर्थों में स्नानादि करने से फल मिलता है वह एकादशी के दिन प्रातःकाल स्नान करने से ...
मनुष्य द्वादशी के दिन तुलसी के कोमल पत्रों से विष्णु भगवान का पूजन करता है वह अपने सात कुलों का उद्धार कर के विष्णु लोक को जाता है ॥६॥ जो कोई वैशाख में द्वादशी के दिन बच्चे सहित गौ दान करे वह अपने कोटि कुलों का उद्धार

हरेर्दिने ॥८॥ तुलस्याः कोमलैः पत्रैर्द्वादश्यां विष्णुमर्चयेत् । स सप्तकुलमुद्धृत्य विष्णुलोकाधिपो भवेत् ॥९॥ द्वादश्यां माधवे मासि यो दद्याद्गां सवत्सकाम् । कोटिकुलमुद्धृत्य विष्णुर्लोकाधिपो भवेत् ॥१०॥ यमं पितृन् गुरून् देवान् विष्णुमुद्दिश्य मानवः । माधवे शुक्लद्वादश्यां सोदकुम्भं सदक्षिणाम् ॥११॥ दध्यन्नं चैव यो दद्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु । प्रयागे प्रत्यहं चैव कुर्याद्यः कोटि-भोजनम् ॥१२॥ यावत्संवत्सरं पुण्यं षड्रसान्नैर्ममोरमैः । तत्फलं समवाप्नोति मधुसूदनशासनात् ॥१३॥ शालिग्रामशिलादानं यः कुर्याद्द्वादशीदिने । वैशाखे शुक्लपक्षे तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१४॥

कर विष्णु लोक का अधिकारी होता है ॥१०॥ जो कोई शुक्लपक्ष की द्वादशी के दिन यम, पितृगण, गुरु, देवता और विष्णु भगवान् के निमित्त दक्षिणा सहित जलका घड़ा दान करे, दही और अन्न भी दान करे उसका फल सुनो उसको जो पुण्य प्रयाग राज में प्रतिदिन करोड़ों मनुष्यों को एक वर्ष तक षटरसयुक्त सुन्दर भोजन कराने से होता है, वही फल मधुसूदन भगवान की आज्ञा से उसको मिलता है ॥११-१३॥ जो कोई द्वादशी के दिन शालिग्राम दान करता है, वह सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है

॥१४॥ जो ग्रहण के समय गङ्गा में सप्तद्वीपवती पृथ्वी का करोड़ बार दान करे उसके समान ही फल मिलता है ॥१५॥ द्वादशी के दिन जो मधुसूदन भगवान को दूध से स्नान कराये उसे राजसूय और अश्वमेध यज्ञों के समान फल मिलता है ॥१६॥ वही फल गङ्गा में मिलता है इसमें सन्देह नहीं, त्रयोदशी के दिन जो दूध और दही मिलाकर विष्णु भगवान् का

सप्तद्वीपवतीं भूमिं गङ्गायां च रविग्रहे । यो दद्यात्कोटिवारं तु तेन तुल्यं फलं विदुः ॥१५॥ द्वादश्यां पयसा यस्तु स्नापयेन्मधुसूदनम् । राजसूयाश्वमेधाभ्यां यत्फलं परिजायते ॥१६॥ तत्फलं समवाप्नोति गङ्गायां नात्र संशयः त्रयोदश्यां यजेद्विष्णुं पयोदधिविमिश्रितैः ॥ १७ ॥ शर्करामधुभिर्द्रव्यैर्मधुसूदनप्रीतये । पञ्चामृतैश्च यो विष्णुं भक्त्या संस्नापयेद्विभुम् ॥१८॥ स सर्वकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीपते । यो दद्यात् पानकं ह्यस्यां सायाह्ने प्रीतये हरेः ॥ १९ ॥ जीर्णं पापं जहात्याशु जीर्णां त्वचमिवोरगः सायाह्ने चैव यो दद्यादुर्वारुकरसायनम् ॥२०॥ भवेन्मुक्तः कर्मबन्धादुर्वारुकरसायनात्

पूजन करे ॥१७॥ उस में शर्करा मधु और घृत मिला मधुसूदन भगवान की प्रसन्नता के लिये भक्ति पूर्वक पंचामृत से भगवान को स्नान करावे ॥१८॥ वह अपने सब कुलों का उद्धार कर विष्णु लोक को जाता है, जो सांयकाल के समय विष्णु भगवान की प्रसन्नता के निमित्त शर्बत दान करे ॥१९॥ उसके पहले के पाप ऐसे दूर हो जाते हैं जैसे सर्प अपनी पुरानी केंचुली छोड़ देता है, सांयकाल के समय जो रसीली ककड़ी दान करे ॥२०॥ वह उसके रसके प्रताप से कर्म बन्धनों से मुक्ति पाता है । ... कुटुम्ब में सौ पीढ़ी तक बराबर सन्तान चलती रहती है । जो द्वादशी के दिन ... व्याधियों से सदैव मुक्त रहता है हे राजन ! द्वादशी के

सौ पीढ़ी तक बराबर सन्तान चलती रहती है। जो द्वादशी के दिन सांयकाल के समय चन्दनादि दान करे ॥२१॥२२॥ वह आने वाली व्याधियों से सदैव मुक्त,रहता है हे राजन्! द्वादशी के शुक्लपक्ष में जो कुछ भी पुण्य किया जाता है वह अक्षय फल का दाता होता है ॥२३॥ हे राजन्! इसकी प्रख्याति क्यों

इक्षुदण्डं चूतफलं दद्याद्द्राक्षाफलानि च ॥२१॥ न विच्छित्तिः सन्ततेः स्यात्तस्य वै शतपूरुषम्। यो दद्याद्गन्धलेपं तु सायाह्ने द्वादसीदिने ॥२२॥ बाह्योपघातैः सकलैर्मुच्यते नात्र संशयः। यत्किञ्चित्कुरुते पुण्यं द्वादश्यां राजसत्तम ॥२३॥ माधवे तु सिते पक्षे तदक्षय्यफलं भवेत्। प्रख्यातिमस्या वक्ष्यामि केन जातेति भूमिप ॥२४॥ श्रवणात्सर्वपापघ्नीं सर्वमङ्गलदायिनीम्। पुरा काश्मीरदेशे तु द्विजो देवव्रताह्वयः ॥२५॥ तस्यासीन्मालिनी नाम तनया पापरूपिणी। ददौ तां सत्यशीलाय विप्रवर्याय धीमते ॥२६॥ तामुद्वाह्य ययौ धीमान् स्वदेशं यवनाह्वयम्। रूपयौवनसंपन्ना तस्य नैव

हुई है यह भी मैं तेरे सामने कहता हूँ ॥२४॥ इसके सुनने से संम्पूर्ण पाप दूर होते हैं और अत्यन्त मङ्गलकारी है। प्राचीन समय में काश्मीर देश में एक देवव्रत नामक ब्राह्मण हुआ था ॥२५॥ उसकी मालिनी नाम की एक पापरूपा पुत्री हुई वह कन्या सत्यशीलनामके बड़े विद्वान् ब्राह्मण से व्याही गई। उससे विवाह करके वह अपने यवन नाम देश को चला गया वह रूप यौवन संयुक्ता कभी भी पति की प्रिय न हुई ॥२६-२७॥ और वह निष्ठुर उससे सदा द्वेष रक्खे,उसके अतिरिक्त

किसीसे भी कुछ द्वेष नहीं रक्खे ॥ २८ ॥ अपने पति क्रोधकर वशीकरण करने की इच्छा से उसने अन्य स्त्रियों से पूछा
जिनको पहिले उनके पतियों ने त्याग दिया था ॥२९॥ तब वे बोलीं, तेरा पति वशीभूत हो जायगा हमें अच्छी तरह विश्वास
है ॥३०॥ हमने तो वशीकरण की औषधि से अपने पति वश कर लिये, तू योगिनी के पास जा वह सुन्दर औषधि दे देगी

प्रियाभवत् ॥२७॥ सदा विद्वेषसंयुक्तस्तस्यां तिष्ठति निष्ठुरः । नान्यस्य कस्यचिद्द्वेषी तां विना
नृपते पतिः ॥२८॥ तस्मिन् सा क्रोधसंयुक्ता वशीकरणलम्पटा । आपृच्छत्प्रमदा राजन्यास्त्यक्ताः
पतिभिः पुरा ॥२९॥ ताभिरुक्ता तु सा भूप वश्यो भर्ता भविष्यति । अस्माकं प्रत्ययो जातो
भर्तृत्यागावमानिनाम् ॥३०॥ प्रयुज्य भेषजं वश्यं नीता हि पतयः पुरा । योगिनीं त्वं तु गच्छाद्य
दास्ते ते भेषजं शुभम् ॥३१॥ न विकल्पस्त्वया कार्यो भविता दासवत्पतिः योगिनीमन्दिरे गत्वा
तासां वाक्येन भूपते ॥३२॥ प्रसादमतुलं तस्या लेभे दुश्चारिणी सती । शतस्तम्भसमायुक्तां कुटीं
भेजे त्वरान्विता ॥३३॥ सुविस्तृतां सुवर्चस्कां तथैवापातपालिकाम् ।प्रावृतां दीर्घवस्त्रेण सन्धितेना-

॥३१॥ तू सोच विचार मत करे तेरा पति तेरे दास के समान हो जायगा, तब हे राजन् ! वह उनके कथनानुसार योगिनी के
मन्दिर में जा ॥३२॥ योगिनी को अत्यन्त प्रसन्न करने लगी तथा वह दुराचारिणी बहुत शीघ्र हो उस कुटी में पहुँची जहां
सौ स्तम्भ बने हुए थे ॥३३॥ वह कुटी बहुत लम्बी चौड़ी कान्तिमान् थी उसके चारों ओर झालरदार कपड़ा लगा था जिसमें
... दीपक जगमगा रहे थे ऐसे शामाय-

सौ स्तम्भ बने हुए थे ॥३३॥ वह कुटी बहुत लम्बी चौड़ी कान्तिमान् थी उसकी चारों ओर ... गोटा किनारी लगा हुआ था।३४। बड़ी २ दीवारों में चारों ओर सफेदी हो रही थी दीपक जगमगा रहे थे ऐसे शोभाय-मान स्थान में विराजित,सेवा करने को आने वालों के देख रही थी ॥३५॥ रुद्राक्ष की माला से जप कर रही थी इस प्रकार योगिनी से जब उस स्त्री ने प्रार्थना की,तब योगिनी ने प्रसन्न हो मनको क्षोभ कराने वाले मन्त्र बतलाए ॥३६॥ तब उसने

जवन्तिना ॥३४॥ दीर्घाभिः शुभ्रभित्तीभिः प्रवृता दीप्तिसंयुता । परिचारमोपेता वीक्षमाणा शनैः शनैः ॥३५॥ अक्षसूत्रकरा स तु जपन्ती प्रार्थिता तया । ददौ वश्यकरं मन्त्रं क्षोभकं प्रत्ययात्मकम् ॥३६॥ ततः सा प्रणता भूत्वा पद्भ्यां दत्त्वाङ्गुलीयकम् । वज्रमाणिक्यसंयुक्तमतिरिक्तप्रभावितम् ॥३७॥ मृदुका ञ्चनसंयुक्तं भानुरश्मिद्युति । ततो दृष्ट्वा तु सन्तुष्टा पादस्थं चाङ्गुलीयकम् ॥३८॥ हृदयं च तया ज्ञातं तत्पतेरवमानजम् । तदोक्ता हि तया भूप तापस्या हितयुक्तया ॥३९॥ भविष्पति चूर्णो रक्षान्वितो ह्येष सर्वभूतवशंकरः । चूर्णं भर्यारि संयुज्य रक्षां ग्रीवाश्रयां कुरु ॥४०॥

नमस्कार कर पैर की हीरों से जड़ी हुई अंगूठी जो बहुत चमक रही थी भेंट की जिसमें सुन्दर जड़ा हुआ सुवर्ण सूर्य की कान्ति के समान प्रकाश देता था पांव की अंगूठी देख योगिनी अत्यन्त प्रसन्न हो ।३७-॥३८। पति के अपमान से व्यथित हृदय का वृत्तान्त जान हित की बात कहने लगी ॥३९॥ यह रक्षा चूर्ण सम्पूर्ण प्राणियों को वश करने वाला है । यह चूर्ण अपने पतिको दे उसकी ग्रीवा की रक्षा करना ॥४०॥ तो तेरे पति तेरे वश में हो जायगा और किसी के पास न जायगा तथा

तेरे दुश्चरित्रों को देख कर भी कुछ नहीं कहेगा ॥४१॥ वह उस चूर्ण को लेकर अपने घर आई और संध्या समय दूध में मिलाकर वह चूर्ण दे दिया ॥४२॥ और ग्रीवा की रक्षा करदी कुछ विचार न किया । हे राजन् ! उस चूर्ण को पीने से उसे क्षय रोग होगया जिससे दिनों दिन क्षीण होने लगा और उसके गुह्यस्थान में दुष्ट घाव होने से कीड़े पड़ गये ॥४३॥४४॥

पतिर्वश्यो नान्यां यास्यति सुन्दरीम् । नाप्रियं वदति क्वापि दुश्चारिण्यास्तवापि च ॥४१॥ चूर्णरत्नं गृहीत्वा सा प्राप्ता भर्तृगृहं पुनः । प्रदोषे पयसा युक्तश्चूर्णो भर्तरि योजितः ॥४२॥ ग्रीवायां हि कृता रक्षा न विचारः कृतस्तया । तदा स पीतचूर्णस्तु भर्त्ता नृपवरोत्तम ॥४३॥ तच्चूर्णात्क्षयरोगो-भूत्पतिः क्षीणो दिने दिने । गुह्ये तु कृमयो जाता घोरा दुष्टव्रणोद्भवाः ॥४४॥ दिनैः कतिपयै राजन् पात्यावेवं व्यवस्थिते । उवास स्वेच्छया सापि पुंश्चली दुष्टचारिणी ॥४५॥ हततेजास्ततोभर्त्ता तामुवाचाकुलेन्द्रिय । क्रन्दमानो दिवारात्रं दासोऽस्मि तव शोभने ॥४६॥ त्राहि मां शरण प्राप्तं नेच्छेऽहमपरां स्त्रियम् । तत्तस्य विदितं ज्ञात्वा भीता सा मेदिनीपते ॥ ४७ ॥ अलङ्कारकृते

जब कुछ दिन में पति की ऐसी दशा होगई तो वह दुष्ट पुंश्चली इच्छा पूर्वक विचरने लगी ॥४५॥ तेज क्षीण होजाने से व्याकुल इन्द्री वाला, वह पति रात दिन 'त्राहि त्राहि' पुकारने लगा और बोला हे शोभने मैं तेरा दास हूँ ॥४६॥ मैं तेरी शरण में हूँ, मेरी रक्षा कर मैं पर स्त्री की इच्छा नहीं करता हूँ । हे राजन् ! अपने पति के ऐसे वृत्तान्त को सुनकर बहुत घबड़ाई ॥४७॥ और सोचने लगी ... जीवित रहेगा तो मैं गहने कपड़े पहनती रहूँगी ऐसा सोच दौड़कर वह योगिनी ... की औषधि का दाह शान्त करने के निमित्त दूसरी औषध

वै० भा० टी० अ० ५८ २४

शरण में हूँ, मेरी रक्षा कर मैं पर स्त्री की इच्छा नहीं करती हूँ । हे राजन् ! ...

घबड़ाई ॥४७॥ और सोचने लगी कि पति जीवित रहेगा तो मैं गहने कपड़े पहनती रहूँगी ऐसा सोच दौड़कर वह योगिनी के पास गई और उससे सब वृन्तान्त कहा ॥४८॥ तब उसने पहिली औषधि का दाह शान्त करने के निमित्त दूसरी औषध दी औषध के देते ही तत्क्षण उसका पति स्वस्थ होगया ॥४९॥ जिससे पहिले चूर्ण से उत्पन्न हुआ दाह इससे शान्त हुआ।

पत्युर्जीवनेच्छुर्न वै हि सा । योगिनीं च ययौ शीघ्रं तस्यै सर्वं न्यवेदयत् ॥४८॥ तया च भेषज दत्तं द्वितीयं दाहशान्तये ॥ दत्ते च भेषजे तस्मिन् स्वस्थोऽभूत् तत्क्षणात्पतिः ॥४९॥ पूर्वचूर्णोद्भवो दाहः शान्तस्तेनाभवत्तदा । ततः प्रभृति भर्त्ता च वश्योभूद्वेश्मसंस्थितः ॥५०॥ तिष्ठत्युपपतिर्गेहे गृहकृत्यापदेशतः सर्ववर्णसमुद्भूता जारातिष्ठन्ति वै गृहे ॥५१॥ न किञ्चिद्वचने शक्तिर्भर्तुर्जाता कथंचन । ततस्ते नैव दोषेण सर्वाङ्गेषु च जज्ञिरे ॥५२॥ कृमयश्चास्थिभेत्तारः कालान्तकयमोपमाः। तैर्नासाजिह्वयोश्चा सीच्छेदः कर्णद्वरय च ॥५३॥ स्तनयोश्चाङ्गुलीनां च पङ्गुत्वं चापि चागतम् ।

तब से पति घर में ही रहता और उसके वशीभूत हो गया ॥५०॥ घर के काम के बहाने से उपपति घर में आकर निवास करते इसी प्रकार सब जाति के व्यभिचारी मनुष्य घर में आते रहते ॥५१॥ परन्तु उसे स्त्री के आगे कुछ भी कहने की शक्ति न थी इसी पाप के कारण उसके शरीर से भयानक प्राण नाशक कीड़े पड़ गये उन कीड़ों ने उसकी नाक, जिह्वा और दोनों कानों में छेद कर दिये ॥५२-५३॥ स्तन कट गये उंगलियों की ठोंट बंध गई और पांवों से लूली होगई ऐसे कष्ट भोगकर

अन्त में देह त्याग नरक भोगने लगी ॥५४॥ तथा पन्द्रह सहस्र वर्ष तक ताम्रभांड नामक नरक में दग्ध होती रही ॥५५॥ फिर सौ जन्म तक बार २ कुत्ते की योनि में पड़ी। नाक कट रहीहै कान फटे हैं मस्तक में कीड़े पड़ रहेहैं, पूंछ कटगइ है टांग लंगड़ी होगईहै इस दशा में घर घर घूमती थी ॥५६॥ पीछे सौवीर देश में पद्मबन्धु नामक ब्राह्मण की दासी के घर

तेन पञ्चत्वमापन्ना गता नरकयातनाम् ॥५४॥ ताम्रभाण्डे च सा दग्धाऽयुतानि दशपञ्च च। छिन्नासा छिन्नकर्णा कृमिमूर्धा निरन्तरम्। श्वानयोनिषु सञ्जाता शतवारं पुनः पुनः ॥५५॥ छिन्नपुच्छा भग्नपादा ताडिता च गृहे गृहे ॥५६॥ पश्चात्सौवीरदेशेषु पद्मबन्धोर्द्विजस्य च। दास्या गृहे शुनी जाता बहुदुःखसमाकुला ॥५७॥ छिन्नकर्णा छिन्ननासा छिन्नपुच्छाङ्घ्रिरातुरा। कृमिपूर्णशिरा नित्यं कृमियोनिश्च तिष्ठति ॥५८॥ एवं क्लेशं सह्यमाना जन्मनि भूमिप। दैवात् कर्मविपाकेन वैशाखे मेषगे रवौ ॥५९॥ शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां पद्मबन्धोस्तनूद्भवः। नद्यां स्नात्वा शुचिभूत्वा सार्द्रवस्त्रो गृहं ययौ ॥६०॥ तुलसीवेदिकां प्राप्य पादाववनिनेज ह। वेदिकामधोदेशे

कुतिया बनी और अत्यन्त दुःखसे व्याकुल ॥५७॥ कान टूटे नाक कटी फटी और पूंछ छिन्न भिन्न मस्तक में कीड़े भरे रहते तथा योनि में भी कीड़े पड़े रहते ॥५८॥ इस प्रकार उस जन्म में भी अनेक क्लेशों को सहन करती थी, दैवयोग से जब कर्म फल पूरा हो गया तो वैशाख में मेष की संक्रांति में ॥५९॥ शुक्लपक्ष की द्वादशी के दिन पद्मबन्धु का पुत्र नदी में स्नान कर पवित्र हो गीले वस्त्रों से घर [illegible] वहां तुलसी स्तंभ के पास उसने अपने चरण धोये उसी समय [illegible] [illegible] चरणों के धोये जल में लोट गई जिससे उसके सब

तथा योनि में भी कोई पड़े रहें ... ॥५९॥ शुक्लपक्ष की द्वादशी के दिन ...
फल पूरा हो गया तो वैशाख में मेष की संक्राति में ... वहां तुलसी स्तंभ के पास उसने अपने चरण धोय उसी स्तम्भ के पास
कर पवित्र हो गीले वस्त्रों से घर आया ॥६०॥ वह कुतिया उस चरणों के धोये जल में लोट गई जिससे उसके सब
वह कुतिया सो रही थी ॥६१॥ अतः सूर्य उदय से पहिले वह कुतिया उस चरणों के धोये जल में लोट गई जिससे उसके सब
अशुभ कर्म तत्काल नष्ट होगये और पूर्व जन्म की याद हो आई ॥६२॥ अपने पूर्व जन्म के किये कर्मों को सोच सोचकर ताप

सा शुनी स्वापमागता ॥६१॥ प्राक्सूर्योदयवेलायां पादोदकपरिप्लुता । सद्यो ध्वस्ताशुभा जाता जातिस्मृतिरभूत्क्षणात् ॥६२॥ स्मृत्वा कर्मकृतं पूर्वं सा शुनी तापसंयुतां । चुक्रोश करुणं दीना मुने त्राहीति वै पुनः ॥६३॥ स्वकर्म च मुनीन्द्राय स्मृत्वाचख्यौ भयाकुला । भर्तुर्विषयोगं तु स्वस्य दुश्चरितं तथा ॥६४॥ यान्यापि युवतो ब्रह्मन् भर्तुर्वश्यं समाचरेत् । वृथाधर्मा दुराचारा पच्यते ताम्रभाजने ॥६५॥ भर्त्ता नाथो गुरुर्भर्त्ता भर्त्ता दैवतमुत्तमम् । विक्रियां कृत्य साध्वी सा कथं सुखमवाप्नुयात् ॥६६॥ तिर्यग्योनिशतं याति कृमिकोटिशतानि च । तस्माद्धू सुर कर्तव्यं स्त्रीभिर्भर्त्तुर्वचः

से व्याकुल होकर विचारी करुण स्वर से त्राहि त्राहि करने लगी ॥६३॥ और भय से व्याकुल हो उस मुनि से अपने कर्मों का वर्णन करने लगी कि, मैंने अपने पति को विष दिया । फिर अनेक प्रकार के दुश्चरित्र किये ॥६४॥ हे ब्रह्मन् ! जो कोई धर्म हीना दुराचारिणी स्त्री अपने पति को वश में करतीहै वह मेरी ही भांति ताम्रभांड नामक नरक में डाल कर तपाई जातीहै ॥६५॥ पति ही नाथहै पति ही स्वामीहै पति ही देवताहै उसके सङ्ग अनर्थ करके स्त्री सुख कैसे पा सकतीहै ॥६६॥ जो

कोई अपने पति को दुःख देता है वह सौ जन्म पर्य्यन्त कुत्ते की योनि पावे और शरीर में असंख्य कीड़े पड़ जाते हैं। अतः
हे ब्राह्मण! स्त्री को उचित है कि वह सदा अपने पति की आज्ञा माने ॥६७॥ मैं तुम्हारे सन्मुख खड़ी हूँ यदि तुम आज मेरा
उद्धार करदो, तो फिर मुझे नीच योनि नहीं मिलेगी ॥६८॥ हे ब्रह्मन् मैं! बड़ी दुष्टा दुराचारिणी और खोटी हूं। अपना

सदा ॥६७॥ नाहं पश्ये पुनर्योनिं कुत्सितां यातनान्विताम्। यदि चोद्धरसे ब्रह्मन्नद्य त्वद्दृष्टिसंमुखाम् ॥६८॥ तस्मादुद्धर मां ब्रह्मन् दुष्कृतां पापचारिणीम्। सुकृतस्य प्रदानेन वैशाखे शुक्लपक्षके ॥६९॥ या कृता तु त्वया ब्रह्मन् द्वादशी पुण्यवर्द्धिनी। तस्यां त्वया कृतं पुण्यं स्नानदानान्नभोजनैः ॥७०॥ दुश्चारिण्या अपि ब्रह्मन् तेन मुक्तिर्भविष्यति। यस्यां तु भूसुरः स्नातः स्वगृहे मनुजः किल ॥७१॥ सर्वतीर्थफलावाप्तिं लभते नात्र संशयः। तप्तं दत्तं हुतं यत्र कृतं देवार्चनादि यत् ॥ ७२ ॥ तदक्षय्यफलं ज्ञेयं यत्कृतं द्वादशीदिने। एवंविधं फलं यत्स्यत्तद्देहि सकलं मम ॥७३॥ द्वादश्यामु-

सुकृत मुझे देकर मेरा उद्धार करो, वैशाख शुक्लपक्ष में पुण्यों को बढ़ाने वाली द्वादशी के दिन स्नान दानादि अन्न भोजन आदि जो सुकृत आपने किया है वह मुझे दे दो ॥६९॥७०॥ हे ब्रह्मन्! इस सुकृत के प्रभाव से मेरी मुक्ति हो जायगी। हे ब्रह्मन्! द्वादशी के दिन जो मनुष्य घर में स्नान करले तो उसे संपूर्ण तीर्थों का फल मिल जाता है इसमें सन्देह नहीं। द्वादशी के दिन जो तप, दान, यज्ञ, होम, वेदादि पूजन किया जाय ॥७१॥७२॥ उसका अक्षय फल मिलता है ऐसा फल तुम
... ॥७३॥ जो लोग द्वादशी के दिन उपवास करते और त्रयोदशी के दिन पारण करते हैं उसी फल से अवश्य ही

ब्रह्मन् ! द्वादशी के दिन जो ... ||७१||७२|| उसका अक्षय फल मिलता है ...
द्वादशी के दिन जो तप,दान,यज्ञ,होम,वेदादि पूजन किया जाय ...
मुझे दे दो ||७३|| जो लोग द्वादशी के दिन उपवास करते और त्रयोदशी के दिन पारण करतेहैं उसी फल से अवश्य ही उन्हें मोक्ष मिलती है ||७४|| हे महाभाग ! हे दीन वत्सल ! मैं दीन हूँ । मेरे ऊपर दया करो । जनार्दन भगवान दीना नाथ हैं जगत् पति हैं और तुम्हारे भी नाथ हैं ||७५|| ऐसे भगवान के जन भी वैसे ही होते हैं क्योंकि जैसा राजा वैसे ही प्रजा

पवासेन त्रयोदश्यां तु पारणात् । यत्फलं स्यात्तत्प्रयच्छ तेन मुक्तिर्भविष्यति ||७४|| दयां कुरु महाभाग दीनानां दीनवत्सल । दीननाथो जगन्नाथो युष्मन्नाथो जनार्दनः ||७५|| तदीयास्तादृशा एव यथा राजा तथा प्रजाः । वैवस्वतपदध्वंसिन्परित्राहि सुदुःखिताम् ||७६|| त्वद्द्वारवासिनीं दीनां शुनीं मां दीनवत्सल । ब्रह्महत्यासहस्रं वा गोहत्यानां सहस्रकम् ||७७|| अगम्यानां च कोट्यश्च दहत्येषां शुभा तिथिः । तस्यां कृतं महापुण्यं मह्यं दत्त्वा महामुने ||७८|| मामुद्धर सामुद्विग्नां दीनां नाथ समुद्धर । अन्ते तुभ्यं जितेन्द्राय नम उक्तिं वदाम्यहम् ||७९|| इति तस्या वचः श्रुत्वा

होतीहै । हे यम लोक के मार्ग को नाश करने वाले ! मैं अत्यन्त दुःखी हूं,मेरी रक्षा करो ||७६|| हे दीनवत्सल ! मैं तुम्हारे द्वार पर रहने वाली दीन कुतिया हूं,यह तिथि सहस्र ब्रह्महत्या, गौहत्या और करोड़ों अगम्यागमन से उत्पन्न हुए दोषों को नष्ट कर देती है । हे महामुने ! इस तिथि में आपने जो महापुण्य कियाहै वह मुझे देकर || ७७-७८ || मेरा उद्धार करो । मैं बड़ी दीन हूँ,व्यकुल हूँ,मेरी रक्षा करो और अन्त में हे द्विजवर ! मैं तुमको नमस्कार करती हूँ ||७९|| ऐसे वचन सुन

वह मुनि पुत्र कुतिया से बोले हे कुतिया ! अपने किये हुए कर्मों के सुख दुःख रूपी फलों को प्राणी भोगता है ॥८०॥ हे दुराचारिणी क्षुद्र क्या करेगी जिसने रक्षा चूर्णादि द्वारा अपने पति को वशीभूत किया ॥८१॥ साधु के प्रति जो पाप करता है वह उसी को दुःख देता है। और जो पुण्य करता है वे उसी के दुःख को हरण करता है ॥८२॥ पापी के लिये मनुष्य जो

शुनीमाह मुनेः सुतः । स्वकृतं जन्तवोऽश्नन्ति सुखदुःखात्मकं शुनि ॥८०॥ तस्मात् किमु त्वया कार्यं क्षुद्रया पापशीलया । यया भर्त्ता वशं नीतो रक्षाचूर्णादिभिर्वृतः ॥८१॥ साधुभ्यो यत्कृतं पापं स्वस्य दुःख करं भवेत । साधुभ्यो यत्कृतं पुण्यं स्वस्य दुःखहरं भवेत् ॥ ८२ ॥ उभयभ्रंशतामेति पापभ्यो यत्कृतं भवेत् । शर्करा मिश्रितं क्षीरं काद्रवेयनिवेदितम् ॥८३॥ विषवृद्धिकरं दुष्टमेवं पापकृतं भवेत् ~~वदत्येवं भवेत्~~ । वदत्येवं मुनिसुते शुनी दुःखैकरूपिणी ॥८४॥ पुनश्चुक्रोशोर्ध्वमुखी तत्पित्रे बहुभाषिणी । पद्मबन्धो परित्राहि शुनीं त्वद्द्वारवासिनीम् ॥८५॥ त्वदुच्छिष्टाशनीं नित्यं त्वं पाहीति पुनः पुनः । स्वपोष्या ये हि वर्तंते गृहस्थस्य महात्मनः ॥८६॥ तेषामुद्धरणं कार्यमिति

कुछ करता है वह पाप और पुण्य दोनों को नष्ट करता है जैसे मिश्री मिला दूध सर्प को पिलाने से केवल विष ही बढ़ता है ऐसे ही पाप कर्म हैं। जब मुनि पुत्र ने ऐसा कहा तब कुतिया अत्यन्त दुःख पा ऊँचा मुख करके चीत्कार करने लगी और उसके पिता से कहने लगी ॥८३-८४॥ हे पद्मबन्धो ! तुम्हारे द्वार पर पड़ी हुई मैं कुतिया हूँ अतः मेरी रक्षा करो ॥८५॥ मैं तुम्हारी उच्छिष्ट रोटी नित्य खाती हूँ, मेरी रक्षा करो। क्योंकि गृहस्थी महात्माओं के घर पर जो पड़े हैं ॥८६॥ उनका ... है ... वेदवचनों का मत है। चांडाल, कुत्ते ये सदा गृहस्थों के दयापात्र हैं और बलि-

उसके पिता से कहने लगा ॥८३-८४॥ हे [illegible] मैं तुम्हारी उच्छिष्ट रोटी नित्य खाता हूँ, मेरी रक्षा करो। क्योंकि गृहस्थी महात्माओं के घर पर जा पड़े हैं ॥८६॥ उनका उद्धार करना आवश्यक कर्त्तव्य है, ऐसा वेदवेत्ताओं का मत है। चांडाल, कुत्ता ये सदा गृहस्थों के दयापात्र हैं और बलि-भोजी हैं अपने पाले हुये असमर्थ रोग से पीड़ित का जो उद्धार नहीं करते हैं वे अवश्य ही नरक में पड़ते हैं इसमें सन्देह नहीं यह वेदवेत्ताओं का मत है ॥८७॥८८॥ सब संसार का कर्त्ता एक ही परमात्मा है वह सबको रचकर स्वयं सब जीवों को

वेदविदां मतम् । चाण्डाला वायसाश्चैव सारमेयाश्च नित्यशः ॥८७॥ गृहस्थानां दयापात्रं प्रत्यहं बलिभोजिनः । अशक्तं नोद्धरेत्पोष्यं रोगाद्युपहतं यदि । सोऽधः पतेन्न संदेह इति वेदविदां मतम् ॥८८॥ कर्त्तारमेकं जगतां हि भर्त्ता कृत्वात्मना पाति समस्तजन्तून् । दारादिरूपव्यपदेशतो हरिस्तस्मात्तदाज्ञा खलु पोष्यरक्षा ॥८९॥ तां पोष्यरक्षां परित्यज्य जन्तुर्दैवेन क्लृप्तां यदि वर्ततेऽन्यधीः । स दैवकोपात् सकलस्य हन्ता कीनाशलोकं नितरां प्रयाति ॥९०॥ कर्त्तव्यत्वाद्दयालुत्वाद्दीनामुद्धर दुर्मतिम् ॥९१॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा दुःखर्त्ताया गृहे सतु । निश्चक्राम गृहात्त एवं पद्मबन्धुदयानिधिः ॥९२॥ किमेतदिति तां प्राह पुत्रः सर्वं न्यवेदयत् । स पुत्रवचः श्रुत्वा तमेवं

दारादि रूप से पालन करता है अतएव अपने पाले हुये की रक्षा करना भगवान की आज्ञा है ॥८९॥ उस पोष्य रक्षा रूप भगवान् की आज्ञा को उल्लंघन कर जो अज्ञानी बने हैं वह भगवत् कोप से अपने सर्वस्व को नष्टकर अन्त में नरक गामी

होतेहैं ॥६०॥ यह कर्म कर्त्तव्यहै और तुम दयालु हो अतएव मुझ दुर्बुद्धि का उद्धार करो ॥६१॥ घर के भीतर दुःख से
आर्त कुतिया के ऐसे वाक्य सुन कर पद्मबन्धु शीघ्र ही घर से बाहर आये ॥६२॥ और कुतिया से पूछने लगे, क्या बात है ?
तब पुत्र ने सब कथा वर्णन की, तो अपने पुत्र के वचन सुन विस्मित हो कहने लगे ॥६३॥ मेरा पुत्र होकर तूने यह क्या

वै० भा०

प्राह विस्मितः ॥६३॥ पद्मबन्धुरुवाच ॥ ममात्मज कथं वाक्यमीदृतं त्वया अद्साधुनामिदं वाक्य
भवतीह वरानन ॥६४॥ आत्मसौख्यकराः पापा भवन्ति परिभाविताः । पश्य पुत्र जनाः सर्वे परो-
पकरणाय वै ॥६५॥ शशी सूर्योऽथ पवनो मेदिनी हुतभुग्जलम् । चन्दनं पादपाःसन्तः परोपकरणे
स्थिताः ॥६६॥ अस्थिदानं कृत पुत्र कृपया हि दधीचिना । देवानामुप काराय ज्ञात्वा दैत्यान्महा-
बलान् ॥६७॥ कपोतार्थे स्वमांसानि शिविना भूभुजा पुरा । अदत्तानि महाभाग श्येनाय क्षुधिताय
वै ॥६८॥ जीमूतवाहनो राजा पुरासीत्क्षितिमण्डले । तेनापि जीवितं दत्तं गरुडाय महात्मने ॥६९॥

मा० टी० अ०

कहा, हे पुत्र ! साधुओं को ऐसा वाक्य कहना अनुचित है ॥६४॥ अपनी ही आत्मा का सुख देने वाले पापी औरों से
तिरस्कृत किये जाते हैं, हे पुत्र ! देखो सम्पूर्ण प्राणी परोपकार के ही लिये हैं ॥६५॥ चन्द्रमा, सूर्य, पवन, पृथ्वी, अग्नि,
जल, चन्दन, वृक्ष, और महात्मा लोग सभी परोपकार में स्थित हैं ॥६६॥ हे पुत्र ! दधीचि ने देवताओं के उपकार के लिये
दैत्यों को महाबली जान, अपनी हड्डी निकाल के दे दी ॥६७॥ राजा शिविने कबूतर के बदले अपना मांस काटकर दे दिया,
जब भूखे श्येन ने कबूतर के ऊपर [illegible] मारा था ॥६८॥ जीमूतवाहन नाम का एक राजा पृथ्वीमण्डल पर हुआ था । [illegible]
[illegible] ॥ अतः विद्वान् ब्राह्मण को तो सदा ही दया करनी चाहिये । मेघ शुद्ध

दैत्यों को महाबली जान,अपनी हड्डी निकाल के दे दी ॥९७॥ राजा [illegible]
जब भूखे श्येन ने कबूतर के ऊपर छलांग मारा था ॥९८॥ जीमूतवाहन नाम का एक राजा पृथ्वीमंडल पर हुआ था । उसने
भी महात्मा गरुड के लिये अपना जीवन दिया ॥९९॥ अतः विद्वान् ब्राह्मण को तो सदा ही दया करनी चाहिये । मेघ शुद्ध
स्थान पर बरसता है तो क्या अशुद्ध स्थान पर नहीं बरसता है ? ॥१००॥ क्या चन्द्रमा चांडाल के घर प्रकाश नहीं करता ?

शुद्धेवर्षति देवस्तु किमशुद्धे न वर्षति
तस्माद्दयालुना ~~महादयालुना~~ भाव्यं भूसुरेण विपश्चिता ।
॥१००॥ किं न दीपयते चन्द्रश्चाण्डालानां गृहं सदा । तस्मादहं शुनीमेतां याचन्तीं च पुनः पुनः
॥१०१॥ उद्धरिष्ये निजैः पुण्यैः पङ्कमग्नां च गां यथा । इति पुत्रं निराकृत्य प्रतिजज्ञे महामतिः
॥१०२॥ दत्तं दत्तं महापुण्यं द्वादशीदिनसंभवम् । शुनि गच्छ हरेर्धाम निर्धूताखिलकल्मषा ॥१०३॥
तद्वाक्यात्सहसा भूप दिव्याभरणभूषिता । विमुच्य देहं जीर्णं तु दिव्यरूपधरा शुभा ॥१०४॥ शता-
दित्यप्रभा जाता सावित्रीप्रतिमा यथा । जगामामन्त्र्य तंविप्रद्योतयन्ति दिशो दश ॥१०५॥ भुक्त्वा

इस लिये बार बार प्रार्थना करती हुई इस कुतिया के दुःख को अपने पुण्य के प्रभाव से दूर करूंगा ॥१०१॥ जैसे कीचड़
में फंसी गौ को निकालते हैं इस प्रकार पुत्र को समझा कर स्वयं पद्मशर्मा ने प्रतिज्ञा की ॥१०२॥ हे कुतिया ! मैं तेरे निमित्त
द्वादशी के दिन का पुण्य देता हूँ, तू अपने सब पापों से छूट विष्णु लोक को जा ॥१०३॥ इतना कहते ही हे राजन् ! वह
कुतिया अपने जीर्ण शरीर को त्याग,दिव्य वस्त्र आभूषण पहन ॥१०४॥ सौ सूर्यों के सदृश प्रभाव वाली सावित्री के समान

हो ब्राह्मण से आज्ञा मांग दशों दिशाओं में प्रकाश करती चली गई ॥१०५॥ स्वर्ग में अनेक प्रकार के महा भोगों को भोग
पृथ्वी पर नारायण भगवान के अनुग्रह से वैशाख शुक्ला द्वादशी के प्रभाव से उर्वशी नाम ॥१०६॥ श्रेष्ठ अङ्गोंवाली देव-
ताओं की प्रिय अप्सरा हुई ॥१०७॥ जिससे योगीजन योग द्वारा प्राप्त करते हैं ऐसे अग्नि-तुल्य प्रकाशित श्रेष्ठ परमार्थ रूप को

दिवि महाभोगान् पश्चाज्जाता महीतले । नरनारायणाद्देवादुर्वशी नाम नामतः ॥१०६॥ वैशाखशुद्ध-
द्वादश्याः प्रभावेण वराङ्गना । देवानां च प्रिया जाता अप्सरस्त्वं च साभ्यौ ॥१०७॥ यद्योगिगम्यं
हुतभुक्प्रकाशं वरं वरेण्यं परमार्थरूपम् । प्रप्राप्य सन्तोऽपि हि यान्ति मोहं तत्प्राप रूपं च शुनीह
देवो ॥१०८॥ पश्चात्स पद्मबन्धुर्हि तां तिथिं पुण्यवर्द्धिनीम् । लोके प्रख्यापयामास मधुद्विट्प्राणवल्लभाम्
॥१०९॥ कोटीन्दुसूर्यग्रहणाधिका सा समस्तरूपाधिकपुण्यरूपा । यज्ञैः समस्तैरतिरिच्यमाना द्विजेन
ख्याता भुवनत्रये च ॥११०॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे शुनीमोक्ष-
प्राप्तिर्नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

प्राप्त कर सन्तजन भी मोहित होजाते हैं उसी रूप को कुतिया ने प्राप्त किया ।१०८। तत्पश्चात् पद्मबन्धु ने मधुसूदन भगवान
की प्यारी पुण्य बढ़ाने वाली इस तिथि को संसार में प्रख्यात किया ॥१०९॥ करोड़ों सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण से भी अधिक
पुण्य रूपी और सब यज्ञों से अधिक ऐसी यह तिथि ब्राह्मण ने तीनों लोकों में सिद्ध करदी ॥११०॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे
वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे शुनीमोक्षप्राप्तिर्नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

...दवजी कहने लगे हे राजन् ! वैशाख मे शुक्लपक्ष के अन्त की जो तीन तिथि पूर्णमासी तक हैं । वे बड़ी शुभ फल

श्रुतदेवजी कहने लगे-हे राजन् ! वैशाख में शुक्लपक्ष के अन्त की जो तीन तिथि पूर्णमासी तक हैं । वे बड़ी शुभ फल देने वाली हैं ॥१॥ ये तीनों तिथि पुष्करिणी कहलाती हैं ये समस्त पापों को दूर करने वाली हैं जो कोई वैशाख मास में महीने भर तक स्नान नहीं कर सकता ॥२॥ उन्हें इन तिथियों में स्नान करने से सम्पूर्ण फल मिल जाते हैं संपूर्ण देवता

श्रुतिदेव उवाच ॥ यास्तिस्रस्तिथयः पुण्या अन्तिमाः शुक्लपक्षके । वैशाखमासो राजेन्द्र पूर्णिमान्ताः शुभावहाः ॥१॥ अन्त्याः पुष्करिणीसंज्ञाः सर्वपापक्षयावहाः । माधवे मासि यः पूर्णस्नानं कर्तुं न च क्षमः ॥२॥ तिथिष्वेतासु यः स्नायात्पूर्णमेव फलं लभेत् । सर्वे देवास्त्रयोदश्यां स्थित्वा जन्तून् पुनन्ति हि ॥३॥ पूर्णायां पर्वतीर्थैश्च विष्णुना सह संस्थिताः । चतुर्दश्यां सयज्ञाश्च देवा एतान्पुनन्ति हि ॥४॥ ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा सर्वानेतान्पुनन्ति हि । एकादश्यां पुरा जज्ञे वैशाख्याममृतं शुभम् ॥५॥ द्वादश्यां पालितं तच्च विष्णुना प्रभविष्णुना । त्रयोदश्यां सुधां देवान्

त्रयोदशी के दिन इकट्ठे होकर जीवों को पवित्र करते हैं ॥३॥ पूर्णमासी के दिन विष्णु भगवान के सङ्ग सम्पूर्ण तीर्थ इकट्ठे होते हैं, चतुर्दशी के दिन यज्ञसहित सब देवता उन्हें पवित्र करते हैं ॥४॥ कोई कैसा ही ब्रह्मघाती अथवा मद्यपान कर्ता हो ये सबको पवित्र करते हैं,प्राचीन काल में वैशाख की एकादशी के दिन विष्णु भगवान ने अमृत उत्पन्न किया द्वादशी के दिन उसकी रक्षा की, त्रयोदशी के दिन देवताओं को अमृत पिलाया ॥५॥६॥ और चतुर्दशी के दिन देवताओं के विरोधी

दैत्यों का नाश किया तथा पूर्णमासी के दिन देवताओं ने अपने राज्य को प्राप्त किया ॥७॥ इससे देवताओं ने प्रसन्न हो इन तीनों तिथियों को प्रीति पूर्वक प्रफुल्लित चित्त से वरदान दिया था ॥८॥ वैशाख मास की ये तीनों तिथियाँ शुभ हैं, पुत्र पौत्रादि फल देने वाली और मनुष्यों के पापों को दूर करने वाली हैं ॥९॥ जो अधम मनुष्य सम्पूर्ण वैशाख मास में स्नान

पूर्णायां सर्वदेवनां साम्रा-पाययामास वै हरिः ॥६॥ जघान च चतुर्दश्यां दैत्यान् देवविरोधिनः । ततो देवाः सुसन्तुष्टा एतासां च वरं ददुः । तिसृणां च तिथीनां वै प्रीत्यो-ज्यासर्बभूव ह ॥७॥ एता वैशाखमासस्य तिस्रश्च तिथयः शुभाः । पुत्रपौत्रादिफलदानराणां स्फुल्लविलोचनाः ॥८॥ यो माधवे त्वसंपूर्णे न स्नातो मनुजाधमः । तिथित्रये तु स स्नात्वा पूर्णमेव पापहानिदाः ॥९॥ तिथित्रयेप्यकुर्वाणः स्नानदानादिकं नरः । चाण्डालीं योनिमासाद्य पश्चाद्रौ-फलं लभेत् ॥१०॥ उष्णोदकेन यः स्नाति माधवे च तिथित्रये । रौरवं नरकं याति यावदिन्द्राश्च-रवमश्नुते ॥११॥ पितॄन् देवान् समुद्दिश्य दद्यन्नं न ददाति यः पैशाची योनिमासाद्य तिष्ठत्याभूत-तुर्दश ॥१२॥

फल प्राप्त कर लेते हैं ॥१०॥ जो मनुष्य इन तिथियों में भी नहीं कर सकते हैं वह इन तीन तिथियों में स्नान करने से पूर्ण फल प्राप्त कर लेते हैं ॥१०॥ जो मनुष्य इन तिथियों में भी स्नान दानादि नहीं करते वे चांडाल की योनि पाते हैं और फिर रौरव नरक में जाते हैं ॥११॥ जो इन तीनों तिथियों में गरम जल से स्नान करते हैं वे चौदह मन्वन्तर तक रौरव नरक में निवास करते हैं ॥१२॥ पित्रीश्वर और देवताओं के लिये जो

जल से स्नान करतेहैं वे चौदह मन्वन्तर तक रौरव नरक में निवास करते हैं ॥

... काल तक भोगतेहैं ॥१३॥ जो वैशाख मास में नियम पूर्वक

कर्त्तव्य कर्मों में लगे रहतेहैं वे विष्णु भगवान की सायुज्य मुक्ति को प्राप्त होतेहैं इसमें सन्देह नहीं ॥१४॥ जो वैशाख के कुल महीने में नियम पूर्वक न रहकर केवल इन तीन तिथियों में शास्त्र विहित कर्म करतेहैं वे पूर्ण फल पाकर विष्णु लोक

सम्प्लवम् ॥१३॥ प्रवृत्तानां च कामानां माधवे नियमे कृते । अवश्यं विष्णुसायुज्यं युज्यते नात्र संशयः ॥१४॥ आमासं नियमासक्तः कुर्याद्यदि दिनत्रये । तेन पूर्णफलं प्राप्य मोदते विष्णुमन्दिरे ॥१५॥ यो वै देवान् पितॄन् विष्णुं गुरुमुद्दिश्य मानवः । न स्नानादि करोत्यद्धाऽमुष्य शापप्रदा वयम् ॥१६॥ निःसन्तानो निरायुश्च निःश्रेयस्को भवेदिति । इति देवा वरं दत्त्वा स्वधामानि ययुः पुरा ॥१७॥ तस्मात्तिथित्रयं पुण्यं सर्वाघौघविनाशनम् । अन्त्यं पुष्करिणीसंज्ञं पुत्रपौत्रविवर्द्धनम् ॥१८॥ या नारी सुभगाऽपूपपायसं पूर्णमादिने । ब्राह्मणाय सकृद्दत्त्वा कीर्तिमन्तं सुतं लभेत् ॥१९॥

में निवास करतेहैं ॥१५॥ जो मनुष्य देवता, पित्रीश्वर, गुरु और विष्णु भगवान के निमित्त स्नान दान नहीं करते उन्हें हम शाप दे देतेहैं ॥१६॥ वे मनुष्य निःसन्तान, आयु हीन और दुःखी होंगे देवता ऐसा वर देकर अपने अपने धाम को चले गये ॥१७॥ अतएव वे तीनों तिथियां बड़ी पुण्य कारिणी और सब पापों का नाश करने वाली हैं तथा तीनों पुष्करिणी कहाती हैं पुत्र और पौत्र को बढ़ाने वाली हैं जो स्त्री पूर्णमासी के दिन ब्राह्मण को मालपुआ और खीर भोजन करावे तो

वै०

कीर्तिमान् पुत्र पावे ॥१८-१९॥ पिछले इन्हीं तीन दिन में जो कोई गीता का पाठ करे उसे प्रति दिन अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिले इसमें कोई सन्देह नहीं ॥२०॥ जो कोई इन तीन तिथियों में विष्णुसहस्रनाम का पाठ करता है उसके पुण्य के फल कहने की तो किसी में भी स्वर्ग अथवा पृथ्वी भर में सामर्थ्य नहीं है ॥२१॥ पूर्णमासी के दिन को कोई सहस्रनाम का

गीतापाठ तुयः कुर्यादन्तिमे च दिनत्रये । दिने दिनेऽश्वमेधानां फलमेति न संशयः ॥ २० ॥
सहस्रनामपठनं यः कुर्याच्च दिनत्रये । तस्य पुण्यफलं वक्तुं कः शक्तो दिवि वा भुवि ॥ २१ ॥
सहस्रनामभिर्देवं पूर्णायां मधुसूदनम् । पयसा स्नाप्य वै याति विष्णुलोकमकल्मषम् ॥२२॥ समस्त विभवैर्यस्तु पूजयेन्मधुसूदनम् । न तस्य लोकाः क्षीयन्ते युगकल्पादिऽत्यये ॥२३॥ अस्नात्वा चाप्यदत्त्वा च वैशाखश्च गतो यदि । स ब्रह्महा गुरुघ्नश्च पितॄणां घातकस्तथा ॥२४॥ श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् । वैशाखे च पटन्मर्त्यो ब्रह्मत्वं चोपपद्यते ॥२५॥ यो वै भागवतं

मा०

पाठ करे और एक एक नाम पर मधुसूदन भगवान को दूध से स्नान करावे तो उसके सब पाप दूर होजाते हैं और वह विष्णु-लोक को जाते हैं ॥२२॥ जो सभी उत्तम उत्तम पदार्थों द्वारा मधुसूदन भगवान का पूजन करे तो कल्पान्त में भी उसके पुण्य क्षीण नहीं होते हैं ॥२३॥ जो कोई मनुष्य वैशाख में न स्नान करे न दान करे वह ब्रह्महत्यारा, गुरुघाती और पित्री-श्वरों का नाश करने वाला होता है ॥२४॥ जो कोई नित्य प्रति श्रीमद्भागवत् का एक श्लोक अर्द्ध श्लोक या चौथाई श्लोक [illegible] श्रीमद्भागवत की कथा सुनने वाला कभी भी पापों में लिप्त नहीं

श्वरों का नाश करने वाला होता है ॥२४॥ जो कोई नित्य प्रति श्रीमद्भागवत् का एक श्लोक अर्द्ध श्लोक या चौथाई श्लोक
... श्रीमद्भागवत् की कथा सुनने वाला कभी भी पापों में लिप्त नहीं
होता जैसे कमल के पत्ते पर जल नहीं ठहरता है ॥२६॥ इन तीन तिथियों में विधिवत् भगवत्पूजा, स्नान, दान आदि करने
से बहुत से मनुष्य देवता हो गये हैं कितने ही सिद्ध बन गये और कितने ही ब्रह्मभाव को प्राप्त हुए हैं ॥२७॥ ब्रह्मज्ञानी अथवा

शास्त्रं शृणोत्येतद्दिनत्रये । न पापैर्लिप्यते क्वापि पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥२६॥ देवत्वं मनुजैः प्राप्तं कैश्चित्सिद्धत्वमेव च । कैश्चित्प्राप्तो ब्रह्मभावो दिनत्रयनिषेवणात् ॥२७॥ ब्रह्मज्ञानेन वैमुक्तिः प्रयागमरणेन वा । अथवा मासि वैशाखे नियमेन जलाप्लुतेः ॥२८॥ नीलं वृषं समुत्सृज्य वैशाख्यां च जलाप्लुतेः । समस्तबन्धनिर्मुक्तः पुमर्थान्याति सर्वथा ॥२९॥ गां दत्त्वा यो द्विजेन्द्राय सीदते च कुटुम्बिने । इहापमृत्युनिर्मुक्तःपरत्र च परं व्रजेत् ॥३०॥ स्नानदानविहीनस्तु वैशाखीं चैव यो नयेत्। श्वानयोनिशतं प्राप्य विष्ठायां जायते कृमिः ॥३१॥ तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटिश्च तीर्थानि भुवनत्रये।

प्रयागराज में मरने से मोक्ष मिलती है अथवा वैशाख मास में नियम पूर्वक स्नान करने से मोक्ष मिलती है ॥२८॥ वैशाख की पूर्णमासी के दिन स्नान करके नीले रङ्ग का सांड छोड़े तो समस्त बन्धन से छूटकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त होती है ॥२९॥ जो गरीब कुटुम्बी ब्राह्मण को गौ दान देता है वह अकाल मृत्यु से छूटकर परलोक में परमपद पाता है ॥३०॥ जो मनुष्य वैशाख की पूर्णमासी को बिना स्नान दान किये बिता देते हैं वह सौ जन्म तक कुत्ता की योनि में पड़कर

विष्ठा के कीड़े होते हैं ॥३१॥ तीनों भुवन में साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं ये सब इकट्ठे होकर पाप समूह के डर से सलाह करने लगे ॥३२॥ कि पापी मनुष्य अपने किये पाप हमारे बीच में त्यागते हैं तो हमारे पाप कैसे दूर होंगे ऐसी चिन्ता करते हुये ॥३३॥ तीर्थपाद हरि भगवान की शरण में गए और अनेक स्तोत्र द्वारा स्तुति करके प्रार्थना करने लगे ॥३४॥ हे देव देव!

वै० मा०

संभूय मंत्रयांचक्रुः पापसङ्घातशङ्किताः ॥३२॥ जना अस्मासु पापिष्ठा विसृजन्ति स्वकं मलम्।
तदस्माकं कथं गच्छेदिति चिन्तासमन्विताः ॥३३॥ तीर्थपादं हरिं जग्मुः शरण्यं शरणं विभुम्।
स्तुत्वा च बहुभिः स्तोत्रैः प्रार्थयामासुरञ्जसा ॥३४॥ देवदेव जगन्नाथ सर्वाघौघविनाशन। जना
अस्मासु पापिष्ठाः स्नात्वा पापानि सर्वशः ॥३५॥ विसृज्य त्वत्पदं यान्ति त्वदाज्ञाधारिणो भुवि।
अस्माकं चैव तत्पापं कथं गच्छेज्जनार्दन ॥३६॥ तदुपायं वदार्तानां त्वत्पादशरणैषिणाम्। इति
तीर्थैः प्रार्थितस्तु भगवान्भूत भावनः ॥३७॥ प्रहसन्प्राह तीर्थानि मेघगम्भीरया गिरा ॥ श्रीभग-

हे जगन्नाथ! हे संपूर्ण पापों के नाश करने वाले! पापी मनुष्य हममें स्नान करके ॥३५॥ पापों को हमारे बीच में छोड़ आपके धामको चले जाते हैं तो हे प्रभो! हम तो आपके आज्ञाकारी हैं अतः ये पाप हे जनार्दन! हमसे कैसे दूर होंगे।३६। हे प्रभो! हम आपके चरणों की शरण के इच्छुक हैं कोई उपाय हमारे सामने कहिये। जब तीर्थों ने ऐसी प्रार्थना की तब भूत भावन भगवान ॥३७॥ हंसते हुये मेघ जैसी गम्भीर वाणी से बोले, वैशाख के महीने में मेष की संक्रांति में शुक्लपक्ष में जो ... ये तीन दिन सब तीर्थमय पुण्य रूप हैं और मेरे प्राणप्यारे हैं, इनमें सूर्योदय से पहिले स्नान

भावन भगवान ॥३७॥ हंसते हुये मेघ जैसी गम्भीर वाणी से बोले, वैशाख के महीने में मेष की संक्रांति में शुक्लपक्ष के
अन्तिम तीन दिन हैं ॥३८॥ वे तीन दिन सर्व तीर्थमय पुण्य रूप हैं और मेरे प्राण प्यारे हैं, इनमें सूर्योदय से पहिले स्नान
कर जल से बाहर आ जाए जिससे सब प्रकार के पाप से छूट पुण्य रूप और निर्मल हो। उन तीन दिवसों के बीच जो कोई
स्नान नहीं करते, उन मनुष्यों में ही पाप स्थित रहता है, जो पाप तुम्हारे बीच में उनसे निकल कर इकट्ठे हुए हैं ॥३९॥

वानुवाच ॥ सिते पक्षे मेषसूर्ये वैशाखान्ते दिनत्रये ॥३८॥ सर्वतीर्थमये पुण्ये ममापि प्राणवल्लभे।
यूयं भगोदयात्पूर्वं बहिः संस्थजलाप्लुताः ॥३९॥ विमुक्ताघाः पुण्यरूपा भवन्त्वाशु सुनिर्मलाः।
भवद्भिश्च विमुक्तावैर्यें न स्नाता दिनत्रये ॥४०॥ तेष तिष्ठतु तत्पाप जनैयुष्मद्भिरेचितम्। इति
तीर्थपदो विष्णुस्तीर्थानां च वरं ददौ ॥४१॥ अनुज्ञाप्य च तान्योगात्तत्रैवान्तरधीयत। स्वधामानि
पुनः प्राप्य तानि तीर्थानि नित्यशः ॥४२॥ प्रतिवर्षं तु वैशाखे तथैवान्त्यदिनत्रये। तेनाघौघं
विमुच्यैव यान्ति निर्मलतामहो ॥४३॥ ये तु स्नानं न कुर्वन्ति वैशाखान्त्यदिनत्रये। ते भवन्तु

॥४०॥ जो मनुष्य इस प्रकार तुम्हारे बीच में पाप छोड़ गये हैं वह उनमें रहते हैं, ऐसा तीर्थपाद विष्णु भगवान ने तीर्थों
को वर दान दिया ॥४१॥ और ऐसी आज्ञा दे योग बल से वहीं अन्तर्धान होगए और सब तीर्थ अपने २ धाम को चले
आये ॥४२॥ प्रति वर्ष वैशाख के महीना में पिछले तीन दिनों में सब अपने २ पापों को छोड़ निर्मल होते हैं ॥४३॥
जो वैशाख के पिछले तीन दिनों में स्नान नहीं करते उन्हीं के ऊपर सब मनुष्यों के पाप आकर के ठहर जाते हैं ॥४४॥ इस

प्रकार स्नान न करने वाले मनुष्यों को तीर्थ शाप देते हैं जो कोई इन तीन दिनों में स्नान नहीं करता उसके समान कोई पापी नहीं है ॥४५॥ ऐसा पाप किसी भी शास्त्र में न देखा है न सुना हैं। अतएव पिछले तीन दिवस में स्नान, दान और मधुसूदन भगवान की पूजा न करे तो इसके तुल्य कोई पाप नहीं ॥४६॥ जो इन कर्मों को न करे वह चौदह मन्वन्तर तक

समस्तानां जनानां पातकाश्रयाः ॥४४॥ इति शापं च तीर्थानि ह्यस्नातानां ददाति च। न तेन सदृशः पापो यो न स्नातो दिनत्रये ॥४५॥ विचारितेषु शास्त्रेषु न दृष्टा न च वै श्रुतः। तस्माद्दिनत्रये कार्यं स्नानदानार्चनादिकम् ॥४६॥ अन्यथा नरक याति यावदिन्द्रश्चतुर्दश। इत्येतत्सर्वमाख्यातं श्रुतकीर्ते महामते ॥४७॥ पृष्टं वैशाखमाहात्म्यं यथादृष्टं यथाश्रुतम्। माहात्म्यस्य च लेखोऽयं माधवस्य च वर्णितः ॥४८॥ कात्स्न्यद्वित्तुं ब्रह्मणापि नालं वर्षशतैरपि। पुरा कैलास शिखरे पार्वत्यै शङ्करः स्वयम् ॥४९॥ प्राह माधवमाहात्म्यं पृच्छत्यै शतवत्सरम्। तच्चापि नान्तमगमदशक्तो

नरक में पड़ा रहे इस प्रकार सम्पूर्ण वैशाख का महात्म्य महा बुद्धिमान् श्रुतिकीर्ति के आगे कहा हुआ जैसे जैसे सुना या देखा तदनुसार ही माधव मास की कथा वर्णन की गई है ॥४७॥४८॥ इस माहात्म्य को पूरी पूरी रीति से वर्णन करने की सामर्थ्य तो ब्रह्मा की भी नहीं है। पहिले कैलाश के शिखर पर बैठकर पार्वती जी ने महादेवजी से पूछा तब महदेवजी सौ वर्ष तक यही कथा कहते रहे तो भी पूरी हुई तब असमर्थ हो चुप होगये ॥४९॥५०॥ विष्णु भगवान जगन्नाथ श्रीनारायण

से थोड़ा थोड़ा वैशाख माहात्म्य वर्णन किया है ॥५१॥ परन्तु हे राजन्! किसी ने अन्त नहीं पाया, असमर्थ होकर सब

से थोड़ा थोड़ा वैशाख माहात्म्य वर्णन कियाहै ॥५२॥ परन्तु हे राजन् ! किसी ने अन्त नहीं पाया, असमर्थ होकर सब बैठ रहे । तू वैशाख मासमें दानादि सत्कर्म कर इनसे निश्चय ही मुक्ति मिलेगी ॥५३॥ ऐसा मिथिला पति राजा जनक को

विरराम ह ॥५०॥ कोऽनुवर्णयितुं शक्तः कार्त्स्न्यान्माहात्म्यमुत्तमम् । विना विष्णुं जगन्नाथं नारायणमनामयम् ॥५१॥ पुरा सर्वेऽपि ऋषयो माहात्म्यं पापनाशनम् । लेशं च लेशं व्याचख्युर्जनानां हितकाम्यया ॥५२॥ नान्तः केनापि व्याख्यातो ह्यशक्तत्वान्महीपते । त्वं च मासे तु वैशाखे कुरु दानादिसत्क्रियाः ॥५३॥ तेन भुक्तिं च मुक्तिं च संप्राप्नोषि न संशयः । इति । तं बोधयित्वा च मैथिलं जनकाह्वयम् ॥५४॥ श्रुतदेवस्तमामन्त्र्य गन्तुं चक्रे मनोगतिम् । जाताह्लादः स राजर्षिर्गलद्बाष्पाकुलेक्षणः ॥५५॥ उत्सवं कारयामास स्वाभिवृद्ध्यै मनोरमम् । ग्रामं प्रदक्षिणीकृत्य शिबिकामधिरोप्य तम् ॥५६॥ चतुरङ्गबलैर्युक्तः स्वयं पृष्ठमथान्वगात् । पुनश्चान्तःपुरं प्राप्य

समझा कर श्रुतदेवजी राजा से पूछ कर जाने का विचार करने लगे ॥५४॥ तो राजा को एक साथ आह्लाद उत्पन्न होगया, नेत्रों से जल टपकने लगा ।५५। तब उत्सव करने में प्रवृत्त हुआ और अपनी वृद्धि के लिये श्रुतदेवजी को पालकी में बैठाकर ग्राम की प्रदक्षिणा कर ॥५६॥ चतुरंगिणी सेना को सङ्ग भेजा और पीछे २ स्वयं चला । फिर अन्तःपुर में ले जा कर वस्त्र,

आभूषण, गौ, पृथ्वी, तिल, सुवर्ण आदि सब प्रकार के वैभव आगे रख नमस्कार कर हाथ जोड़ सन्मुख खड़ा होगया ॥५७॥ ॥५८॥ तब महातेजस्वी, महायशस्वी, श्रुतदेवजी अत्यन्त सन्तुष्ट हो प्रसन्नता पूर्वक अपने धाम को गये ॥५६॥ तब नारदजी कहने लगे हे राजा अम्बरीष ! यह परम अद्भुत आख्यान मैंने तुम्हारे सम्मुख वर्णन किया जिसके सुनने से ही संपूर्ण पाप

सकलैर्विभवैरपि ॥५७॥ वस्त्रैराभरणैश्चैव गोभूतिलहिरण्यकैः । प्रणम्य च परिक्रमम्य तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः ॥५८॥ ततस्तं तु महातेजाः श्रुतदेवो महायशाः । सन्तुष्टः परमप्रीतो ययौ धाम स्वकं मुनिः ॥५६॥ नारद उवाच ॥ इत्येतत्परमाख्यानमम्बरीष तवोदितम् । श्रवणात्सर्वपापघ्नं सर्वसंपद्विधायकम् ॥६०॥ तेन भुक्तिं च मुक्तिं च ज्ञानं मोक्षं च विन्दति । तस्य वचः श्रुत्वा अम्बरीषो महायशाः ॥६१॥ प्रहृष्टान्तरवृत्तिश्च बाह्यव्यापारवर्जितः । प्रणनाम तथा मूर्ध्ना दण्डवत्पतितो भुवि ॥६२॥ विभवैरखिलैश्चापि पूजयामास तं पुनः । संपूजितस्तमामन्त्र्य नारदो

नष्ट हो जाते हैं और सब प्रकार की संपत्ति मिलती है ॥६०॥ इसी से भोग, ज्ञान और मोक्ष प्राप्त होते हैं नारदजी के ऐसे वचन सुन महायशस्वी राजा अम्बरीष ॥६१॥ मन ही मन ऐसा प्रसन्न हुआ कि बाहर के सब व्यापार छोड़ दिये और दंड की तरह पृथ्वी पर गिर शिर से प्रणाम करने लगा ॥६२॥ तथा सब प्रकार के ऐश्वर्यवान पदार्थों से नारदजी की पूजा की। फिर भगवान नारद मुनिने राजा से पूछकर ॥६३॥ अन्य लोक चले गये क्योंकि शाप के मारे वे एक जगह नहीं रहते थे सूतजी बोले जो कोई इस पाप के नाशकर्ता और पुण्य के बढ़ाने वाले परम अद्भुत आख्यान को सुनता अथवा पाठ करता

फिर भगवान नारद मुनिने राजा से पूछकर ॥६३॥ अन्य लोक चले गये क्योंकि शाप के मारे व एक जगह नहीं रहते ॥
सूतजी बोले जो कोई इस पाप के नाशकर्त्ता और पुण्य के बढ़ाने वाले परम अद्भुत आख्यान को सुनता अथवा पाठ करता है वह परम गति को प्राप्त होताहै तथा जिसके घर में हाथ की लिखी पुस्तकहै उसके तो हाथ ही में मुक्तिहै सुनने की भी

भगवान्मुनिः ॥६३॥ लोकान्तरं ययौ धीमाञ्छापन्नैकत्र संस्थितः । अम्बरीषोऽपि राजर्षिर्नारदोक्तानिमान् शुभान् ॥६४॥ धर्मान् कृत्वा विलीनोऽभूत्परे ब्रह्मणि निर्गुणे ॥६५॥ सूत उवाच ॥ य इदं परमाख्यानं पापघ्नं पुण्यवर्धनम् । शृणुयाद्वा पठेद्वापि स याति परमां गतिम् ॥६६॥ लिखितं पुस्तकं येषां गृहे तिष्ठति मानद । तेषां मुक्तिः करस्था हि किमु तच्छ्रवणात्मनाम् ॥६७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे फलश्रुतिकथनं नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥२५॥

॥ इति श्रीवैशाखमाहात्म्यं संपूर्णम् ॥

कुछ आवश्यकता नहीं है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे फलश्रुतिकथनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥ इति वैशाखमाहात्म्यं संपूर्णम् ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

मुद्रक व प्रकाशक—बांकेलाल कांनोडिया, गङ्गाप्रिंटिंग प्रेस, बुकडिपो, मथुरा ।